को एरण्ड के तैल के साथ मिलाकर मन्दोष्णजल के साथ आमवातरोग की शान्ति के लिये प्रति दिन प्रयुक्त करना चाहिए ॥ ४७ ॥

अथ अनिलारियोगः—

आमानिलस्यास्य रसोऽनिलारिश्चैरण्डतैलेन सकौशिकेन ।
कटुत्रयेणापि सगन्धकेन वल्लैकमानं परिषेवयेत ॥ ४८ ॥

एक वल्ल (तीन रत्ती) भर अनिलारि (वातारि) रस को शुद्ध गूगल और एरण्ड के तैल के साथ अथवा त्रिकटु और शुद्धगन्धक के साथ मिलाकर सेवन करने से आमवातरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथ आमवाते एरण्डतैलप्रशंसा—

आमवातगजेन्द्रस्य शरीरवनचारिणः ।
एक एवाग्रणीर्हन्ता एरण्डस्नेहकेसरी ॥ ४९ ॥

शरीर रूपी वन में विचरण करने वाले आमवात रूपी गजेन्द्र को नष्ट करने के लिये एरण्डतैल रूपी सिंह ही एक अग्रणी अर्थात् श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥

अथामवाते पथ्यापथ्यव्यवस्था—

आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते । पटोलं गोक्षुरञ्चैव वरुणं कारवेल्लकम् ॥ १ ॥
यवकोद्रवशाल्यादिप्रपुराणं सतिक्तकम् । लावादीनां तथा मांसं तक्रेणामस्तुना हितम् ॥२॥
यवाः कुलत्थाः श्यामाकाः कोद्रवा रक्तशालयः । वास्तुकं शिग्रु वर्षाभूः कारवेल्लं पटोलकम् ३
आर्द्रकं तप्तनीरञ्च लशुनं तक्रसंस्कृतम् । जाङ्गलानां तथा मांसं सामवातगदे हितम् ॥४॥
मन्दारगोकण्टकवृद्धदारं भल्लातकं गोजलमार्द्रकञ्च ।
कटूनि तिक्तानि च दीपनानि स्युरामवातामयिने हितानि ॥ ६ ॥ इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

दधिमत्स्यगुडक्षीरोपोदिकामाषपिष्टकान् । दुष्टनीरं पूर्ववातं विरुद्धान्यशनानि च ॥१॥
असात्म्यं वेगरोधञ्च जागरं विषमाशनम् । वर्जयेदामवातार्तो मासञ्चानुपसम्भवम् ॥२॥

इत्यपथ्यानि ।

अथापस्मारः—

मूर्च्छा शरीरस्य भवेदकस्माद्गात्रेषु कम्पश्च मुखे च फेनः ।
एवं त्वपस्मारगदं विदित्वा नियोजयेत्पर्पटिकाख्यसूतम् ॥ ५० ॥

सहसा (अकस्मात्) मनुष्य के शरीर में मूर्च्छा (बेहोशी या संज्ञाशून्यता) हो जाना, समग्र शरीर में कम्प होना और दौरे या बेहोशी की दशा में मुख से

फेन (झाग) निकलना ये अपस्मार रोग के लक्षण हैं। इन लक्षणों से अपस्मार रोग को जान कर उसको दूर करने के लिये पूर्व में कहे हुए पर्पटीरस को अपस्मार हर औषधियों (शङ्खपुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठमेलादयः) और मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए ॥ ५० ॥

अथ अपस्मारे पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

पर्पटीरसगुञ्जे द्वे ब्राह्मीरससमन्विते ।
खादयेद्रोगिणं वैद्योऽपस्मा(१)रानिलशान्तये ॥ ५१ ॥

पूर्व में कहे हुए दो रत्ती भर पर्पटीरस को ब्राह्मी के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वातिकापस्मार दूर हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ ब्राह्म्यादिनस्यम्—

ब्राह्मी शुण्ठी वचा कुष्ठं नीलोत्पलससैन्धवम् ।
पिप्पलीमपि सञ्चूर्ण्य ब्राह्मीद्रावेण भावयेत् ॥ ५२ ॥
सप्तधा नवनीतेन पचेत् क्षिप्त्वा घृतं शुचौ ।
वराहकर्णरक्तेन कर्कोट्या नस्यमाचरेत् ॥ ५३ ॥

ब्राह्मी, सोंठ, वच, कूट, नील कमल, सैन्धव लवण और पिप्पली इन को सम भाग लेकर चूर्ण बना के ब्राह्मी के स्वरस अथवा क्वाथ से सात वार भावित करना चाहिए तथा मक्खन से भी भावित कर के घोट कर फिर घोट कर फिर थोड़ा सा घृत डाल कर पवित्र पात्र में पका के फिर खरल में डाल के वराह के कान के रक्त से या वाराही कन्द के स्वरस और बांझ ककोड़े के स्वरस से घोट कर सुखा के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण के नस्य देने से अपस्मार के दौरे के कारण मूर्च्छित मनुष्य की मूर्च्छा (वेहोशी) नष्ट हो जाती है। कुछ टीकाकारों ने ब्राह्म्यादि चूर्ण के साथ घृत को घृत पाक विधि से (अर्थात् चूर्ण से चतुर्गुण घृत और घृत से अष्ट गुण वाराहीकन्द का स्वरस तथा बांझ ककोड़े का स्वरस) पका कर उस घृत का नस्य देने को लिखा है ॥ ५२–५३ ॥

(१) कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥

अथ गवाक्ष्यादिनस्यम्—

शुष्कां गवाक्षीमादाय घृष्टं कांस्यं च कम्बलम्।
गोघृतेनाऽऽयसं पिष्ट्वाऽप्यागते नस्यमाचरेत् ॥ ५४ ॥

इन्द्रायण की सूखी जड़ लेकर थोड़े से पानी के साथ या गो घृत के साथ कांसी के बर्तन में घीस (घर्षित) कर अपस्मार के दौरे से मूर्च्छित रोगी को नस्य देना चाहिए, अथवा कम्बल (ऊर्णा लोम) को घृत के साथ लोहे की खरल में पीस कर उस का नस्य कराने से अपस्मार की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५४ ॥

अथ श्वेतापराजितादिनस्यम्—

श्वेतापराजिताबीजं विजयाबीजमेव च।
नरमूत्रेण सम्पिष्य नस्यं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ५५ ॥

श्वेत अपराजिता के बीज और भङ्गा के बीज दोनों को समभाग लेकर नरमूत्र के साथ पीसकर चूर्ण बनालेना चाहिए। इस प्रकार से बनाये हुए चूर्ण का नस्य देने से अपस्मार की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५५ ॥

अथापस्मारहरनस्यम्—

उन्मत्तकशुनोऽस्थीनि घृष्ट्वा तेनैव वा कुरु ॥ ५६ ॥

उन्मत्त हुए कुत्ते की अस्थि को जल के साथ अथवा नरमूत्र के साथ घिसकर उसका नस्य देने से अपस्मार रोग की मूर्च्छा दूर हो जाती है ॥ ५६ ॥

अथापस्मारहरो योगः—

श्वेतापराजितामूलं कर्णे बद्ध्वा सदा बुधः ॥
निर्गुण्डीमूलकं जग्ध्वा ह्यपस्माराद्विमुच्यते ॥ ५७ ॥

श्वेत अपराजिता की जड़ को अपस्मार रोगी के कर्ण में बान्धनी चाहिए तथा निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण को मधु के साथ अथवा एरण्ड के तैल के साथ सेवन करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस योग के सेवन करते रहने से कुछ दिनों में अपस्मार के दौरे आदि चले जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथापस्मारे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

नस्यं सिराव्यधो दाहं त्रासनं बन्धनं भयम्। तर्ज्जनं ताडनं हर्षो धूमपानञ्च विस्मयः १
धीधैर्यात्मादिविज्ञानं स्नानमभ्यञ्जनानि च। लोहिताः शालयो मुद्गा गोधूमाः प्रतनं हविः २
कूर्मामिषं धन्वरसा दुग्धं ब्राह्मीदलं वचा। पटोलं वृद्धकूष्माण्डं वास्तूकं स्वादु दाडिमम् ३

शोभाञ्जनं पयः पेटी द्राक्षा धात्री परूषकम् । तैलं खराश्वमूत्रञ्च गवयाम्बु हरीतकी ४
अपस्मारगदे नृणां पथ्यमेतदुदीरितम् । इति पथ्यानि । अथापथ्यम्—
चिन्तां शोकं भयं क्रोधमशुचीन्यशनानि च । मद्यं मत्स्यं विरुद्धान्नं तीक्ष्णोष्णगुरुभोजनम् १
अतिव्यवायमायासं पूज्यपूज्याव्यतिक्रमम् । पत्रशाकानि सर्वाणि बिम्बीमाषाढकं फलम् ॥
तृषानिद्राक्षुधावेगमपस्मारी परित्यजेत् ॥ इत्यपथ्यम् ।

अथोन्मादः—

वहु कृत्वा प्र(१)लापश्च विस्मृतिः कार्यवस्तुषु ।
हन्ति धावति सर्वत्रोन्मादवातस्य लक्षणम् ॥ ५८ ॥

बार२ प्रलाप अर्थात् असम्बद्ध भाषण करना अपने करने योग्य कार्यों को भूल जाना तथा दूसरों को अकारण ही मारना या पत्थर आदि फेंकना और इधर उधर भागते रहना ये सब वातोन्माद के लक्षण ॥ ५८ ॥

अथ माहेश्वरधूपः—

माहेश्वराख्यधूपञ्च दापयेत्सततं निशि ।
श्रीवेष्टं दारुवाह्लीकं मुस्ता कटुकरोहिणी ॥ ५९ ॥
सर्षपा निम्बपत्राणि मदनस्य फलं वचा ।
बृहत्यौ सर्पनिर्मोकः कार्पासास्थि यवास्तुषाः ॥ ६० ॥
गोशृङ्गं खररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट् ।
छागरोमघृतं चेति वस्तमूत्रेण भावयेत् ।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः ॥ ६१ ॥

श्रीवेष्टक (नवनीतखोटी या लोबान), देवदारू, वाह्लीक अर्थात् हींग, मोथा, कुटकी, सरसों, निम्ब के पत्र, मदनफल (मैनफल), वचा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सांप की कांचली, कपास के बीजों की गिरी, जौ की भूसी, गाय के सींग का चूर्ण, गधे के अङ्ग का बाल, मयूर की पुच्छ का अग्रभाग, विलाव (मार्जार) की विष्ठा, बकरी के बाल ये सब समभाग और घृत इन सबकी अपेक्षा आधा या चतुर्थांश लेकर घृत के अतिरिक्त शेष द्रव्यों को महीन चूर्ण करके घृत में मिलाकर डिब्बो में भरकर रख दें। इसको माहेश्वर धूप कहते हैं तथा यह धूप सर्व प्रकार की ग्रह वाधाओं को तथा रोगोत्पादक जीवाणु और जीवाणु वाहक

---

(१) प्रलापैश्चेति पाठान्तरम् ।

मक्खी मच्छर आदि को नष्ट करता है। इस धूप को प्रायः सन्ध्या के समय उन्माद रोगी के कमरे में तथा उसके आस पास प्रयुक्त करना चाहिए ॥५९-६१॥

अथ उन्मादपर्पटीरसप्रयोगोपदेशः

पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ धत्तूराद्बीजपञ्चकम्।
गोघृतेन च संयोज्य खादेदुन्मादशान्तये ॥ ६२ ॥

पूर्वोक्त पर्पटी रस आठ रत्ती भर तथा धत्तूरे के शुद्ध बीजों का चूर्ण ५ रत्ती भर लेकर दोनों को गोघृत के साथ मिलाकर उन्माद रोग की शान्ति के लिये प्रति दिन सेवन करना चाहिए। प्रायः पर्पटी रस को २ रत्ती से प्रथम प्रारम्भ करना चाहिए। सहसा आठ रत्ती भर की मात्रा नहीं देनी चाहिए। रोगी और रोग की अवस्था का विचार करके मात्रा की कल्पना करनी चाहिए ॥ ६२ ॥

अथ उन्मादे उपचारविशेषाः—

सघृतं माषमण्डं वा पाययेद् घृतदुग्धकम्।
निम्बतैलं समुद्धृत्य स्वभ्यज्यापादमस्तकम् ॥ ६३ ॥
गुर्वन्नं प्रायशो दद्याच्छुष्कशाकं च वर्जयेत्।
बद्ध्वापि रक्षयेत्तावद्यावच्छान्तिं स गच्छति ॥ ६४ ॥

माष अर्थात् उड़दी की दाल को अठगुने पानी में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर उसमें थोड़ासा घृत मिला कर पीना चाहिए अथवा इसका यह भी तात्पर्य है कि उड़द और चांवलों को चौदह गुने पानी में उबाल कर घृत मिला के यवागू बना लेनी चाहिए। इस यवागू को सेवन करने से उन्माद रोग नष्ट हो जाता है अथवा केवल गरम दुग्ध में घी मिला कर पीलाना चाहिए तथा निम्ब के बीजों का तैल निकाल कर शिर से पैरों तक मालिश करनी चाहिए। उन्माद रोगी को गुरु पदार्थों का सेवन कराना चाहिए तथा शुष्क शाक या शुष्क (स्नेह रहित) भोजन नहीं कराना चाहिए। यदि उन्माद रोगी मारता हो या भागता फिरता हो तो उसे बांध कर रखना चाहिए। जबतक वह अच्छा न हो तब तक नहीं छोड़ना चाहिए ॥ ६३-६४ ॥

अथोन्मादरोगे पथ्यापथ्यव्यवस्था—

गोधूममुद्गारुणशालयश्च धारोष्णदुग्धं शतधौतसर्पिः।
घृतं नवीनञ्च पुरातनञ्च कूर्मामिषं धन्वरसा रसालम् ॥ १ ॥

पुराणकुष्माण्डफलं पटोलं ब्राह्मीदलं वास्तुकतण्डुलीयम् ।
खराश्वमूत्रं गगनाम्बु पथ्या सुवर्णचूर्णानि च नारिकेलम् ॥ २ ॥
द्राक्षाकपित्थं पनसञ्च वैद्यै र्विधेयमुन्मादगदेषु पथ्यम् ।
मद्यं विरुद्धाशनमुष्णभोजनं निद्रा क्षुधातृट् कृतवेगधारणम् ।
तिक्तानि तीक्ष्णानि भिषक् समादिशेदुन्मादरोगापहतेषु गर्हितम् ॥ ३ ॥

इति पथ्यापथ्यव्यवस्था ।

अथैकाङ्गवातः—

एकस्मिन् देहदेशे च तोदः कार्श्यं चलात्मता ।
हिमस्पर्शश्च दृश्येतैकाङ्गवातस्य लक्षणम् ॥ ६५ ॥

शरीर के वाम या दक्षिण आदि किसी एक भाग में सूई के चुभाने के समान पीड़ा होना तथा उस भाग में या समग्र शरीर में दुर्बलता का बढ़ना, अङ्ग की अस्थिरता या उस में फड़कन होना तथा उस भाग का अधिक शीतस्पर्श होना ये सब काङ्गवात विकार के लक्षण हैं ॥ ६५ ॥

अथ वडवानलरसः—

शुल्वं तालकगन्धकौ जलनिधेः फेनोऽग्निगर्भाशयः ।
कान्तायो लवणानि हेमवचयोर्नीलाञ्जनं तुत्थकम् ।
भागो द्वादशको रसस्य तदिदं वज्राम्बुघृष्टं शनैः ।
सिद्धोऽयं वडवानलो गजपुटे रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ ६६ ॥
आर्द्रकस्य द्रवेणामुं दशवाराणि भावयेत् ।
दिनद्वयं चित्रकस्य द्रावेणैव तु भावयेत् ॥ ६७ ॥
पादांशममृतं दत्त्वा चित्रद्रावैः क्षणं पचेत् ।
मात्रया योजयेच्चानु दशमूलशृतं पयः ॥ ६८ ॥
वातश्लेष्मप्रधाने च दद्यात्त्र्यूषणचित्रकम् ।
स्वेदं च कटुतुम्बिन्या प्रयुञ्जीतातियत्नतः ॥
दाहं च जयया कुर्याच्छीतवातं च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥

ताम्र की भस्म १ तोला, शुद्धहरताल १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, समुद्र फेन १ तोला, अग्निगर्भाशय (अग्निर्गर्भाशये मध्ये यस्य सोऽग्निगर्भाशयः) अर्थात् सूर्यकान्तमणी की भस्म या शमीवृक्ष की छाल का चूर्ण १ तोला, कान्तलोह की भस्म १ तोला सामुद्रसैन्धवादि लवण १ तोला, स्वर्ण की भस्म १ तोला, वचा

का चूर्ण १ तोला, शुद्धनीलाञ्जन (काला सुरमा) १ तोला, शुद्ध किया हुआ नील तुत्थ १ तोला तथा शुद्ध पारद १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्यों को मिला कर सबको महीन पीस के थूहर के शुद्ध दुग्ध अथवा उसकी जड़ या हरे पत्तों के स्वरस के साथ एक दिन खरल करके गजपुट में फूंक देवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल होने पर सम्पुट से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके फिर अदरख के स्वरस के साथ दश बार भावित करके घोटकर दो दिन तक चित्रक की जड़ के क्वाथ या स्वरस के साथ खरल करें, पश्चात् समस्त औषध की चतुर्थांश शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण मिलाकर चित्रक के रस में पकाकर शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह वड़वानलरस सिद्ध होता है तथा यह रस यथानुपानों के साथ सेवन करने से समस्त रोगों को नष्ट करता है। इस रस को एकाङ्ग वातरोग में मधु के साथ सेवन करके ऊपर से दशमूल के द्रव्यों के कल्क से क्षीरपाकविधि के अनुसार पकाये हुए दुग्ध को पीना चाहिए। यदि वातश्लेष्म प्रधान विकार हो तब इस रस को त्र्यूषण (सोंठ, मरिच पीप्पली) और चित्रक की जड़ के चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त एकाङ्गवात विकृतिवाले मनुष्य के उस अङ्गपर कटुतुम्बो से स्वेदन करना चाहिए। इस रस को जयन्ती के पतों के स्वरस के साथ सेवन करने से दाह नष्ट हो जाता है। इस रसके सेवन करते समय शीतल पदार्थों का सेवन तथा ठण्डी २ वायु आदि वर्जित करना चाहिए॥ ६६–६९॥

अथ मार्तण्डेश्वररसः—

समताप्ययुतं शुल्वं पलत्रितिमानकम्।
प्रध्मातं हि चतुर्वारं खण्डयित्वा ततश्चरेत्॥ ७०॥
तत्तुल्यं माक्षिकोपेतं पुटेद्विंशतिवारकम्।
गन्धकेन पुटेत्तावत् यावत्पलमितं भवेत्॥ ७१॥
क्षिपेत्पलमितं तत्र गन्धकेन हतं रसम्।
शाणमात्रं मृतं वज्रं सर्वमेकत्र मर्दयेत्॥ ७२॥
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं मार्तण्डेश्वरनामवान्।
कीर्तितो लोकनाथेन लोकानां हितकाम्यया॥ ७३॥
मरीचघृतसंयुक्तः सेवितो मण्डलार्धतः।

वाताद्यष्टमहारोगाञ्छ्वासकासयुतं क्षयम् ॥ ७४ ॥
हलीमकं च पाण्डुं च ज्वरानपि सुदुस्तरान् ।
इत्यादिकगदान्सर्वान्विनाशयति निश्चितम् ॥ ७५ ॥
करोति दीपनं तीव्रं दीपानलशतोपमम् ।
सन्निपातं जयत्याशु व्योषार्द्रकसमन्वितः ॥
सर्वसौख्यकरो नृणां स्त्रीणां वन्ध्यत्वनाशनः ॥ ७६ ॥

शुद्ध स्वर्णमाक्षिक २० पल तथा शुद्ध किये हुए कण्टकवेधी ताम्रपत्र २० पल भर लेकर मिट्टी की एक मजबूत हण्डिका में आधा सोनामाखी का चूर्ण रखकर उस पर खण्डशः अर्थात् छोटे२ टुकड़े किये हुए ताम्रपत्रों को रख के उनपर अवशिष्ट स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण डालकर एक सकोरे से हण्डिका के मुख को ढककर कपड़मिट्टी करके सुखालेवें । फिर उस हण्डिका को गजपुट में रखकर उपलों में वह्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए । इस तरह स्वर्णमाक्षिक के साथ चार वार ताम्रपत्रों को गजपुट में फूंक कर फिर उनके बराबर स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण मिलाकर निम्बू के रस या काञ्जी के साथ घोटकर पुट देवें । इस तरह प्रत्येक वार काञ्जी के साथ घोट२ कर २० पुट देवें । फिर समभाग शुद्ध गन्धक मिलाकर काञ्जी के साथ घोटकर पुट दे देवें । इस प्रकार गन्धक के साथ भी २० पुट देकर खरल में महीन चूर्ण कर लेवें । इस प्रकार से सिद्ध हुई ताम्र को १ पल भर भस्म लेकर उसमें गन्धक के द्वारा मारा हुआ पारद (रससिन्दूर) १ पल भर तथा १ शाण (४ माशा) हीरे की भस्म मिलाकर सबको एकत्र एक दिन तक खरल कर के शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह रसेन्द्र (अर्थात् सर्व रसों मे श्रेष्ठ) मार्त्तण्डेश्वर नाम से प्रसिद्ध है । इस रस को संसार के जीवों के हित की इच्छा से श्रीलोकनाथ नाम के आचार्य ने सर्व प्रथम बनाया था । यह रस काली मरिचों के चूर्ण और घृत के साथ आधे मण्डल (२४ दिन) तक प्रति दिन सेवन करने से वातव्याध्यादिक आठ प्रकार के महारोग (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदर के रोग, भगन्दर, अर्श और सङ्ग्रहणी), श्वास और कास से युक्त क्षयरोग, हलीमक, पाण्डु रोग, सर्व प्रकार के दुस्साध्य ज्वर तथा इस तरह अन्य अनेक प्रकार के रोगों को निश्चय ही नष्ट करता है । यह रस पेट के रसों (पाचक रसों) को अत्यन्त

प्रदीप्त करता है तथा व्योष (सोंठ, मरिच, पीपल) के चूर्ण और अदरख के स्वरस के साथ सेवन करने से सन्निपात को नष्ट करता है। यह रस मनुष्यों के शरीर को नीरोग कर के उन्हें सर्व प्रकार के सुखों से युक्त करता है तथा स्त्रियों के वन्ध्यत्व को नष्ट करता है ॥ ७०–७६ ॥

अथ चतुःसुधारसः—

समभागे शुभे हेम्नि निर्गूढं ताप्यमुत्तमम्।
शतधा शतधा रौप्ये शुल्वे च शतवारकम् ॥ ७७ ॥
इत्थं सिद्धमिदं बीजं पृथगत्तप्रमाणतः।
समावर्त्य तदेकत्र रसे पञ्चपलात्मके ॥ ७८ ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण जारयेदतियत्नतः।
तप्ते खल्ले रसं दत्त्वा बीजं निष्कमितं तथा ॥ ७९ ॥
मर्दयेदतियत्नेन भवेद्यावद्दिनत्रयम्।
पूर्वोक्तकच्छपे यन्त्रे वक्ष्यमाणबिडान्विते ॥ ८० ॥
वक्ष्यमाणप्रकारेण बीजमेवमशेषतः।
बलिकासीसकव्योमकांक्षीसौवर्चलैः समैः ॥ ८१ ॥
चक्राङ्गीरससम्भिन्नः शतधा बिडमित्रवित्।
एवं जारितसूतेन पलमात्रेण तावता ॥ ८२ ॥
गन्धकेनापि कर्तव्या सुस्निग्धा वरकज्जला।
लोहपात्रे घृतोपेतां द्रावयेत्तां तु कज्जलीम् ॥ ८३ ॥
तुल्यसत्त्वाभ्रभसितं क्षिप्त्वा सम्मिश्र्य सर्वशः।
रम्भापत्रे विनिक्षिप्य कुर्यात्पर्पटिकां शुभाम् ॥ ८४ ॥
विचूर्ण्य पर्पटीं सम्यग्वैक्रान्तं त्रिंशदंशतः।
निक्षिप्य हिङ्गुतोयेन शतधा परिभावितम् ॥ ८५ ॥
निरुध्य मल्लमूषायां स्वेदयेदतियत्नतः।
पुनः सञ्चूर्ण्य यत्नेन करण्डे विनिवेशयेत् ॥ ८६ ॥
हन्यात्सर्वमरुद्गदान्क्षयगदं पाण्डुं च नष्टाग्निताम्।
निर्वीर्यत्वमरोचकं त्वजरणं शूलं च गुल्मादिकम्।
अष्टौ चैव महागदानतितरां व्याधिं सशोषं क्षणाद्।

भुक्तो मुद्गमितश्चतुःसुधरसः स्वस्थोचितो भूभुजाम् ॥८७॥
मूलकं वर्जयेदस्मिन् रसे नान्यत्तु किञ्चन।
त्रिवारमेकवारेण बुभूक्षां जनयेद् ध्रुवम् ॥ ८८ ॥

कण्टक वेधी स्वर्णपत्र लेकर उन्हें शुद्ध करके समभाग स्वर्णमाक्षिक के साथ निम्बू के रस में घोटकर शराव सम्पुट करके या मूषा में बन्द करके पुट दे देवें। इस तरह प्रत्येक वार समभाग माक्षिक मिलाकर निम्बू या काञ्जी के साथ घोट २ कर १०० पुट देनें चाहिए। फिर इस को सुरक्षित रख देवें। इसी प्रकार ताम्र के पत्र लेकर सामान्य और विशेष प्रकार से शुद्ध करके समभाग शुद्ध स्वर्णमाक्षिक को मिलाकर काञ्ज्यादिक के साथ घोटकर शराव या मूषा में बन्द करके बालुका यन्त्र में रख कर पुट दे देवें। इस प्रकार बार २ समान शुद्ध स्वर्णमाक्षिक मिला २ कर घोट के १०० वार पुट देकर सुरक्षित रख देवें, पश्चात् चांदी के पत्र लेकर उन्हें शुद्ध करके समभाग शुद्ध स्वर्णमाक्षिक का चूर्ण मिला कर निम्बू या काञ्जी के साथ घोट के शराव सम्पुट में बन्द करके १ पुट दे देवें। इस प्रकार बारबार शुद्ध स्वर्णमाक्षिक मिला के काञ्ज्यादिक के साथ घोट २ कर १०० पुट दे कर रख लें। इस प्रकार इन प्रत्येक धातु (स्वर्ण, ताम्र, चांदी) का बीज सिद्ध हो जाता है। इन धातुओं प्रत्येक के बीज को अर्थात् स्वर्णबीज १ अक्ष (१ कर्ष) ताम्रबीज १ अक्ष और रजतबीज १ अक्ष भर लेकर सबको एकत्र दिनभर खरल करके पांच पलभर शुद्ध पारद के साथ जारण करना चाहिए। जारणविधिः—पृथ्वी में एक खड्डा बनाकर उसमें बकरी की मींगनिएं और तुष भर कर आग जला के उस पर खरल रख देवें। फिर उस खरल में पांच पलभर शुद्ध पारद डालकर पूर्वोक्त तीनों बीजों के मिश्रण में से एक निष्क (४ माशा) भर बीजचूर्ण डालकर कलच्छी से या अन्य मर्दक से घोटें। इस तरह एक निष्क भर बीज डाल २ कर तीन दिन तक घोटते रहें। फिर बीज के साथ जारित किये हुए पारद को खरल में डाल के घोटकर उसमें वक्ष्माण विड् अर्थात् शुद्ध गन्धक, कासीस, व्योम अर्थात् चोलाई का क्षार अथवा अभ्रकभस्म, फिटकिरी और सौवर्च्चल लवण इनको मिला कर पारद के बराबर अर्थात् ५ पल भर लेकर सबको घोट के चक्राङ्गा (कुटकी) के रस के साथ एक दिन तक खरल कर के पूर्वोक्त (नवमाध्यायोक्त) कच्छपयन्त्र में पाक करना चाहिए। इस तरह बार बार गन्धकादिक विड् डाल २ कर चक्राङ्गी के रस के

साथ खरल कर के कच्छपयन्त्र में १०० पुट देने चाहिए। इस प्रकार से जारित किया हुआ पारद १ पल तथा शुद्धगन्धक १ पल भर लेकर दोनों की उत्तम कज्जली बनाकर घी से लिप्त हुई लौहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के अग्निप्रदीप्त कर देनी चाहिए। तथा एक घृतलिप्त कलच्छू से चलाते रहना चाहिए। जब सम्पूर्ण कज्जली द्रुत हो जाय तब उसमें अभ्रकभस्म का समभाग सत्त्व डाल के अच्छी प्रकार कलच्छू से घोटकर मिला देना चाहिए। फिर उस द्रुति को गीले गोबर पर बिछे हुए आर्द्र कदली पत्र पर गिरा कर दूसरे केले के पत्ते से ढक के गोबर के पिण्ड से दबा कर पर्पटी बना लेनी चाहिए। स्वाङ्गशीतल होने पर उस पर्पटी का खरल में महीन चूर्ण करके उसमें समस्त चूर्ण की अपेक्षा तीसवां भाग वैक्रान्तभस्म डाल कर हीङ्ग के पानी (घाल) से १०० वार भावित करके मल्लमूषा में बन्द करके तोन घण्टे तक बालुकायन्त्र के द्वारा मन्द २ अग्नि पर स्वेदन (पाक) करना चाहिए। स्वाङ्गशोत मल्ल मूषा से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के काच की शोशी में भर देवें। यह चतुःसुधारस एक मूंग भर (१–३ रत्ती) प्रति दिन यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सब प्रकार के वातविकार, क्षयरोग, पाण्डु, अग्निमांद्य, निर्वलता, अरुचि, अपचन, शूल, गुल्म, आठों प्रकार की महाव्याधियां और शोष रोग आदि सब को नष्ट कर देता है। यह रस स्वस्थ मनुष्यों और राजा महाराजाओं के लिये अत्यन्त फलप्रद है। इस रस के सेवन करते समय केवल मूली नहीं खानो चाहिये तथापि अन्य लाल मरिच, कटुतैल, खटाई आदि भी त्याग देने चाहिए। इन के अतिरिक्त अन्य सर्व हितकर पदार्थों का सेवन कर सकते हैं। यह रस केवल एक दिन में एक वार अथवा तोन वार सेवन करने ही से अग्निमांद्यादि पचन विकारों को नष्ट कर के बुभूक्षा उत्पन्न कर देता है ॥७७–७८॥

अथ सर्ववातारिरसः—

गन्धकाद्द्विगुणं तालं तालकाद्द्विगुणा शिला।
शिलाया द्विगुणं ताप्यं ताप्याच्च द्विगुणं रसम् ॥ ८९ ॥
खल्लयेत्सर्वमेकत्र यावत्स्याद्दिनसप्तकम्।
सर्वस्याष्टमभागेन दत्त्वारक्तामृतं शुभम् ॥ ९० ॥
विषतिन्दुकजैर्द्रावैः पिष्ट्वा गोलकमाचरेत्।

विशोष्य बालुकायन्त्रे अन्धयेद्दिवसद्वयम् ॥ ६१ ॥
स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य तुल्यहिङ्ग्वष्टकान्वितम् ।
भावयेद्वीजपूरस्य सप्तवारं रसेन हि ॥ ६२ ॥
सप्तवारं रसैः शुण्ठ्या चित्रमूलस्य वारिणा ।
इति सिद्धो रसेन्द्रोऽयं सर्ववातारिसंज्ञकः ॥ ६३ ॥
घृतेन सहितो लीढो वल्लद्वयमितो नृभिः ।
निहन्त्यशीतिवातार्तीर्गुल्मानष्टविधानपि ॥ ६४ ॥
चतुर्विधं च मन्दाग्निं शूलानुदरजान् क्रिमीन् ।
आध्मानं च तथा हिक्कां मूढवातं च विडग्रहम् ॥ ६५ ॥

शुद्धगन्धक १ पल तथा गन्धक से द्विगुण (२ पल) शुद्धहरताल, हरताल से द्विगुनी (४ पल) शुद्धमनःशिला, शिला से द्विगुण (८ पल) शुद्धस्वर्णमक्षिक तथा स्वर्णमाक्षिक से द्विगुण (१६ पल) शुद्धपारद लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सात दिनतक निरन्तर घोटकर महीन कर लेवें । पश्चात् उस में समग्र चूर्णित औषध की अपेक्षा अष्टमांश लाल रङ्ग का शुद्धवत्सनाभ का चूर्ण मिलाकर शुद्ध विषतिन्दुक (कुचले) के कषाय के साथ एक दिन तक घोटकर गोला बना के सुखा लेना चाहिए। फिर इस गोले को शराव सम्पुट या मूषा में बन्द कर के बालुकायन्त्र में दो दिनतक पाक करना चाहिए । तीसरे दिन स्वाङ्गशीतलयन्त्र से रस को निकालकर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें समभाग हिंग्वष्टक चूर्ण मिलाकर बिजौरे निम्बू के रस में अच्छी प्रकार भींगोकर रात भर रख के दूसरे दिन चार बजे उसी रस के साथ घोटें, फिर उसको निम्बू के रस से आप्लावित करके रातभर रखकर दूसरे दिन चार बजे तक घोटे । इस तरह बिजौरे निम्बू के रस से सात भावनाएं देकर सोंठ के क्वाथ अथवा अद्रक के स्वरस से सातवार भावित करें तथा उसी प्रकार चित्रक की जड़ के क्वाथ से भी सातवार भावित करके अच्छी प्रकार घोटकर दो २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर देवें । इस तरह यह सब रसों में इन्द्र अर्थात् श्रेष्ठ सर्ववातारिनामक रस सिद्ध होता है । दो रत्ती भर यह रस प्रतिदिन घृत के साथ सेवन करने से अस्सी प्रकार के वातिक रोग और उनसे उत्पन्न हुई वेदनाएं तथा अन्य उपद्रव, आठ प्रकार के गुल्म, चार प्रकार

का अग्निमान्द्य, सर्व प्रकार के शूल, उदर (क्षुद्रान्त्र और विशेषतया बृहदन्त्र) में उत्पन्न हुए क्रिमि, आध्मान (पेट का फूलना), हिक्का, मूढवात और मलावरोध आदि सर्व विकारों को नष्ट कर देता है ॥ ८८-९५ ॥

विमर्शः—हिंग्वष्टक चूर्ण निर्माण विधिः—त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे। समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गु भागः॥ अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, अजमोदा, जीरा, काला जीरा, सैन्धा नीमक ये सब समान तथा सब के बराबर घृत में भुनी हुई हींग लेकर सब का महीन कर के हिंग्वष्टक चूर्ण बनाना चाहिए।

अथ वातविध्वंसनरसः—

मृतमभ्रकसत्त्वं च कांस्यं शुल्वं हि माक्षिकम्।
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तरविवर्धितम् ॥ ९६ ॥
तत्सर्वं कज्जलीकृत्य वातारिस्नेहसंयुतम्।
मर्दयेत्सप्तदिवसं गोलीकृत्य तु यत्नतः ॥ ९७ ॥
निम्बूद्रावेण सम्पिष्टतालकल्केन लेपयेत्।
अर्धाङ्गुलदलं चैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥ ९८ ॥
प्रपचेद्वालुकायन्त्रे यामानां द्वादशावधि।
पटचूर्णं विधायैतद्भावयेत्तदनन्तरम् ॥ ९९ ॥
पञ्चकोलकचित्राङ्घ्रिवरुणादि(१)कगोक्षतः।
दशमूलकषायेण शृङ्गवेररसेन च ॥ १०० ॥
रक्तामृतं कलांशेन दत्त्वा निष्पिष्य यत्नतः।
स्थूलकोलास्थितुलितां छायाशुष्कां वटीं क्रिरेत् ॥ १०१ ॥
तत्तद्रोगहरैर्द्रव्यैर्नृणां देया सदा हिता।
हन्यादशीतिधा भिन्नान्वातजातान्महागदान् ॥ १०२ ॥
गुल्मानष्टविधांश्चापि शूलानष्टविधानपि।

---

(१) वरुणादि—वरुणादिगणः; स च "वरुणार्त्तगलो शिग्रुन्तर्कारी मधुशिग्रुकः। मेषशृङ्गीकरञ्जौ च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटाः॥ शैरीयो वसिरा दर्भो वरी वसुकचित्रकौ। बिल्वश्चैवाजशृङ्गी च बृहतीद्वयमेव च॥ वरुणादिर्गणः प्रोक्तः" इत्यादिना। "वरुण-सहचरद्वय-शतावरी दहन मोरट बिल्वविषाणिका—द्विबृहती—द्वि करञ्ज जयाद्वय-बहुल-पल्लव-दर्भरुजकराः" इत्यादिना वा प्रोक्तो ग्राह्यः॥

जठरस्य रुजः सर्वास्तथा च मलनिग्रहम् ॥ १०३ ॥
आध्मानकमथाऽऽनाहं विषूचीं मन्दवह्निताम् ।
आमदोषानशेषांश्च गुल्मं छर्दिश्च दुर्धराम् ॥ १०४ ॥
ग्रहणीं श्वासकासौ च क्रिमिरोगमशेषतः ।
हन्यात्सर्वाङ्गसदनं मन्यास्तम्भं च वाजिनाम् ॥ १०५ ॥
ज्वरे चैवाऽतिसारे च मूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुरूपेण दापनीयं भिषग्वरैः ॥ १०६ ॥
श्रीमता नन्दिना प्रोक्तो वातविध्वंसनो रसः ।
क्षुधार्थिभिः सदा सेव्यः सर्वाहारपरैर्नरैः ॥ १०७ ॥

अभ्रकभस्म का सत्त्व १ पल, कांसे की भस्म दो पल, ताम्र की भस्म ३ पल, शुद्धस्वर्णमाक्षिक ४ पल, शुद्धगन्धक ५ पल, शुद्धहरताल ६ पल लेकर सबको खरल में महीन पीसकर कज्जली बना लेनी चाहिए । फिर उस कज्जली को एरण्ड तैल से आप्लावित करके सात दिन तक खरल करें । प्रतिदिन एरण्डतैल थोड़ा२ (जितने से चूर्ण भींग सके) डालना चाहिए । पश्चात् निम्बू के रस के साथ सात दिन तक खरल करके गोला बनाकर उसको निम्बू के रस के साथ घोटकर कल्क की हुई हरताल से आधे अङ्गुल मोटा लेप करके सुखालेवें। फिर इस गोले को शरावसम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र के द्वारा बारह प्रहर (३६ घण्टे) तक पाक करना चाहिए । पाक होने के पश्चात् स्वाङ्गशीतलयन्त्र से सम्पुट को निकाल कर उसमें से सिद्ध रस को लेके खरल में महीन चूर्ण करके वस्त्र से छान लेना चाहिए । फिर इस छाने हुए चूर्ण को खरल में डालकर पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक् और सोंठ) के क्वाथ से सात वार भावित करके चित्रक की जड़ के क्वाथ से सातवार भावित करें । फिर वरुणादिगण की औषधियों के क्वाथ से सात भावनाएं देकर दशमूल के क्वाथ से सात भावनाएं देवें । पश्चात् अद्रक के स्वरस से भी सातवार भावितकरके अच्छी प्रकार घोटकर उस में समस्तौषधि का सोलहवां भाग लाल रङ्ग का शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण मिलाकर सब को एक दिन तक खरल करके बड़े वेर की गुठली के बराबर की गोलियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें । इस प्रकार यह वातविध्वंसन रस तैय्यार होता है । यह रस प्रतिदिन यथाव्याधिहर द्रव्यों के चूर्णादिकों

के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार की व्याधियों को नष्ट करता है। यह रस अस्सी प्रकार के भिन्न २ वातरोग तथा उन से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव, आठ प्रकार के गुल्म, आठ प्रकार के शूल, उदर की सब व्याधियां, मलावरोध, आध्मान, आनाह, विसूची, अग्निमांद्य, सर्व प्रकार के आमविकार, गुल्म, दुस्साध्य वमन, संग्रहणी, श्वास, कास, समस्त प्रकार के कृमि जन्यरोग, सर्वाङ्ग की पीड़ा, मन्यास्तम्भ और घोड़ों के विकारों को भी नष्ट करता है। इस रस को ज्वर, अतीसार, मूलरोग (अर्श) और त्रिदोषजन्य रोगों में भी प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को जिस रोग की निवृत्ति के लिए सेवन करते हों उसके अनुसार पथ्य का सेवन करना चाहिए। इस वातविध्वंसन रस को श्रीमान् नन्दी नामक आचार्य ने कहा है। इस रस को क्षुधार्थी पुरुष अथवा अग्निमांद्य पीड़ित पुरुष सदा सेवन किया करें। उनके लिये इस रस के सेवन करने में कोई विशेष नियम नहीं है। अर्थात् क्षुधार्थीजन इसके सेवन करते समय यथेष्ट आहार का सेवन कर सकते हैं ॥ ९६-१०७ ॥

विमर्शः—"मृतमभ्रकसत्त्वञ्च" इस जगह रसेन्द्रसारसंग्रह में "सूतमभ्रकसत्त्वञ्च" ऐसा पाठ है। वास्तव में इस रस के निर्माण में कज्जली बनाने का वचन है अतः पारद के बिना कज्जली का बनाना असम्भव है इसलिये पारद का ही ग्रहण करना आवश्यक है।

अथ वृकोदरगुटिका (रसः)—

सूतगन्धकतीक्ष्णाभ्रः सताप्यैः समभागिकैः।
रसांशमपरं सर्वं षट्कोलं जीरकद्वयम् ॥ १०८ ॥
सौवर्चलं ससिन्धूत्थं विडङ्गं च हरीतकी।
अम्लवेतसकं सर्वं बीजपूराम्बुमर्दितम् ॥
गुटिकास्तेन कल्केन कार्याः कोलास्थिमात्रकाः ॥ १०९ ॥
योगिन्या बहुघातिनामयुतया त्रैलोक्यविख्यातया
निर्दिष्टा हि वृकोदरीति गुटिका सोष्णाम्बुना सेविता।
निःशेषानिलदोषशोषजरुजः श्लेष्मामरोगोद्भवं
मन्दाग्निं ग्रहणीं चतुर्विधमहाजीर्णं च तूर्णं जयेत् ॥ ११० ॥

शुद्धपारद १ तोला, शुद्धगन्धक १ तोला, तीक्ष्ण लौहभस्म १ तोला, अभ्र-

कभस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला तथा षट्कोल अर्थात् पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर (सोंठ) तथा मरिच, कालाजीरा, सफेद जीरा, सैन्धव लवण, सौवर्चल लवण, वायविडङ्ग, हरड़ और अम्लवेंत इनमें से प्रत्येक द्रव्य रस (पारद) के बराबर अर्थात् एक २ तोले भर अथवा इन्हें समभाग में मिलाकर रस के बराबर लेवें। अधिकतर प्रथमार्थ ही किया जाता है। सर्वप्रथम उक्त पदार्थों में से पारद और गन्धक को लेकर पत्थर की खरल में महीन कज्जली बना के उसमें शेष द्रव्यों को मिलाकर अच्छी तरह से घोट के महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् बीजोरे निम्बू के रस के साथ एकदिन तक खरल कर के कल्क बना कर बेर की अस्थि (गुठली) के बराबर की गोलियां बना के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को त्रिलोक में विख्यात बहुधातोनामवाली योगिनी ने वृकोदरी गुटिका के नाम से कहा है। यह वृकोदरी गुटिका प्रतिदिन उष्ण जल के साथ सेवन करने से सब प्रकार के वायुविकार से उत्पन्न हुए रोग और उनकी वेदना, कफ की विकृति से उत्पन्न रोग, आमदोष से उत्पन्न रोग, अग्निमांद्य, संग्रहणी और चार प्रकार का दुस्साध्य अजीर्ण आदि सब रोगों को नष्ट करता है ॥१०८–११०॥

अथ प्रभावती वटी–(रसः)।

हेमाभ्रालकतीक्ष्णताप्यकमलाश्चैषां समं सप्तकं
सूतं च द्विगुणं विशोध्य नवधूस्नुग्वह्निशोभाञ्जनात् ॥
पाठाशूरणसिन्दुवारविजयैरेरण्डद्रवैर्मर्दितं
तैलं काङ्गुणिगन्धकं कटु भवेत्कल्के वटीं कल्पयेत् ॥ १११ ॥
प्रभावतीति कथिताऽऽर्द्रकद्रावैर्निषेविता।
ततश्चानुपिबेत्तोयं दशमूलप्रसाधितम् ॥ ११२ ॥
सपिप्पलीकं पिबता जलं जये-
न्मरुद्विकारानुदराण्यपस्मृतिम् ॥ ११३ ॥

स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रकभस्म १ तोला, आलक अर्थात् शुद्धहरताल १ तोला, तीक्ष्णलोहभस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तोला, कमल अर्थात् ताम्रभस्म १ तोला तथा सातवां शुद्धपारद एक भाग की अपेक्षा द्विगुण (२ तो०) लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष

द्रव्य मिला के सब का अच्छी प्रकार से महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। पश्चात् विशोधन अर्थात् नागर वेल, वधू अर्थात् स्पृक्का या शारिवा, (कुछ टीकाकार विशोधनवधूः, इतना एक पद मान कर उस का शारिवा अर्थ करते हैं), थूहर, चित्रक की जड़ और शोभाञ्जन, पाठा, सूरण कन्द, निर्गुण्डी, भाङ्ग और एरण्ड की जड़ इन द्रव्यों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से उक्त स्वर्णादि भस्मों के चूर्ण को क्रमशः एक २ वार खरल कर लेना चाहिए। पश्चात् कङ्गुनी (मालकाङ्गनी) के तैल, गन्धक के तैल और त्रिकटु से सिद्ध हुए तैल या कड़ुए तैल से पृथक् २ एक २ वार घोट कर कल्क बना कर उस की एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुई औषध को प्रभावती गुटिका कहते हैं। इस की एक २ गोली प्रतिदिन अदरख के स्वरस के साथ सेवन कर के दश मूल के द्रव्यों से बनाए हुए क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण डाल कर पीना चाहिए। इस तरह प्रतिदिन यह रत सेवन करने से सर्व प्रकार के वात रोग, उदर रोग तथा अपस्मार को नष्ट कर देता हैं॥ १११-११३॥

अथ स्वच्छन्दभैरवरसः—

तीक्ष्णाऽयस्कान्तगोदन्तमाक्षिकैर्मर्दितो रसः।
समांशगन्धकः पक्को हण्डिकायन्त्रमध्यगः ११४॥
व्योषाग्निमन्थसुरसाकन्दश्टङ्ग्यभयाविषैः।
समैः समं त्र्यहं मुण्डीनिर्गुण्डीरसपिण्डितः॥ ११५॥
सेवितः शमयेद्वातान्नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः।
विशेषाद्वातरक्तं च द्विवल्लं चार्द्रकैर्ददेत्॥ ११६॥

तीक्ष्ण लौह की भस्म १ तोला, कान्त लौह की भस्म १ तोला, गोदन्ती भस्म १ तोला, स्वर्णमाक्षिक भस्म १ तोला, शुद्ध पारद १ तोला तथा शुद्ध गन्धक १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला कर सब का अच्छी प्रकार महीन चूर्ण करके नवमाध्याय में कहे हुए हण्डिका यन्त्र (स्थालीयन्त्र) में बन्द करके पाक करना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्ध रस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके उसमें व्योष (सोंठ, मरिच, पिप्पली) अग्निमन्थ (अरणी) को जड़, तुलसी का पञ्चाङ्ग

सूखा हुआ सूरण कन्द, काकड़ा सींगी, हरड़ और शुद्ध वत्सनाभ इन को समान लेकर महीन चूर्ण करके सिद्ध रस के बराबर लेकर उसमें मिला देना चाहिए। फिर सबको गोरखमुण्डी के क्वाथ में तीन दिन तक घोट कर निगुण्डी की जड़ के क्वाथ के साथ तीन दिन तक घोट लेवें। फिर उसकी एक २ माशे भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रस को स्वच्छन्दभैरव रस कहते हैं। यह रस सर्व प्रकार के वातरोगों को नष्ट करता है। दो वल्ल (६ रत्ती भर) यह रस आर्द्रक (आदी) के स्वरस के साथ सेवन करने से वात रक्त रोग को नष्ट करता है॥ ११४–११६॥

अथ स्वच्छन्दभैरवरसः—

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यगन्धकतालकम्।
पथ्याग्निमन्थनिर्गुण्डीत्र्यूषणं टङ्कणं विषम्॥ ११७॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्ले दिनं निर्गुण्डिकारसैः।
मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तं द्विगुञ्जं वटकीकृतम्॥
भक्षयेत्सर्ववातार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवम्॥ ११८॥

शुद्ध पारद १ तोला, मृत लौह (लौह भस्म) १ तोला, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, अरणी की जड़ का चूर्ण १ तोला, निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण १ तोला, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ का चूर्ण १ तोला, मरिच का चूर्ण १ तोला, पिप्पली का चूर्ण १ तोला, शुद्ध टङ्कण १ तोला तथा शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के सब को एक दिन तक अच्छी प्रकार घोट कर निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस और मुण्डी (गोरख मुण्डी) के पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ पृथक् २ एक २ दिन तक खरल करके दो २ रत्ती भर की गोलियां बना लेनी चाहिएं। इस को स्वच्छन्दभैरव रस कहते हैं। इस रस के सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं॥ ११७–११८॥

अथ वडवानलरसः—

सूतहाटकवज्रार्ककान्तभस्म समाक्षिकम्।
तालं नीलाञ्जनं तुत्थमब्धिफेनं समांशकम्॥ ११९॥
पञ्चानां लवणानां तु भागैकैकं विमर्दयेत्।

वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पचेत् ॥ १२० ॥
माषैकं चार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वडवानलम् ।
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सपिप्पल्यनुपाययेत् ॥
धनुर्वातं दण्डवातं शृङ्खलाकम्पवातनुत् ॥ १२१ ॥

शुद्धपारद अथवा रससिन्दूर १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, हीरकभस्म १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला, कान्तलौहभस्म १ तोला, शुद्धस्वर्णमाक्षिक १ तोला, शुद्धहरताल १ तोला, शुद्धनीलाञ्जन १ तोला, शुद्धनीलतुत्थक १ तोला, शुद्ध समुद्रफेन १ तोला, सैन्धवलवण १ तोला, सामुद्रलवण १ तोला, बिडलवण १ तोला, सौंचललवण १ तोला, रोमकलवण १ तोला लेकर प्रथम सबको खरल में घोटकर महीन चूर्ण बना के थूहर के शुद्धदुग्ध के साथ एक दिनतक खरल करके गोला बना लेवें। इस गोले को भूधरयन्त्र में बन्द करके २४ घण्टे तक पकाना चाहिए। स्वाङ्गशीतलयन्त्र से सिद्ध रसको निकालकर खरलमें महीन पीस के काच की शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए रसको वड़वानल रस कहते हैं। एक माशेभर इस रस को अदरख के स्वरस के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से पिपरामूल के क्वाथ में पिप्पली का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन इस रसके सेवन करने से धनुर्वात, दण्डवात, शृङ्खलावात और कम्पवात आदि भयङ्कर वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं ॥११९-१२१॥

अथ त्र्यम्बकेश्वररसः—

सूतकस्य पलं पञ्च पलैकं ताम्रचूर्णकम् ।
जम्बीराणां द्रवैः पिष्टं सुततूल्यं च गन्धकम् ॥ १२२ ॥
नागवल्लीदलैः पिष्टं ताम्रपिष्टं प्रकल्पयेत् ।
रुद्ध्वा लघुपुटः पच्याद् भूधरे यामपञ्चकम् ॥ १२३ ॥
आदाय चूर्णयेत्तुल्यैस्त्र्यूषणैः सममिश्रितैः ।
अर्धाङ्गकम्पवातार्त्तो भक्षयेच्च द्विगुञ्जकम् ॥ १२४ ॥

शुद्ध पारद ५ पल, ताम्र की भस्म १ पल तथा पारद के बराबर (५ प०) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना के फिर उसमें ताम्रभस्म मिला के जम्बीरी निम्बू के रस के साथ सात दिन तक खरल करके नागरवेलपत्र (पान) के स्वरस के साथ सात दिन तक घोटकर गोला बना के

सुखा लेवें। पश्चात् इस गोले को ताम्र के सम्पुट में बन्द करके भूधरयन्त्र में रख करके एक प्रहर तक मन्द२ अग्नि से पाक करना चाहिए। अथवा शुद्ध पारद ५ प०, शुद्ध ताम्र के पत्र १ पल और शुद्ध गन्धक ५ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली बना के उसमें ताम्रपत्र मिलाकर जम्बीरीनिम्बू और पान के रस के साथ अच्छो तरह १४ दिन तक घोटकर शराव सम्पुट में बन्द करके बालुकायन्त्र में एक प्रहर तक पाक कर लेना चाहिए। स्वाङ्गशीतल यन्त्र से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन पीस के उसमें सिद्धरस के बराबर–समभाग त्र्यूषण (सोंठ, मरिच, पीपल) का चूर्ण मिलाके घोट कर काच की शीशी में भर देवें। दो रत्ती भर इस रस को प्रतिदिन अद्रक रस और मधु के साथ अर्धाङ्ग और कम्पवात से पीड़िग रोगी को सेवन करना चाहिए॥ १२२–१२४ ॥

अथ गगनगर्भावटी–(रसः)

सूताभ्रं तीक्ष्णताम्रं च मृतं तालकगन्धकम्।
भार्ङ्गी शुण्ठी वचा धान्यकम्पिल्लं चाभया विषम्॥ १२५॥
मर्द्यं पर्पटकद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम्।
वातश्लेष्महरा ह्याशु वटी गगनगर्भिता॥ १२६॥

शुद्ध पारद १ तोला, अभ्रक की भस्म १ तोला, तीक्ष्ण लोह भस्म १ तोला, ताम्र भस्म १ तोला, शुद्ध हरताल १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, वच का चूर्ण १ तोला, धनिए का चूर्ण १ तोला, कबीले का चूर्ण १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला तथा शुद्ध वत्सनाभ विष चूर्ण १ तोला लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के पित्त पापड़े के स्वरस या क्वाथ के साथ सात दिन तक घोट कर एक २ निष्क भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस को गगनगर्भा वटी कहते हैं। इस रस की एक २ वटी प्रतिदिन पान के स्वरस और मधु के साथ सेवन करने से वात और कफ की विकृति से उत्पन्न रोग नष्ट हो जाते हैं॥ १२५–१२६ ॥

अथ वातगजाङ्कुशरसः—

मृतं सूतं मृतं लोहं गन्धकं तालमाक्षिकम्।
पथ्याभृङ्गीविषव्योषमग्निमन्थं च टङ्कणम्॥ १२७॥

तुल्यं खल्ले दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिजद्रवैः।
द्विगुञ्जां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशान्तये॥
साध्याऽसाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजाङ्कुशः॥ १२८॥

मृत सूत अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर १ तोला, लौह भस्म १ तोला, शुद्ध गन्धक १ तोला, रजत भस्म १ तोला, स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला अथवा केवल तारमाक्षिक (रूपामाखी) की भस्म १ तोला, हरड़ का चूर्ण १ तोला, (तालमाक्षिक पाठे तु शुद्ध ताल १ तोला और स्वर्ण माक्षिक भस्म १ तोला लेवें) पथ्या चूर्ण १ तोला, मृङ्गी विष अर्थात् शुद्ध अतिविषा का चूर्ण १ तोला, व्योष चूर्ण (त्रिकटु चूर्ण पृथक्) १ तोला, अरणी की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा शुद्धसुहागा १ तोले भर लेकर सब को खरल में महीन पीस के चूर्ण कर लेवें। पश्चात् गोरखमुण्डी के पञ्चाङ्ग के क्वाथ और निर्गुण्डी की जड़ के क्वाथ या पत्तों के स्वरस के साथ पृथक् २ सात २ वार घोट कर दो २ रत्ती भर की गोलियां बनाकर काच की शीशी में भर देवें। इस को वातगजाङ्कुश रस कहते हैं। यह रस साध्य और असाध्य सर्व प्रकार के वातिकरोगों को नष्ट करता है। इस रस के सर्व प्रकार के वातरोगों की शान्ति के लिये वात हर काष्ठौषधिचूर्णादिकों के साथ सेवन करना चाहिए॥१२७-१२८॥

अथ शतावरीगुग्गुलुः—

शतावरी गुडूची च सारणी गोक्षुरः कणा।
शताह्वा दीप्यका रास्ना ह्यश्वगन्धा च संज्ञका॥ १२९॥
कचोरो नागरश्चैते चूर्णनीयाः समांशकाः।
एतैः सर्वैः समो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाक्षकः॥ १३०॥
खण्डयित्वा घृतेनाऽऽर्द्रं पूर्वचूर्णं विनिक्षिपेत्।
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं कर्षार्धगुलिकां किरेत्॥ १३१॥

शतावर, गुडूची, गन्धप्रसारणी, गोखरू, पिप्पली, सौंफ, अजवाईन, रासना, असगन्ध, संज्ञक (अर्थात् पीतकाष्ठ, पीतचन्दन या पद्मकाष्ठ), कचोर (कचूर) और सोंठ इन औषधियों को समान लेकर लोहे की ओखली (इमामदस्ता) में कूट के महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। फिर समस्त चूर्ण के बराबर महिषाक्ष नामक (भैंसिया) गूगल लेकर प्रथम त्रिफला क्वाथ में यथा विधि उसका

शोधन करके सुखा लेवें। पश्चात् गूगल को गोघृत के साथ अच्छी प्रकार घोट के उस में उपर्युक्त चूर्ण मिलाकर एक दिनतक खरल करके आधे कर्ष (८ मा०) भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इसको शतावरी गुग्गुलु की एक २ गोली प्रतिदिन गरम पानी या गरम दुग्ध के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग विशेषकर अर्धाङ्ग वातविकार आदि ठीक हो जाते हैं ॥ १२९-१३१ ॥

अथ योगराजगुग्गुलुः—

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
पाठाविडङ्गेन्द्रयवहिङ्गुभार्ङ्गीवचान्वितैः ॥ १३२ ॥
सर्षपाऽतिविषाजाजीरेणुकाकृष्णजीरकैः।
गजकृष्णाजमोदाभ्यां कटुकामूर्वमिश्रितैः ॥ १३३ ॥
समभागान्वितैः सर्वैस्त्रिफला द्विगुणा भवेत्।
त्रिफलासहितैरेतैः समभागस्तु गुग्गुलुः ॥ १३४ ॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं मधुना च परिप्लुतम्।
योगराजमिमं विद्वान्भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १३५ ॥
अर्शांसि वातगुल्मं च पाण्डुरोगमरोचकम्।
नाभिशूलमुदावर्तं प्रमेहं वातशोणितम् ॥ १३६ ॥
कुष्ठं क्षयमपस्मारं हृद्रोगं ग्रहणीगदम्।
महान्तमग्निसादं च श्वासकासभगन्दरम् ॥ १३७ ॥
रेतोदोषाश्च ये पुंसां योनिदोषाश्च योषिताम्।
निहन्यादाशु तान्सर्वान्दुर्वारान्न च संशयः ॥ १३८ ॥
एष निष्परिहारोऽस्ति पानभोजनमैथुने।
सतताभ्यासयोगेन वलीपलितनाशनः ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ १३९ ॥
क्षीराज्यरसभुक्तानां दोषधातुमलोचितम्।
बुभुक्षिता मात्रयाऽन्नमद्याद्गुग्गुलुसेवकः ॥
प्रमेहं योगराजोऽयं दृष्टं दृष्ट्या जयेदिति ॥ १४० ॥

पिप्पलीचूर्ण १ तोला, पिपरामूलचूर्ण १ तोला, चव्यचूर्ण १ तोला, चित्रकचूर्ण

१ तोला, सोंठ का चूर्ण १ तोला, पाठाचूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, इन्द्रयवचूर्ण १ तोला, शुद्ध हीङ्ग का चूर्ण १ तोला, भारङ्गी का चूर्ण १ तोला, वचाचूर्ण १ तोला, सरसों का चूर्ण १ तोला, शुद्धअतीस का चूर्ण १ तोला, जीरे का चूर्ण १ तोला, हरेणुका का चूर्ण १ तोला, कृष्णजीरकचूर्ण १ तोला, गजपीपल का चूर्ण १ तोला, अजमोद का चूर्ण १ तोला, कुटकीचूर्ण १ तोला, मूरवा की जड़ का चूर्ण १ तोला तथा इन चूर्णों के बराबर (२० तोले) समभाग त्रिफला का चूर्ण और त्रिफला के सहित उपर्युक्त चूर्णों के बराबर (४० तो०) शुद्धगूगल लेकर प्रथम गूगल को खरल में महीन पीस के अथवा गूगल को वस्त्र में पोटली के रुप से बांधकर हण्डिका या कड़ाही में भरे हुए त्रिफला के क्वाथ में लटका देवें। फिर उस पात्र को चूल्हे पर चढा कर अग्नि जला देवें। जब पोटली से समग्र गूगल छन २ कर क्वाथ में मिल जाय तब क्वाथ को गाढा कर लेना चाहिए। पश्चात् उपर्युक्त द्रव्यों के चूर्ण को बड़ी खरल में डाल कर चूर्ण में गरम २ या कुछ शीतल होने पर गुग्गुलुमिश्रित क्वाथ मिला देना चाहिए। फिर सब को एक दिनतक निरन्तर खरल कर के गाढे हो जाने पर शहद् की एक भावना देकर अच्छी तरह घोट के गोली बनाने योग्य होने पर घृत को हाथों या अङ्गुलियों में लगा २ कर आधे २ कर्ष भर को गोलियां बना के सुखाकर काच की शीशी में भर देवें। आयुर्वेदशास्त्र के विद्वान इसको योगराज गुग्गुलु कहते हैं। इस योगराज गुग्गुलु की एक २ गोली प्रतिदिन अथवा एक गोली प्रातःकाल और एक गोली रात को सोते समय गरम जल अथवा गरम दुग्ध के साथ सेवन करनी चाहिए। इस प्रकार इसके सेवन करने से सर्व प्रकार के वातिकरोग नष्ट हो जाते हैं तथा यह योगराज गुग्गुलु, यथाव्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के अर्श, वातगुल्म पाण्डुरोग, अरुचि, नाभिशूल, उदावर्त्त, प्रमेह, वातरक्त, कुष्ठ, क्षय (राजयक्ष्मा), अपस्मार, हृदयके रोग, संग्रहणी, अत्यन्त बढी हुई मन्दाग्नि, श्वास, कास, भगन्दर, पुरुषों के वीर्य्य सम्बन्धी विकार और स्त्रियों के योनिदोष तथा इनके अतिरिक्त अन्य सब व्याधियों को नष्ट करता है। इस गुग्गुलु के सेवन करते समय खाद्य पेय तथा अन्य विहारादिकों का वर्जन कराना या परहेज रखना आवश्यक नहीं है तथापि लाल मिरच, खटाई, तैल और अधिक विषय वासनाओं का त्याग करना अधिक फलप्रद है। इस गुग्गुलु,

को यदि स्वस्थ पुरुष भी सदा सेवन करता रहे तो उस के वली और पलित ये रोग नष्ट हो जाते हैं तथा वह अन्य प्रकार की व्याधियों से निर्मुक्त होकर तीन सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है। योगराजगुग्गुलु को सेवन करने वाले पुरुष को चाहिए कि वह अपने वातादिक दोष, धातु तथा मल और प्रकृति के अनुकूल दुग्ध, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों के साथ भात, रोटी आदि भोज्य पदार्थों को भूख लगने पर सेवन करता रहे। यह योगराजगुग्गुलु प्रमेह में विशेष हित कर है। ऐसा सब का अनुभव है॥ १३२–१४०॥

अथ द्वितीयो योगराजगुग्गुलुः—

चित्रकं पिप्पलीमूलं यवानी कारवी तथा।
विडङ्गान्यजमोदाश्च जीरकं सुरदारु च॥ १४१॥
वचैला सैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम्।
त्रिफला मुस्तकव्योषत्वगुशीरं यवाग्रजम्॥ १४२॥
तालीशपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
एतानि समभागानि तावन्मात्रं च गुग्गुलुम्॥ १४३॥
सम्मर्द्य सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिपेत्।
भक्षयेत्कर्षमात्रं च वातरोगान्विनाशयेत्॥ १४४॥
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारसेवनात्।
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः॥ १४५॥
आमवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानि च।
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत्॥
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिबलं तथा॥ १४६॥

चित्रक की जड़ का चूर्ण १ तोला, पिप्पली मूल का चूर्ण १ तोला, अजवाईन का चूर्ण १ तोला, काले जीरे का चूर्ण १ तोला, वायविडङ्ग का चूर्ण १ तोला, अजमोद का चूर्ण १ तोला, सफेद जीरे का चूर्ण १ तोला, देवदारू का चूर्ण १ तोला, वच्यचूर्ण १ तोला, इलायची का चूर्ण १ तोला, सैन्धव लवण १ तोला, कूट का चूर्ण १ तोला, रासना का चूर्ण १ तोला, गोक्षरू का चूर्ण १ तोला, धनिये का चूर्ण १ तोला, त्रिफले का चूर्ण १ तोला, शुद्ध नागर मोथे का चूर्ण १ तोला, व्योष (सोंठ, मरिच, पिप्पली) का चूर्ण १ तोला, दालचीनी का चूर्ण १ तोला,

उशीर (खस) का चूर्ण १ तोला, यवक्षार १ तोला, तालीश पत्र का चूर्ण १ तोला, तेज पत्र का चूर्ण १ तोला तथा सब के बराबर गूगल लेकर प्रथम गूगल को कपड़े में पोट्टली के रूप में बांध कर हण्डिका या कढाही में भरे हुए त्रिफला के क्वाथ में लटका के चूल्हे पर चढ़ा कर अग्नि प्रदीप्त कर देनी चाहिए। जब पोट्टली से छन छन कर सब गूगल त्रिफले के क्वाथ में घुल कर मिल जाय तब उस को उपर्युक्त चूर्णों के साथ खरलमें मिला कर एक दिन तक खरल करें। पश्चात् उस को घृत से आप्लुत (भींगो) कर के फिर एक दिन तक घोट कर एक २ कर्ष भर की गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। प्रायः तीन २ माशे भर ही की गोलियां बनानी चाहिएं। इस योगराजगूगल को ३ माशे से १ कर्ष तक के प्रमाण से प्रतिदिन मन्दोष्ण दुग्ध या पानी के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के पाप रोग नष्ट हो जाते हैं। इस गूगल की अवस्था, रोग की तीव्रातीव्रता और रोगी के बल तथा प्रकृति के अनुसार मात्रा की कल्पना करनी चाहिए। इस गूगल के सेवन करते समय यथेष्ट आहारादिक का सेवन करने में कोई हानि नहीं है। यह योग अमृत के समान गुणकारी है अतः इस की योगराज इन नाम से ख्याति हुई है। यह योगरोजगुग्गुलु यथा व्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से आमवात, आढयवात अर्थात्सर्व प्रकार के वात रोग क्रिमि और क्रिमिजन्य रोग दुष्ट व्रण, प्लीहा की वृद्धि, गुल्म, उदर के जलोदर और आनाहादिक रोग तथा अर्श को नष्ट करता है। यह योग अग्नि (पाचक शक्ति) प्रदीप्त करता है तथा तेज और बल को बढ़ाता ॥ १४१-१४६ ॥

अथ षडङ्गगुग्गुलुः—

रास्नामृतादेवदारुशुण्ठीवातारितुल्यकम्।
गुग्गुलुं सर्वतुल्यांशं कुट्टयेत् घृतवासितम् ॥
कर्षांशं भक्षयेच्चानुख्यातः षष्ठाङ्गगुग्गुलुः ॥ १४७ ॥

रास्ना, गुडूची, देवदारू, सोंठ और एरण्ड की जड़ इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् सब चूर्ण के बराबर गूगल लेकर पूर्ववत् त्रिफला क्वाथ में शुद्ध करके चूर्णमें मिलाकर खरल में दिनभर घोंट के गोघृत से अच्छी तरह आप्लुत या भीगों कर रात भरके लिये रख दें। फिर दूसरे दिन दिनभर घोटकर या लोहे की खरल (ओखली) में जोर २ से कूट कर तीन २ माशेभर

की गोलियां बनाके शीशी में भर देवें। इसको षडङ्ग या षष्ठाङ्गगुग्गुलु कहते हैं। इसको उचित मात्रा से मन्दोष्ण दुग्ध या जल के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के वातरोग नष्ट हो जाते हैं॥ १४७॥

अथ विजयभैरवतैलम्—

धान्याम्लपिष्टसुरभित्रयसूतलिप्त-
तैलाक्तदीप्तपटवर्तिमुखात्प्रवृत्तम्।
कम्पोत्तराञ्जयति पानविलेपनाभ्यां
वातामयान्विजयभैरवनाम तैलम्॥ १४८॥

सुरभित्रय अर्थात् गन्धक, हरताल और मनःशिला तथा पारद इन चारों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में महीन कज्जली कर लेनी चाहिए। पश्चात् उसको काञ्जी के साथ अत्यन्त महीन घोंटकर पतला कल्क बना के दो या तीन पर्त की हुई वस्त्र की लम्बी पट्टी पर फैलाकर या लेप करके बत्ती बना कर सुखा लेवें। पश्चात् उस बत्ती को तिल्ली अथवा कटु (सरसों के) तैल में आप्लुत (भींगो) करके उसके एक सिरे (भाग) को चिमटे से पकड़ कर लटकते हुए दूसरे सिरे को जला देवें। इस तरह ज्यों २ बत्ती जलती जायगी त्यों २ उस के जलते भागसे तैल की बूंदे टपकेंगी। उनको एक स्निग्ध मिट्टी के छोटे वर्तन में इकट्ठो कर लेनी चाहिए। इस प्रकार से निकले हुए तैल को विजयभैरव तैल कहते हैं। इस तैल को दुग्ध में डालकर स्वल्प मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से तथा वातरोग पीड़ित स्थान पर इसके मर्दन करने से कम्पयुक्त वातिक रोग तथा अन्य प्रकार के वातविकार नष्ट हो जाते हैं॥ १४८॥

अथ द्वितीयविजयभैरवतैलम्—

रसतालशिलागन्धं दिनं सञ्चूर्ण्य काञ्जिकैः।
लिप्त्वा वस्त्रैः कृतां वर्तिं तैलाक्तां ज्वालयेत्पुनः॥ १४९॥
तद्भूतं(१)सङ्ग्रहेत्तैलमधः पात्रे धृते सति।
तत्तैललेपितं(२)पत्रं नागवल्ल्याश्च भक्षयेत्॥ १५०॥

---

(१) तन्त्रान्तरोक्तविजयभैरवतैलमित्यन्ये।
(२) तैलं विजयभैरवमिति पाठान्तरम्।

वाहुकम्पं शिरःकम्पमेकाङ्गं जानुकम्पनम्।
नाशयेद्भक्षणाल्लेपात्तैलं विजयभैरवम् ॥ १५१ ॥

पारद, गन्धक, मनःशिला और हरताल इन चारों को समभाग लेकर खरल में महीन कज्जली बनाके काञ्जी के साथ एक दिन तक घोटकर कल्क बनाके उसका एक वस्त्र की पट्टी पर प्रलेप करके बत्ती बनाकर सुखा लेवें। इस बत्ती को कटुतैल में भींगो कर पूर्ववत् अग्नि से जला दें तथा उसके नीचे पात्र रख दें। इस तैल को पान के पत्ते पर लगाकर प्रतिदिन सेवन करने से तथा मर्दन करने से वाहु का कम्प, शिरःकम्प एकाङ्गवात, जानुकम्प आदि वातविकार नष्ट हो जाते हैं ॥१४९-१५१॥

सूततैलम्—

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात्समांशकम्।
चूर्णयित्वा ततः श्लक्ष्णमारनालेन मर्दयेत् ॥ १५२ ॥
लेपयित्वा तु कल्केन सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम्।
तैलाक्तां कारयेद्वर्तिमूर्ध्वभागे प्रदीपयेत् ॥ १५३ ॥
वर्त्त्यधः स्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम्।
लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षयेदातुरस्तथा ॥ १५४ ॥
नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगाननेकधा।
वाहुकम्पं शिरःकम्पं जङ्घाकम्पं ततः परम् ॥ १५५ ॥
एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति रोगाननेकधा।
रोगशान्त्यै सदा देयं सूततैलमिदं शुभम् ॥ १५६ ॥

पारद, गन्धक, मनःशिला और हरताल इन सब को समभाग लेकर अच्छी तरह से पत्थर की खरल में महीन कज्जली कर के आरनाल (काञ्जी) के साथ घोटकर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से सूक्ष्म वस्त्र की पट्टी को लीपकर सुखा के तैल में भींगो कर उसके ऊपर के भाग को जला देवें तथा नीचे एक पात्र रख देवें। इस पात्र में बत्ती से तैल टपक २ कर एकत्रित हो जाता है। इस सूततैल को वातसे पीड़ित स्थान पर मर्दन करने से तथा पान के साथ या दुग्ध में डालकर प्रतिदिन सेवन करने से वातरोग नष्ट हो जाते हैं तथा विशेष कर यह तैल वाहुकम्प, शिरःकम्प, जङ्घाकम्प तथा एकाङ्गवात को नष्ट करता है तथा

अन्य रोगों में भी हितकर है। इस शुभ सूततैल को वातिक रोगों की शान्ति के लिये सदा प्रयुक्त करना चाहिए ॥ १५२–१५६ ॥

अथ एरण्डतैलत्रिफलादिसिद्धघृतमानन्दभैरवोपदेशश्च—

एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पक्त्वा सर्वाङ्गं तेन मर्दयेत् ॥ १५७ ॥
त्वग्वातघ्नं महाश्रेष्ठं देयश्चानन्दभैरवम् ।
लशुनं सैन्धवं तैलमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ १५८ ॥

एरण्ड (रेड़ी) का तैल आध सेर तथा घृत आध सेर तथा दोनों से चतुर्थांश अर्थात पाव भर समभाग से लिये हुए त्रिफला, चित्रक की जड़ और वत्सनाभ का चूर्ण और स्नेह (घृत तैल) से चतुर्गुण गोमूत्र लेकर सबको कड़ाही में डाल के चूल्हे पर पाककरें। जब स्नेहमात्र शेष रह जाय तब उतार के स्वाङ्गशीतल होने पर छान लेवें। इस घृत का सारे शरीर पर लेप (मर्दन) करना चाहिए। यह घृत त्वग्गत वातविकार को नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है। अथवा त्वचा के विकार तथा वातिकरोगों को नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है। कुछ टीकाकारों ने इस योग को निम्नरीति से बनाने के लिये लिखा है। यथा—एरण्ड का तैल, त्रिफलाचूर्ण, गोमूत्र, चित्रक की जड़ का चूर्ण और वत्सनाभविष का चूर्ण इन को समभाग लेकर खरल में घोट के कल्क वनालेवें। फिर इस कल्क से चौगुना घी और घृत से चौगुना जल लेकर स्नेहपाक विधि से घृत सिद्ध कर लेवें। इस घृत का शरीर पर मर्दन करना चाहिए तथा पूर्व में कहे हुए आनन्दभैरव रस को मधु के साथ सेवन करके लहसून का स्वरस, सैन्धव नीमक और तैल इनको समभाग के रूप में मिलाकर पीना चाहिए। इस तरह इस योग के सेवन करने से त्वचा के विकार तथा वातरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १५७–१५८ ॥

अथ सामान्योपायाः—
तत्र पर्पटरसप्रयोगविधिः—

पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ पूर्वप्रोक्तं च गुग्गुलुम् ।
कर्षार्धं खादयेत्साज्यमेकाङ्गानिलशान्तये ॥ १५९ ॥
एरण्डवह्निशुण्ठीनां गुडूच्याश्च कषायकम् ।
अनुपानाय दातव्यं चणकक्काथमेव वा ॥ १६० ॥

अधिकारान्तर अर्थात् तेरहवें अध्याय में कहे हुए ८ रत्ती भर पर्पटी रस और आधे कर्ष (८मा०) भर पूर्व में कहे हुए शतावरी, गुग्गुलु अथवा योगराज गुग्गुलु को छोटी खरल में महीन पीसकर घृत मिला के प्रतिदिन एकाङ्गवात के दूर करने के लिये सेवन करना चाहिए तथा उसके ऊपर समभाग से गृहीत एरण्ड की जड़, चित्रककी जड़, सौंठ और गुडूची का क्वाथ पीलाना चाहिए अथवा चनों को उबाल कर उनका पानी पीलाना चाहिए ॥ १५९–१६० ॥

अथ सर्जतैलम्—

नलिकायन्त्रयागेन सर्जतैलं समुद्धरेत् ।
तदभ्यङ्गप्रयोगेण वातो दुष्टः प्रशाम्यति ॥ १६१ ॥

नवम अध्याय में कहे हुए नालिकायन्त्र के द्वारा सर्ज अर्थात् राल का तैल निकालना चाहिए । इस तैल का अङ्ग पर मर्दन करने से दुष्टवात शान्त हो जाता है ॥ १६१ ॥

अथ एकाङ्गवातेपर्पटीरसप्रयोगविध्यन्तरम्—

अष्टगुञ्जामितं खादेदेकाङ्गे पर्पटीरसम् ।
अर्धकर्षं घृतेनानुयोगराजं च गुग्गुलुम् ॥ १६२ ॥

आठ रत्ती भर अथवा एक रत्ती से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक२ रत्ती बढाकर आठ रत्ती तक पर्पटी रस को मधु के साथ एकाङ्गवात में सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के पश्चात् आधे कर्ष (८ मा०) भर योगराज गुग्गुलु को घृत के साथ सेवन करें । इस योग से एकाङ्गवात में अवश्य लाभ होता है । गुग्गुलु खाकर ऊपर से मन्दोष्ण दुग्ध या जल पीना चाहिए ॥ १६२ ॥

अथ धूमसारादिषडङ्गप्रयोगः—

धूमसारं वरा यष्टी टङ्कणं पत्रकं विषम् ।
तुल्यं गुञ्जाद्वयं खादेदामवातप्रशान्तये ॥ १६३ ॥

रसोई घर के धूएं का सार अथवा घृत के दीपक से गृहीत धूम का कज्जल, त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) का चूर्ण, मुलेठी का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, तेजपत्र का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह से दिन भर घोट के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को दो रत्ती भर प्रतिदिन मधु के साथ आमवात रोग की शान्ति के लिये सेवन करना चाहिए ॥ १६३ ॥

अथ निर्गुण्डीप्रयोगः—

निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु कर्षं तैलेन लेहयेत्।
सन्धिवातः कटीवातः कम्पवातश्च शाम्यति ॥ १६४ ॥

निर्गुण्डी (सम्भालू) की जड़ के एक कर्ष भर चूर्ण को प्रति दिन तैल (एरण्ड) में मिला कर सेवन करने से सन्धिवात, कटीवात और कम्पवात आदि रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १६४ ॥

अथ रक्तैरण्डप्रयोगः—

रक्तस्यैरण्डमूलस्य कर्षं घृष्ट्वा जलैः पिबेत्।
सर्ववातहरं श्रेष्ठं भग्नवाते विशेषतः ॥ १६५ ॥

लाल एरण्ड (रेंडी) की जड़ के एक कर्ष (१६ मा०) भर चूर्ण को प्रति दिन जल के साथ सेवन करना चाहिए। अथवा एरण्ड की १ कर्ष भर जड़ को पत्थर पर जल से चन्दन की तरह घिस कर सेवन करें। यह योग सर्व प्रकार के वातरोगों को तथा विशेषकर भग्नवात को दूर करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ १६५ ॥

अथ इन्द्रवारुणीप्रयोगः—

इन्द्रवारुणिकामूलं मागधीगुडसंयुतम्।
भक्षयेत्कर्षमात्रं तत्सन्धिवातहरं भवेत् ॥ १६६ ॥

इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण ६ माशे भर, पिप्पली का चूर्ण २ माशे भर तथा ८ माशे भर गुड़ इन को मिला कर मन्दोष्ण जल के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सन्धिवात नष्ट हो जाता है ॥ १६६ ॥

अथ सर्वाङ्गैकाङ्गवातारिरसः—

मृतं सूतं मृतं तीक्ष्णं मर्दयेत्कटुकीद्रवैः।
चणमात्रां वटीं खादेत्सर्वाङ्गैकाङ्गवातनुत् ॥ १६७ ॥

शुद्ध पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर तथा तीक्ष्ण लोह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर खरल में महीन पीस के कुटकी के रस के साथ सात वार भावित करके चने के बराबर गोलियां बना के सुखा कर काच की शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रति दिन दुग्ध के साथ सेवन करने से एकाङ्ग वात तथा सर्वाङ्ग वात नष्ट हो जाते हैं ॥ १६७ ॥

अथ वातरक्तः—

सन्धिष्वनिलरक्ताभ्यां शोफोऽन्तर्बहिराश्रयः।
छर्दिज्वराऽरुचिकरो भवेद्वातास्रसंज्ञकः॥ १६८॥

दूषित वात और रक्त के कारण शरीर की भिन्न २ सन्धियों के भीतर तथा बाहर शोथ उत्पन्न हो जाता है तथा वह वमन, ज्वर और अरुचि इन उपद्रवों को उत्पन्न करता है, तब उस को वातरक्त कहते हैं॥ १६८॥

वातरक्ते अधिकारान्तरोक्तौषधप्रयोगोपदेशः—

त्रिनेत्राख्यं रसं खादेद्वातशोणितपीडितः।
वातास्रजिच्छूलगजकेसर्युदयभास्करः॥ १६९॥

शूलाधिकार में कहे हुए त्रिनेत्र नामक रस को वातरक्त से पीड़ित पुरुष को प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। अथवा प्रमेहाधिकार या शूलाधिकार में कहे हुए उदयभास्कर रस तथा शूलाधिकारोक्त शूलगजकेशरी रस को वातास्र (वातरक्त) में सेवन करना चाहिए॥ १६९॥

अथ वातरक्तादिसर्वरोगेसर्वेश्वरीपर्पटी—

पूर्वोक्तपर्पटी योज्या सर्वेष्वावरणेषु च।
सर्वरोगहिता चैव नाम्ना सर्वेश्वरी शुभा॥ १७०॥

विद्रधिरोग में सर्वेश्वरी इस नाम से कही हुई पर्पटी को प्रति दिन सर्व प्रकार के वातरक्त आदि रोगों में सेवन करें। सर्वेश्वरी नामक पर्पटी अनुपान भेद से सब रोगों में हितकर है॥ १७०॥

अथ पित्तरोग-चिकित्सा।

अथ चन्द्रावलेहः—

पलायाश्च तुला ग्राह्या जलद्रोणे विपाचयेत्।
अष्टभागाऽवशिष्टं तु शर्करार्धतुलां क्षिपेत्॥ १७१॥
शतावर्या विदार्याश्च गोक्षीरं चाढकं पृथक्।
लेहवत्साधिते तस्मिन्द्राक्षामधुकपिप्पलीः॥ १७२॥
त्रिजातकं च खर्जूरं चन्दनद्वयसारिवा।
मुस्तापद्मकह्रीबेरधात्री चोत्पलचोरकम्॥ १७३॥
एतेषां पलमादाय क्षिपेत्क्षीर्याश्चतुष्पलम्।

क्षौद्रप्रस्थेन संयुक्तं लेहयेत्प्रातरुत्थितः ॥ १७४ ॥
पित्तोन्मादविकारेषु शिरोभ्रमणमूर्च्छते ।
हस्तपादाङ्गदाहे च पित्तरक्तोत्तरावृतौ ॥
छर्दिकासक्षये पाण्डौ चन्द्रवच्चन्द्रभाषितम् ॥ १७५ ॥

एक तुला (१०० पल ४०० तो०) भर इलायची को लोहे की ओखली (इमामदस्ता) में डाल कर मोटी २ कूट के १ द्रोण (२५६ पल) भर जल में क्वाथ करके अष्टमांश जल शेष रहने पर उतार लेवें। इस क्वाथ को शुद्ध वस्त्र से छान कर कलईदार बड़ी कड़ाही में डाल कर फिर उसमें आधी तुला (५० पल) भर चीनी, शतावर का स्वरस १ आढक (६४ प०), विदारी कन्द का स्वरस १ आढक तथा गाय का दुग्ध १ आढक भर डाल कर दो तार की चाशनी बनने तक पाक करना चाहिए। फिर उस कड़ाही को नीचे उतार कर उस चाशनी में पानी से धोई हुई दाख (किसमिस) ४ तोले, मुलेठी का चूर्ण ४ तोले, पिप्पली का चूर्ण ४ तोले, त्रिजातक अर्थात् दाल चीनी का चूर्ण ४ तोले, इलायची का चूर्ण ४ तोले तेजपत्र का चूर्ण ४ तोले और खर्जूर (छुहारे) का चूर्ण ४ तोले, लालचन्दन का चूर्ण ४ तोले, पीत या श्वेत चन्दन का चूर्ण ४ तोले, सारिवा का चूर्ण ४ तोले (कुछ लोग दोनों चन्दन न लेकर श्वेत और कृष्ण शारिवा लेते हैं), शुद्ध मोथे का चूर्ण ४ तोले, पद्माख का चूर्ण ४ तोले, ह्रीवेर (सुगन्ध बाला) का चूर्ण ४ तोले, आंवले का चूर्ण ४ तोले, नील कमल के पत्तों का चूर्ण ४ तोले, चोरक अर्थात् चोर पुष्पी या स्पृक्का का चूर्ण ४ तोले, तुगाक्षीरी ९ (वंश-लोचन) का चूर्ण ४ पल (१६ तो०) तथा १ प्रस्थ भर मधु मिला कर सब को अच्छी तरह मिला के मृत बाण अथवा काच के बर्तन में भर देवें। इस अव-लेह को प्रातः काल सेवन करना चाहिए। यह अवलेह पैत्तिक रोग तथा पैत्तिक उन्माद, शिरो भ्रमण, मूर्च्छा, हस्तपादाङ्ग दाह, पित्तरक्तावृत रोग, वमन, कास, क्षय और पाण्डु रोग में श्रेष्ठ है ऐसा चन्द्र नामक विद्वान् ने कहा है ॥ १७१–१७५ ॥

अथामृतप्राशचूर्णम्—

ऐलेयकं समूलं हि मुद्गपर्णी तथैव च ।
शतावरी विदारी च वाराहीकन्दमेव च ॥ १७६ ॥

मधुकं च मधूकं च तुगाक्षीरी च गोस्तनी ।
एतानि द्विपलांशानि चूर्णीकृत्य पृथक् पृथक् ॥ १७७ ॥
सरलं चन्दनं चोचमुत्पलं कुमुदं जलम् ।
काकोली क्षीरकाकोल्यौ द्वे मेदे जीवकर्षभौ ॥ १७८ ॥
एतेषां चार्धपलिकं प्रत्येकं शर्करायुतम् ।
ऐलेयवं बिदारी च वाराही मुद्गपर्णिका ॥ १७६ ॥
एतेषां स्वरसैः शुद्धः शतावर्याश्च भावितम् ।
एतत्सर्वं समाहृत्य छायाशुष्कं तु सप्तधा ॥ १८० ॥
इक्ष्वामलकयोः क्षौद्रैर्भावितं सप्तधा पुनः ।
पयसा तु पिबेत्प्रातर्यथाग्निबलवान्नरः ॥ १८१ ॥
अङ्गदाहं शिरोदाहं रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
शिरोऽक्षिकम्पभ्रमणमित्यादिकगदाञ्जयेत् ॥ १८२ ॥

एलवालुक (घृतकुमारी का सत्त्व) दो पल तथा घृतकुमारी की जड़ का चूर्ण दो पल, मूंगपर्णी के पञ्चाङ्ग का चूर्ण २ पल, शतखर का चूर्ण २ पल, बिदारी कन्द का चूर्ण २ पल, वाराही कन्द का चूण २ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल, महुए के पुष्पों क' चूर्ण २ पल, वंशलोचन का चूर्ण २ पल, द्राक्षा २ पल, सरल (पदुमकाठ) का चूर्ण आधा पल, लाल चन्दन का चूर्ण आधा पल, दालचीनी का चूर्ण आधा पल, नील कमल के पत्रों का चूर्ण आधा पल, कुमुद (श्वेत कमल पत्र) का चूर्ण आधा पल, नेत्रवाला का चूर्ण आधा पल, काकोली का चूर्ण आधा पल, क्षीरकाकोली का चूर्ण आधा पल, मेदा का चूर्ण आधा पल, महामेदा का चूर्ण आधापल, जीव का काचूर्ण आधापल, ऋषभक का चूर्ण आधापल, तथा शर्करा आधा पल लेकर सब को पत्थर की बड़ी खरल में डाल कर अच्छी तरह से घोट कर घृतकुमारी के सार का घोल, बिदारी कन्द का स्वरस, वाराही कन्द का स्वरस, मुद्गपर्णी का स्वरस तथा शतावर का स्वरस इन स्वरसों से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार अथवा एक २ वार ही भावित करके घोटकर छाया में सुखा लेवें । फिर उस चूर्ण को इक्षु (ऊख) के रस तथा आंवलों के स्वरस से सात २ वार भावित करके घोटकर छायाशुष्क करके शहद् के साथ घोटना चाहिए । पश्चात् इसे काच के पात्र या अमृतवाण में भर कर रख देवें । इस प्रकार से बनी हुई इस औषध में से

अग्निबलादिक का विचार करके ३ माशे से १ तोले भर तक लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल दुग्ध के साथ सेवन करने से अङ्ग की जलन, शिर की जलन, भयङ्कर रक्तपित्त, शिर का और आंख का भ्रमण या कम्पन आदि अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १७६–१८२ ॥

अथ ऐलेयकतैलम्—

ऐलेयकस्य स्वरसमाढकं तु भिषग्वरः ।
कुमार्याः स्वरसं शुद्धं चतुष्प्रस्थं तु कारयेत् ॥ १८३ ॥
आमलक्याः शतावर्या रसं प्रस्थद्वयं पृथक् ।
तैलाढकसमायुक्तं क्षीरद्रोणविमिश्रितम् ॥ १८४ ॥
चोचं मलयजं वारि सरलं कुमुदोत्पलम् ।
द्वे मेदे मधुकं द्राक्षा तुगाक्षीरी मधूलिका ॥ १८५ ॥
काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षकावुभौ ।
मृगनाभ्यजगन्धा च शशाङ्कश्च पृथक् पृथक् ॥ १८६ ॥
एतेषां चार्धपलकं श्लक्ष्णं चूर्णं विनिक्षिपेत् ।
एतत्सर्वं समालोड्य मन्दं मन्दाग्निना पचेत् ॥ १८७ ॥
समुहूर्ते सुनक्षत्रे नववस्त्रेण पीडयेत् ।
शिरोनेत्रविकारेषु नस्यं स्यात्कर्णयोजितम् ॥ १८८ ॥
अभ्यङ्गोद्वर्तनालेपैः शिरोभ्रमणकम्पनुत् ।
अङ्गदाहं शिरोदाहं नेत्रदाहं च दारुणम् ॥ १८९ ॥
विसर्पकविकारांश्च मूर्ध्नि जातान्बहून् व्रणान् ।
आस्यशोषं भ्रमं चैवं नाशयेन्नात्र संशयः ॥
ऐलेयकमिदं तैलं प्रशस्तं पित्तरोगिणाम् ॥ १९० ॥

एलेयक (एलवालुक) का स्वरस १ आढक (चार प्रस्थ अर्थात् ६४ पल), घृत कुमारी का स्वरस चार प्रस्थ (६४ पल), आंवलों का स्वरस दो प्रस्थ (३२ पल), शतावर का स्वरस २ प्रस्थ, तिलतैल १ आढक (६५ पल) तथा दुग्ध १ द्रोण (४ आढक अर्थात् २६५ पल), चोक (दालचीनी) का चूर्ण आधा पल, श्वेत चन्दन का चूर्ण आधापल, नेत्रबाला का चूर्ण आधा पल, पदुमकाठ का चूर्ण आधापल, नीलकमल का चूर्ण आधापल, श्वेत कमल का चूर्ण आधापल,

मेदा का चूर्ण आधापल, महामेदा का चूर्ण आधा पल, मुलेठी का चूर्ण आधापल, द्राक्षा आधापल, वंशलोचन का चूर्ण आधापल, मूर्वे की जड़ का चूर्ण आधापल अथवा मञ्जीठ का चूर्ण आधापल, काकोली का चूर्ण आधापल, क्षीर काकोली का चूर्ण आधापल, जीवक का चूर्ण आधापल, ऋषभक का चूर्ण आधापल, मृगनाभि (कस्तूरी) का चूर्ण आधापल, असगन्ध का चूर्ण आधापल तथा कर्पूर आधा पल लेकर प्रथम चोक से कर्पूर तक के द्रव्यों को थोड़े से जल के साथ पत्थर पर पीस के कल्क बना लेना चाहिए। फिर इस कल्क को उपर्युक्त औषधियों के स्वरस तथा तैल में मिलाकर कलईदार लोहे की बड़ी कड़ाही में सब को भर कर अच्छे वार नक्षत्र वाले शुभ मुहूर्त्त में भट्टी पर चढा के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैल सिद्ध हो जाय अर्थात् समग्र जलीयांश के जल जाने पर कड़ाही को भट्टीपर से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर नवीन वस्त्र से तैल को छान कर निकाल लेवें तथा कल्क को भी अच्छी प्रकार दोनों हाथों के बीच में दवा २ कर या नवीन दृढवस्त्र में भर के सम्पीड़न करके उससे तैल निकाल कर शीशियों में भर देवें। इस तैल को शिर तथा नेत्रों के विकारों में नाक द्वारा नस्य लेने (सूंघने) से तथा कर्णादिक रोगों में कान में टपकाने से वहां के विकार दूर हो जाते हैं। यह तैल अभ्यङ्ग (मालिश), उद्वर्तन (उबटन) और आलेपन करने से शिर के चक्कार तथा सर्वाङ्ग के कम्प को नष्ट कर देता है। यह तैल अङ्ग की जलन, शिर की जलन, नेत्रों की जलन, विसर्प रोग तथा उससे उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव, माथे में उत्पन्न हुए फोड़े फुन्सियां तथा मुख का सूखना और भ्रम आदि अनेक विकारों को विनष्ट कर देता है। यह ऐलेयक तैल विशेष करके पित्त के विकार से पीड़ित रोगियों के लिये अत्यन्त हितकर है॥ १८३-१९०॥

अथ ऐलेयसर्पिः—

ऐलेयकस्य स्वरसे घृतं क्षीरं समं पचेत्।
चन्दनं मधुकं द्राक्षा मधूकं च तुगा सिता॥ १९१॥
ऐलेयकमिदं सर्पिः सर्वपित्तविकारजित्।
वातपित्तविकारघ्नं शिरोभ्रमणकम्पनुत्॥ १९२॥

ऐलेयक का स्वरस स्नेह से चतुर्गुण अर्थात् ४ प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ, दुग्ध १ प्रस्थ तथा लालचन्दन का चूर्ण, मुलेठी का चूर्ण, दाख, महुए के पुष्प, वंशलो-

चन और चीनी इनके सम भाग का कल्क स्नेह से चतुर्थांश लेकर सबको एकत्र करके कलईदार कड़ाही में भर कर भट्टी या चूल्हे पर मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब समग्र जलीयांश नष्ट हो जाय तब घृत को सिद्ध समझ कर उतार के छान लेवें तथा कल्क से भी वस्त्रसम्पीडनादिक उपायों से घृत निकाल कर घृतको काच के पात्र में या मृतवाण में भर कर बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार से सिद्ध हुए घृत को ऐलेयकसर्पि कहते हैं। यह घृत प्रति दिन भोजन के साथ अथवा उष्ण दुग्ध में डाल कर सेवन करने से सर्व प्रकार के पित्त के विकार, वात और पित्त के विकार तथा शिर का भ्रमण और कम्प आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १९१–१९२ ॥

अथ ऐलेयकप्रयोगः—

ऐलेयकस्य स्वरसे सक्षीरां शर्करां पिबेत्।
क्वाथं वा शर्करायुक्तं शिरोभ्रमणकम्पनुत् ॥ १९३ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
शीतवातस्पर्शवातरक्तवातामवातापस्मारोन्मादैकाङ्गवात-
सन्धिवातभग्नकम्पवातरक्त–शिरोभ्रमणचिकित्सा-
नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

ऐलेयक के स्वरस में दुग्ध और चीनी मिला कर प्रतिदिन पान करने से शिरो भ्रमण तथा अन्य पैत्तिकविकार नष्ट हो जाते हैं अथवा ऐलेयक के क्वाथ में चीनी मिला कर प्रतिदिन पान करने से शिर का भ्रमण तथा कम्प रोग नष्ट हो जाते हैं। ऐलेयक शब्द से यहां पर एक प्रकार का गन्धतृण है उसी का ग्रहण करें अथवा इलायची का भी अभाव में ग्रहण करना श्रेयस्कर है ॥ १९३ ॥

अथ वातरक्ते पथ्यापथ्यव्यवस्था—

उत्तानेऽभ्यञ्जनं सेकः सोपनाहः प्रलेपनम्। गम्भीरे स्नेहपानञ्च स्थापनञ्च विरेचनम् ॥१॥
द्वयोरस्रस्रुतिः सूचीजलौका श्रृङ्गयलाबुभिः। शतधौतघृताभ्यङ्गो मेषीदुग्धावसेचनम् ॥२॥
पक्वषष्टिकनीवारकलमारुणशालयः। गोधूमाश्चणका मुद्गा स्तुवर्योऽपि मकुष्टकाः ॥३॥
अजानां महिषीणाञ्च गवामपि पयांसि च। लावतित्तिरसर्पद्विट्ताम्रचूडादिविष्किराः ॥४॥
प्रतुदाः शुक्रदात्यूहकपोतचटकादयः। उपोदिकाः काकमाची वेत्राग्रं सुनिषिण्णिकम् ॥५॥

वास्तुकं कारवेल्लञ्च तण्डुलीयः प्रसारणी। पत्तूरो वृद्धकूष्माण्डं सर्पिः शम्पाकपल्लवम् ॥६॥
पटोलं रुबुतैलञ्च मृद्वीका श्वेतशर्करा। नवनीतं सोमवल्ली कस्तूरीसितचन्दनम् ॥७॥
शिंशपागुरुदेवाहसरलस्नेहमर्दनम्। तिक्तञ्च पथ्यमुद्दिष्टं वातरक्तगदे नृणाम् ॥८॥
इति पथ्यानि

अपाशथ्यानि—

माषाःकुलत्था निष्पावा कलायाः क्षीरसेवनम्। अम्बुजानूपमांसानि विरुद्धानि दधीनि च॥१॥

इक्षवो मूलकं मद्यं पिण्याकोऽम्लानि काञ्जिकम्।
दिवास्वप्नादिसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ २ ॥ इत्यपथ्यानि।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्न-समुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषाटीकायां शीतवातस्पर्शवातरक्त-वातामवातापस्मारोन्मादैकाङ्गवातसन्धिवातभग्नकम्पवातरक्त-शिरोभ्रमणचिकित्सानामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः।

अथ वन्ध्याचिकित्सा—

तत्रादौ वन्ध्यादोषभेदादिकथनम्—

भेदा वन्ध्याऽबलानां हि नवधा परिकीर्तिताः।
तत्राऽऽदिवन्ध्या प्रथमा पापकर्मविनिर्मिता ॥ १ ॥
रक्तेन च पृथग्दोषैः समस्तैः पञ्चधा भवेत्।
भूतदेवाभिचारैश्च तिस्रो वन्ध्याः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
पुमानपि भवेद्वन्ध्यो दोषैरेतैश्च शुक्रतः ॥ ३ ॥
गर्भस्रावी स्मृता पूर्वं मृतवत्सा द्वितीयका।
तृतीया स्त्रीप्रसूतिः स्यात्काकवन्ध्या सकृत्प्रसूः ॥ ४ ॥

शास्त्रों में वन्ध्या स्त्रियों के नौ भेद कहे गये हैं। उन नौ भेदों में से प्रथम को आदि वन्ध्या कहा गया है। आदिवन्ध्या होने का कारण अपने पूर्व जन्म तथा वर्तमान जन्म के पाप कर्म ही हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी रक्त वन्ध्या होती है। रक्तवन्ध्या होने के कारण अनेक हैं। यथा—दूषित पदार्थों के सेवन करने से

दूषित रक्त ही उत्पन्न होता है और यह दूषित रक्त गर्भाशय आदि स्त्री जननेन्द्रियों में पहूंच कर उनको भी दूषित कर देता है । जिसके कारण मासिकधर्म अर्थात् आर्त्तव ठीक समय पर नहीं होता है, उसमें बदबू आने लगती है तथा वह अधिक कृष्णवर्ण का हो जाता है इस तरह से स्त्री के बीजरक्त में भी दुष्टि पहूंच जाती है और वह वन्ध्या हो जाती है । तीसरी वातवन्ध्या होती है । दूषित वायु से बीजरक्त दूषित हो जाता है तथा उसका गर्भाशय और डिम्ब प्रणाली आदि अङ्ग शुष्क, रूक्ष तथा संकुचित हो जाते हैं । चौथी पित्तवन्ध्या होती है । इसमें पित्त की मात्रा अधिक बढ़ जाने से गर्भाशय के अन्दर पित्त प्रकोप होता है जिससे शुक्र तथा रज (डिम्ब) का संयोग नहीं हो सकता है और पित्ताधिक्य से गर्भाशय में अधिक उष्णता रहने से बीजरक्त (डिम्ब) की मृत्यु या वह गर्भ धारण के अयोग्य हो जाता है। पांचवीं कफ वन्ध्या होती है, इस में वायु और पित्त की अपेक्षा कफ अधिक बढा हुआ रहता है जिस से गर्भाशय में खुलने वाले डिम्बप्रणाली के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं अत एव वह भी गर्भ धारण नहीं कर सकती । प्रायः देखा जाता है कि जो स्त्रियां प्रतिदिन स्निग्ध भोजन किया करती हैं तथा अपने शरीर से कुछ भी श्रम नहीं कर के बैठी रहती हैं उन्हीं स्त्रियों में मेद का भाग अधिक बढ़ जाता है तथा वे मोटी (स्थूलकाय) हो जाती हैं। ऐसी स्त्रियां सम्भोग शक्ति से भी हीन होती हैं तथा उन के प्रत्येक अङ्गों में विशेष कर उत्पादक अङ्गों में चर्बी का भाग अधिक जम जाता है जिस कारण वे सर्वदा के लिये वन्ध्या हो जाती हैं । छठीं त्रिदोष वन्ध्या होती हैं । इन में तीनों (वात, पित्त, कफ,) दोष प्रकुपित रहते हैं जिस से उन के उत्पातक अङ्ग कर्म हीन हो जाते हैं । इन छ प्रकार की वन्ध्याओं के अतिरिक्त भूत अर्थात् देव, ग्रह, यक्ष, भूत, प्रेत आदि के आवेश के कारण तथा देवबल से या गुरुजन आदि पूज्य पुरुषों की पूजा के व्यतिक्रम से तथा अपचार (मिथ्याहार विहारादिक) से तीन प्रकार की वन्ध्याएं और होती हैं । इस तरह नौ प्रकार की वन्ध्याएं होती हैं । पुरुष भी इन्हीं दोषों के कारण तथा शुक्रदुष्टि से वन्ध्य अर्थात् गर्भ धारण कराने में असमर्थ होता है । उपर्युक्त नौ प्रकार की वन्ध्या स्त्रियों में प्रथम प्रकार की वन्ध्या स्त्री गर्भ स्रावी होती है अर्थात् उस का गर्भ चार महीने के अन्दर ही गिर जाता है या द्रुत हो-

कर उस का स्राव हो जाता है। दूसरी प्रकार की मृत्वत्सा होती है, इस प्रकार की स्त्री के कभी भी जीवित सन्तान उत्पन्न नहीं होती है। प्रायः उस का गर्भ गर्भाशय ही में मृत हो जाता है। तीसरी प्रकार की स्त्रीप्रसूति होती है अर्थात् यह केवल पुत्रियों को ही उत्पन्न करती है। चौथे प्रकार की स्त्री काक वन्ध्या कही जाती है। यह स्त्री एक वार ही गर्भ धारण करती है, बाद में उस के कोई सन्तान पैदा नहीं होती है ॥ १-४ ॥

अथ जयसुन्दररसः—

सुवर्णं रजतं ताम्रं ताप्यसत्त्वं च वैकृतम् ।
एकैकं निष्कमानेन संशुद्धं परिमारितम् ॥ ५ ॥
एतच्चतुर्गुणं सूतं सूताद्द्विगुणगन्धकम् ।
मर्दयेल्लक्ष्मणातोयैर्बन्धुजीवरसैरपि ॥ ६ ॥
काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा ताम्रपात्रं मुखे न्यसेत् ।
विलिम्पेदभितः कूपीमङ्गुलोत्सेधया मृदा ॥ ७ ॥
विशोष्य च पुटं दद्याद्भूमौ निक्षिप्य कूपिकाम् ।
गजाख्यपुटपर्याप्तिः शाणकर्षमितोत्पलैः ॥ ८ ॥
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ भावयेल्लक्ष्मणा(१)द्रवैः ।
सप्तवारं विशोष्याऽथ करण्डान्तर्विनिक्षिपेत् ॥ ९ ॥
अश्वगन्धारजोयुक्तस्ताम्रगोक्षीरसंयुतः ।
सेवितो गुञ्जया तुल्यः सितया च रसोत्तमः ॥ १० ॥
मासत्रयप्रयोगेण वन्ध्या भवति पुत्रिणी ।
पुत्रिण्यै स्नानशुद्धायै जरत्कौशिकचक्षुषी ॥ ११ ॥
गव्याज्येन च संसाध्य तत्तदानीं हि भोजयेत् ।
ऋतावृताविदं देयं यावन्मासत्रयं भवेत् ॥ १२ ॥
रसेन्द्रः कथितः सोऽयं चम्पकारण्यवासिभिः ।

---

(१) लक्ष्मणाद्रवैः—लक्ष्मणामूलस्वरसैः, लक्ष्मणा च—"पुत्रकाकाररक्ताल्पबिन्दुभिर्लाञ्छिता सदा । लक्ष्मणा पुत्रजननी बस्तगन्धाकृतिर्भवेत्" इत्युक्तलक्ष्मणा स्वनामख्यातेति भावः ।

पूर्णामृताख्ययोगीन्द्रैर्नामतो जयसुन्दरः ॥ ३ ॥
सेवितेऽस्मिन् रसे स्त्रीणां न भवेत्सूतिकागदः।
भवेत्पुत्रश्च दीर्घायुः पण्डितो भाग्यमण्डितः ॥ १४ ॥

अच्छी प्रकार से शुद्ध करके बनाई हुई स्वर्ण की भस्म १ निष्क (४ माशे), चांदी की भस्म १ निष्क, ताम्र की भस्म १ निष्क, स्वर्णमाक्षिक भस्म का सत्त्व १ निष्क, वैकृत अर्थात् वैक्रान्त मणि की भस्म १ निष्क इन सब की अपेक्षा चतुर्गुण (२० निष्क) शुद्ध पारद तथा पारद की अपेक्षा द्विगुण (४० निष्क) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें शेष भस्मों को मिलाकर अच्छी प्रकार घोट के लक्ष्मणा अथवा सफेद कण्टकारी के क्वाथ या स्वरस के साथ सात बार घोटकर बन्धुजीव अर्थात् बन्धूक पुष्पों (गूल दोपहरिया के फूलों) के स्वरस के साथ सातवार खरल करें। पश्चात् उस चूर्ण को अच्छी तरह शुष्क करके काचकूपी (आतसी शीशी) में भरकर उसके मुखको ताम्बे के पात्र (कटोरी) से ढक देवें। पश्चात् उस कूपी के चारों ओर के भागको चिकनी मिट्टी से एक२ अङ्गुल मोटा लीपकर सुखा के गजपुट में रखकर पुट दे देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल होने पर कूपिका के भीतर से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके लक्ष्मणा के स्वरस या क्वाथ से सात वार भावित करके अच्छी प्रकार घोट के सुखाकर शीशी में भर देवें। इस रस को १ रत्ती भर लेकर असगन्ध के ३ माशे भर चूर्ण के साथ मिलाकर ताम्र (लाल) वर्ण की गाय के दुग्ध के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह तीन मास तक सेवन करते रहने से बांझ स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है। इस रस के सेवन करने के अतिरिक्त जब पुत्रेच्छा वाली स्त्री मासिक धर्म के स्नान से शुद्ध हो जाय तब उसको वृद्ध उल्लू की दोनों आखों को निकाल कर गाय के घृत के अन्दर पकाकर खिलावें। प्रत्येक ऋतुकाल में औषध सेवन के अतिरिक्त यह उपचार भी जबतक तीन मास पूर्ण न हो करते रहना चाहिए। चम्पकारण्य में रहने वाले श्रीपूर्णामृत नामक योगिराज ने इस सर्व रसों में श्रेष्ठ जयसुन्दर रस को बताया है। इस रस के सेवन करने से स्त्रियों को सूतिकारोग कभी नहीं होता है तथा इस रस के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री के भी अच्छा भाग्य शाली तथा दीर्घायु और बुद्धिमान् पुत्र पैदा होता है ॥ ५-१४ ॥

अथ रत्नभागोत्तररसः—

वज्रं मरकतं पद्मरागं पुष्पं च नीलकम्।
वैडूर्यं चाथ गोमेदं मौक्तिकं विद्रुमं तथा ॥ १५ ॥
पञ्चगुञ्जामितं सर्वं रत्नं भागोत्तरं परम्।
तत्तन्त्रोक्तविधानेन भस्मीकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ १६ ॥
सर्वस्मादष्टगुणितं भस्म वैक्रान्तसम्भवम्।
तत्तुल्यं ताप्यजं भस्म तद्वद्विमलभस्म च ॥ १७ ॥
सर्वतस्त्रिगुणां तुल्यां रसगन्धककज्जलीम्।
सर्वमेकत्र सम्मर्द्य छागीदुग्धेन तद्‌द्व्यहम् ॥ १८ ॥
विधाय पर्पटीं यत्नात्परिचूर्ण्य प्रयत्नतः।
वन्ध्याकर्कोटकीपर्णक्वाथेन परिमर्दयेत् ॥ १९ ॥
काननात्पलविंशत्या पुटेत्षोडशवारकम्।
एवं रसो विनिष्पन्नो रत्नभागोत्तराभिधः ॥ २० ॥
महावन्ध्यादिवन्ध्यानां सर्वासां सन्ततिप्रदः।
देवीशास्त्रे विनिर्दिष्टः पुंसां वन्ध्यत्वरोगनुत् ॥ २१ ॥
सोऽयं पाचनदीपनोरुचिकरो वृष्यस्तथा गर्भिणी-
सर्वव्याधिविनाशनो रतिकरः पाण्डुप्रचण्डार्तिनुत्।
धन्यो बुद्धिकरश्च पुत्रजननः सौभाग्यकृद्योषितां
निर्दोषः स्मरमन्दिरामयहरो योगादशेषार्तिनुत् ॥ २२ ॥

हीरा ५ रत्ती, मरकतमणि (पन्ना) ६ रत्ती, पद्मरागमणि ७ रत्ती, पुखराज ८ रत्ती, नीलम ९ रत्ती, वैदूर्यमणि १० रत्ती, गोमेद ११ रत्ती, मुक्ता १२ रत्ती, प्रवाल १३ रत्ती इस प्रकार इन सब रत्नों को क्रमशः उत्तरोत्तर एक २ भाग बढाकर लेवें तथा पश्चात् इन सब का यथाविधि पृथक् २ शोधन तथा मारण करना चाहिए। अथवा इनकी बनी बनाई भस्मों में से उपर्युक्त प्रमाणानुसार ग्रहण करनी चाहिए। तथा उपर्युक्त भस्मों से आठगुनी वैक्रान्तभस्म तथा वैक्रान्तभस्म के बराबर स्वर्णमाक्षिक भस्म तथा उतनी ही विमल (रौप्य) माक्षिक की भस्म तथा वज्र से लेकर विमल तक के द्रव्यों की भस्म से तिगुनी समान भाग में लिये हुए शुद्धपारद और शुद्धगन्धक की कज्जली लेकर सबको एक बड़ी खरल में मिला

कर अच्छी तरह खरल करके बकरी के दुग्ध के साथ दो दिन तक घोट कर सुखा के कलईदार लोहे की कड़ाही में सब चूर्ण को भर कर अग्नि पर चढा कर लोहे की कलच्छी से चलाते रहना चाहिए। जब समग्र चूर्ण अच्छी तरह से पिघल जाय तब उसको गीले गोबर के ऊपर रखे हुए केले के हरे पत्र पर ढाल कर ऊपर से केले के हरे पत्रही को ढक कर गोबर रख के दबा देवें। जब पर्पटी स्वाङ्गशीतल हो जाय तब उसका खरल में महीन चूर्ण करके बांझ ककोड़े के पत्तों के क्वाथ के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर शराव सम्पुट में बन्द करके २० जंगली कण्डों के मध्य में रखकर लघुपुट दे देना चाहिए। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से रस के गोले को निकालकर खरल में चूर्ण करके बांझककोड़े के पत्तों के क्वाथ के साथ खरल करके गोला बनाकर शरावसम्पुट में बन्द करके पूर्ववत् २० कण्डों के मध्य में सम्पुट को रखकर पुट दे देवें। इस तरह सोलह पुट देने चाहिए। इस तरह यह रत्नभागोत्तर नामक रस तैयार हो जाता है। यह रस महावन्ध्या तथा अन्य प्रकार की सब बांझ स्त्रियों को पुत्र देने वाला है। यह रस पुरुषों के वन्ध्यत्व को भी नष्ट करता है, ऐसा देवी भागवत में लिखा है। यह रत्नभागोत्तर रस खाये हुए गरिष्ठान्न को पचाता है, अग्नि को प्रदीप्त करता है, भोजन की रुचि और वृष्य शक्ति को बढाता है, गर्भिणी स्त्रियों की सर्व प्रकार की बाधाओं को दूर करता है, रति शक्ति को बढाता है, पाण्डुरोग तथा उससे या अन्य रोगों से उत्पन्न हुई भयङ्कर पीड़ाओं को दूर करता है। यह रस अत्यन्त हितकर होने से धन्य है तथा बुद्धि को बढ़ाता है तथा स्त्रियों को पुत्र पैदा कराता है, और उनके सौभाग्य को बढ़ाता है। यह रस सर्व प्रकार के दोषों से रहित है, तथास्त्रियों के स्मरमन्दिर (जनेन्द्रिय) के रोगों को नष्ट करता है। यह रस यथा व्याध्यनुपानों के साथ सेवन करने से शरीर के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है॥ १५–२२ ॥

अथ चक्रिकाबन्धरसः—

गन्धकः पलमात्रश्च पृथगत्तौ शिलाऽऽलकौ ।
त्रिदिनं मर्दयित्वाऽथ विदध्यात्कज्जलीं शुभाम् ॥ २३ ॥
विषाणाकारमूषायां कज्जलीं निक्षिपेत्ततः ।
द्विपलस्य च ताम्रस्य तन्मुखे चक्रिकां न्यसेत् ॥ २४ ॥

सन्निरुध्यातियत्नेन सन्धिबन्धे विशोषिते ।
ततः करिपुटार्धेन पाकं सम्यक् प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥
स्वतः शीतं समुद्धृत्य चक्रिकां परिचूर्णयेत् ।
स्थगयेत् कूपिकामध्ये वस्त्रेण परिगालितम् ॥ २६ ॥
रसोऽयं चक्रिकाबन्धस्तत्तद्रोगहरौषधैः ।
दातव्यः शूलरोगेषु मूले गुल्मे भगन्दरे ॥ २७ ॥
ग्रहण्यामग्निमान्द्ये च विद्रधौ जठरामये ।
नागोदरे तथैवोपविष्टके जलकूर्मके ॥ २८ ॥
स्कन्देनामन्दकृपया त्रिलोकत्राणहेतवे ।
चक्रिकाबन्धनामाऽयं प्रसूतस्त्रीगदापहः ॥ २९ ॥

शुद्धगन्धक १ पल, शुद्धमनःशिला १ अक्ष (१ कर्ष=१६ मा०), शुद्धहरताल १ अक्ष लेकर इन तीनों को पत्थर की खरल में अच्छी तरह से तीन दिन तक घोट कर महीन कज्जली बना लेवें। फिर इस कज्जली को शृङ्ग (सींग) के समान प्रारम्भ (मूल) में चौड़ी तथा ऊपर की ओर क्रमशः सङ्कुचित आकार वाली मूषा में भर कर उस के मुख को दो पल भर शुद्ध ताम्र की टिकिया से ढक कर चिकनी मिट्टी के कीचड़ से सारे शृङ्ग को तथा सन्धि को लीप कर सन्धि बन्धन मजबूत कर के सुखा देवें। फिर उस शृङ्ग को आधे गजपुट की अग्नि में फूंक देवें। इस प्रकार फूंकने के पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट से चक्रिका के सहित सिद्ध औषध को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के वस्त्र से छान कर काच की शीशी में भर देवें। इस को चक्रिकाबन्ध रस कहते हैं। इस रस को यथा व्याधिहर अनुपानों के साथ शूल रोग, अर्श, गुल्म, भगन्दर, ग्रहणी, अग्निमान्द्य, विद्रधि, पेट (उदर) के विकार, नागोदर, उपविष्टक रोग तथा जल कूर्मक रोगों में प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस को स्कन्द नामक आचार्य ने अथवा स्वामी कार्तिकेयजी ने अत्यन्त कृपा कर के तीनों लोकों की रक्षा के निमित्त बताया है। यह चक्रिका बन्ध नामक रस प्रसूता स्त्रियों के समस्त रोगों को नष्ट करता है ॥ २३–२९ ॥

विमर्शः—नागोदर रोग एक दुष्ट गर्भ विशेष रोग है इस का लक्षण सुश्रुत में इस प्रकार मिलता है यथा–शुक्रशोणितं वायुनाऽभिप्रपन्नमवक्रान्तजीवमाध्मापयत्युदरं तत् कदाचिद् यदृच्छयोपशान्तं नैगमेषापहमिति मुनयो भाषन्ते तमेव कदाचित्

प्रलीयमानं नागोदरमित्याहुः। इति। चरक में भी निम्न रूप से वर्णन मिलता है यथा—उपवासकमपरायाः पुनः कदाचिदाहारायाः स्नेहद्वेषिण्या वातप्रकोपणोक्तान्यासेवमानायाः परिशुष्कत्वात् स कालमवतिष्ठतेऽतिमात्रमतिमात्रस्पन्दनश्च भवति तं नागोदरमित्याचक्षते, इति।

उपविष्टक तथा जलकूर्मक ये भी दोनों एक प्रकार के गर्भ विकृति हीके अवान्तर भेद हैं। उपविष्टक का लक्षण चरक में निम्न रूप से मिलता है, यथा—यस्याः पुनरूष्णतीक्ष्णोपयोगाद्गर्भिण्या महति गर्भे जातसारे पुष्पदर्शनं स्यादन्यो वा योनिस्रावस्तस्या गर्भो न वृद्धि प्राप्नोति निःस्रुतत्वात्, सकालमवतिष्ठतेऽतिमात्रं तमुपविष्टकमित्याचक्षते केचित्, इति। जलकूर्मक में गर्भ कूर्म को तरह अपने अङ्गप्रत्यङ्गों को सङ्कुचित कर लेता है जिससे विशेष विकृति आ जाती है॥

अथ वर्धमानरसः—

पलार्धप्रमिते स्वर्णे ताम्रं दत्वाऽक्षमात्रया।
निर्वापयेच्छतं वारं निक्षिप्य शुकपिच्छकम्॥ ३०॥
ततश्च सारणायन्त्रे सूत्रस्थानसमीरिते।
सारणातैलसंयुक्तं जीर्णषड्गुणसंयुतम्॥ ३१॥
रसं हि द्विपलं दत्त्वा सारणाविधियोगतः।
सारयित्वा ततः पश्चात्पिष्टं सूतं प्रयत्नतः॥ ३२॥
सूत्रप्रोक्तेष्टिकायन्त्रे स्वेदावेष्टनवाससाम्।
मातुलुङ्गरसैः पिष्टं चतुर्निष्कमितं दनुम्॥ ३३॥
ऊर्ध्वं च विनिधायाऽथ जारयित्वा चतुर्गुणम्।
तमादाय रसं सम्यग्विचूर्ण्य परिगाल्य च॥ ३४॥
षष्ठांशेन मृतं वज्रं समं वैक्रान्तकं स्मृतम्।
निक्षिप्य लिङ्गिकापत्ररसैरापूर्य वासरम्॥ ३५॥
पुटेद् द्वादशवाराणि मध्वा द्वादशकोपलैः।
बन्धुजीवरसेनाऽथ लक्ष्मणा स्वरसेन च॥ ३६॥
पुनः सञ्चूर्ण्य सम्पूज्य योगिनीपितृदेवताः।
पुत्रिण्याः पूर्णिमायाश्च पूजिताया विधानतः॥ ३७॥
इति कृत्वाऽऽनुयाद्गर्भं षण्मासाऽभ्यन्तरे खलु।
आदिवन्ध्यादिका वन्ध्या याश्चान्या दुष्टयोनयः॥ ३८॥

प्राप्नुयुर्जीवपुत्रं हि भाग्यसौभाग्यसंयुतम् ।
पुंसामपि च वन्ध्यत्वं ह्यल्परेतस्त्वमेवच ॥
बीजदोषा विचित्राश्च विनश्यन्ति न संशयः ॥ ३९ ॥
ब्रह्मज्योतिर्मुनिवरमतो वर्धमानो रसोऽयं
वन्ध्यारोगं हरति सकलं योनिदोषानशेषान् ।
सूतीरोगानपि बहुविधान्दुःखसाध्यान्समस्ता-
न्रोगानन्यानपि रसवरो योगयुक्तो(१)निहन्यात् ॥ ४० ॥

आधे पल (दो कर्ष) भर शुद्ध स्वर्ण को वह्नि के योग से लोह की कलच्छी या कड़ाही में पिघला कर उसमें १ अक्ष (१ कर्ष) भर शुद्ध पिघला हुआ ताम्र मिला कर दोनों को प्रतप्त करें, फिर उनमें दो कर्ष भर गन्धक डालकर अत्यन्त अग्नि देकर गन्धक का जारण हो जाने के पश्चात् उन (ताम्र स्वर्णद्रुति) को तैल, तक्र, आदि में बुझावें । इस तरह स्वर्ण और ताम्र को बार २ प्रतप्त कर के पिघला कर गन्धक का जारण करके तैलतक्रादियों में बुझावें । इस तरह सौ वार करना चाहिए । फिर इस बुझाये हुए स्वर्ण और ताम्र के योग को सूत्रस्थान अर्थात् नवमाध्याय में "सूते सतैलयन्त्रस्थे" इत्यादि प्रकार से वर्णित सारणायन्त्र में रख देवें, फिर उस स्वर्ण ताम्र के योग में सारणायन्त्र के द्वारा निकाले हुए तैल से अच्छी प्रकार मर्दित तथा ६ गुणे गन्धक के योग से जारित किया हुआ दो पल भर शुद्ध पारद मिला कर सारणाविधि के अनुसार सारणकर्म करके ताम्र और स्वर्ण के सहित उस पारद को खरल में अच्छी प्रकार महीन पीस कर यन्त्राध्याय में कहे हुए इष्टिकायन्त्र में रख देवें । फिर उस इष्टिकायन्त्र के मुख के ऊपर अच्छी तरह से एक मजबूत तथा स्वच्छ कपड़ा बांध कर उस कपड़े के ऊपर बिजोर निम्बू के स्वरस में पीसा हुआ चार निष्क भर गन्धक बिच्छाकर उसको एक शराव या सकोरे से ढककर शराव और इष्टिकायन्त्र की सन्धि को

(१) "योगयुक्तो निहन्यात्" इत्यनन्तरं पुस्तकान्तरे—"समजीर्णभ्रसूतेन भस्मैतत् साधयेत् खलु । अन्यथा न यथा प्रोक्तं फलं दत्तं दुरब्रवीत् ॥ पाण्ड्वर्ति-ग्रहणीप्रमेहगुदजातोसारयक्ष्मापहं; सद्यो दीपनपाचनो रुचिकरो निःशेषगुल्मापहः । कासश्वासबलासपीनसमरुत्पित्तार्तिमात्यन्तिकं वृष्यं पुष्टिकरं समस्तगदहृद्योगेन संयोजितम् ॥ इति योगः" । इत्यधिकः पाठः ॥

अच्छी तरह से बन्द कर देवें। फिर उस सम्पुट को कपोतपुट में रख कर पाक प्रारम्भ कर देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध हुए रस को निकाल कर खरल में घोट के चूर्ण बना कर वस्त्र से छान लेवें। फिर इस चूर्ण में समग्र रस की अपेक्षा षष्ठांश हीरे की भस्म तथा रस के बराबर वैक्रान्त की भस्म डालकर सबको एकदिन तक निरन्तर पीसकर शिवलिङ्गी के पत्तों के स्वरस अथवा क्वाथ से रात भर भींगोकर दूसरे दिन १२ घण्टे तक घोटकर टिकिया बना के शराव सम्पुट में रखकर १२ कण्डों की अग्नि में लघुपुट दे देना चाहिए। स्वाङ्गशीतल होनेपर सम्पुट से टिकायाओं को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शिवलिङ्गी के पत्तों के स्वरस या क्वाथ की रातभर भावना देकर दूसरे दिन दिनभर घोट के टिकिया बनाकर सूखने पर शराव सम्पुट में बन्द करके १२ कण्डों की अग्नि में पाक करना चाहिए। इस तरह शिवलिङ्गी के पत्र-स्वरस या क्वाथ के साथ घोट२ कर बारह वार पाक करना चाहिए। पश्चात् इसी तरह शहद् के साथ घोट२ कर वारह पुट देवें तथा बन्धूकपुष्प (गुलदुपहरिया) के स्वरस या क्वाथ से भी बारह वार भावित करके बारह पुट देने चाहिए। इसी तरह लक्ष्मणा के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ से अथवा सफेद कण्टकारी की जड़ के क्वाथ से १२ वार भावित करके १२ पुट देने चाहिएं। इस तरह सर्व पुटों के समाप्त होने पर सिद्ध औषध को अच्छी तरह से खरल में महीन घोटकर कपड़े से छान के काच की शीशी में भरकर सुरक्षित रख देवें। फिर इस रस के सेवन करने के पूर्व पुत्राभिलाषिणी स्त्री अथवा उसके सम्बन्धी जन योगिनी, पितृगण, देवता, पुत्रवती स्त्री तथा पतिव्रता स्त्री इन सब की यथाविधि पूजन करें। इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् इस रसका सेवन प्रारम्भ करना चाहिए तथा ६मास तक निरन्तर दिन में दो वार (प्रातःसायम्) सेवन करते रहें। इस क्रम से इस रसके सेवन करने से आदिवन्ध्या, वन्ध्या तथा अन्य दूषित योनिवाली स्त्रियें भी गर्भ धारण करके अपने भाग्य और सौभाग्य से युक्त होकर चिरकाल तक जीवित रहने वाले पुत्रको पैदा करती हैं। इस रस के सेवन करने से पुरुषों का वन्ध्यत्व, अल्पशुक्रता, बीजदोष तथा अन्य प्रकार के शुक्र सम्बन्धी अन्य सब उपद्रव दूर हो जाते हैं, इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं है। ब्रह्मज्योतिर्नामक मुनिवर के सम्मत अर्थात् उनका अनुभूत यह वर्द्धमान नामक रस यथाविधि प्रतिदिन सेवन

करने से स्त्रियों के सब प्रकार के वन्ध्यारोगों को तथा समग्र योनिदोष और सूतिकारोगों को नष्ट करता है तथा यथाऽन्याऽध्यनुपानों के अनुसार सेवन करने से अन्य प्रकार के समस्त दुःसाध्य रोगों को भी नष्ट कर देता है। यह रस अन्य योगों के साथ सेवन करने से सकल रोगों को विनष्ट करता है ॥ ३०-४० ॥

अथ द्रुतिसाररसः—

शुक्तं हि व्योमजद्रुत्यां तुल्यांशं स्वर्णयुग्रसम् ।
पिष्टीकृतं चिरं पिष्ट्वा मल्लसम्पुटके क्षिपेत् ॥ ४१ ॥
निष्कमात्रं बलिं दत्त्वा शतवारं पुटेत्ततः ।
सम्यङ्निष्पिष्य सङ्क्षाल्य करण्डान्तर्विनिक्षिपेत् ॥४२॥
इत्युक्तो द्रुतिसारनामकरसो वन्ध्यामयध्वंसनः
पुत्रीयः खलु सूतिकामयहरो वृष्यश्चिरायुष्करः ।
सम्यक्सिद्धबलिद्रुतिप्रकलितो गुञ्जामितः सेवितः
कुर्यात्तीव्रतरां क्षुधं त्वथ महारोगादि रोगाञ्जयेत् ॥ ४३ ॥
मतः सर्वामयध्वंसी रसोऽयं हरिसूचितः ।
जीवत्पुत्रप्रदः स्त्रिणां यौवनस्थैर्यदायकः ॥ ४४ ॥
भूतप्रेतपिशाचानां भयेभ्योऽभयदायकः ।
जडानां दाहदार्तानां मन्दबुद्धिमतामपि ॥ ४५ ॥
मण्डूकीरससंयुक्तो दातव्यो वचया सह ।
जन्मवन्ध्याः काकवन्ध्या मृतवत्साश्च याः स्त्रियः ।
तासां पुत्रोदयार्थाय शम्भुना सूचितः पुरा ॥ ४६ ॥

एक पल भर शुद्ध स्वर्णपत्र तथा १ पल भर शुद्ध पारद इन दोनों को पत्थर की खरल में एकदिन तक एक साथ घोटें। जब समग्र पारद स्वर्ण के साथ मिल जाय (पत्रोंपर चढ़जाय) तब उस दोनों को एक पलभर शुद्ध अभ्रक को कटाह में पिघलाकर उसमें मिला के अच्छी प्रकार घोटकर पिष्टी बना लेवें। फिर उस पिष्टी को एक शराव (सकोरे) में रखकर उसके ऊपर तथा नीचे १ कर्ष भर शुद्ध गन्धक डालकर या रखकर दूसरे शराव से ढक के दोनों की सन्धि को गीली कपड़मिट्टी से लिप्त करके बन्द करके सुखा देवें। इस प्रकार सूख जानेपर सम्पुट को कुक्कुटपुट या लघुपुट में रखकर अग्नि प्रदीप्त करके पुट दे देना चाहिए।

पश्चात् स्वाङ्गशीतलसम्पुट से पिष्टी को निकालकर पूर्ववत् दूसरे सकोरे में रख के ऊपर नीचे गन्धक रखकर शरावान्तर से ढक के सन्धिबन्धन कर के पुट दे देवें। इस तरह प्रत्येक वार एक २ कर्ष शुद्ध गन्धक दे २ कर सौ (१००) पुट देने चाहिए। प्रतिपुट में गन्धक को ऐसे ही पिष्टी के चारों ओर रख देवें अथवा पिष्टी तथा गन्धक को खरल में महीन घोटकर फिर सम्पुट में बन्द करके सौ पुट देने चाहिएं। पश्चात् सिद्धरस को खरल में अच्छी तरह पीसकर कपड़े से छान के शीशी में भर देवें। इसको द्रुतिसार रस कहते हैं। यह रस वन्ध्या स्त्रियों के सर्व प्रकार के रोगों को विनष्ट करता है, पुत्र प्रदान करता है, सूतिका रोगो को भी दूर करता है, वृष्य शक्ति को बढाता है तथा आयुको बढाता है। एक रत्ती भर इस रस को विधि पूर्वक बनाई हुई गन्धक की द्रुति के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से बुभूक्षा को प्रदीप्त करता है तथा साथ में अनेक प्रकार के अर्श भगन्दरादिक महारोगों को भी नष्ट करता है। हरिनाम के आचार्य के द्वारा बताया हुआ यह रस यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों का विध्वंस कर देता है। इस रस के सेवन करने से स्त्रियों का यौवन स्थिर रहता है तथा उनके चिरञ्जीवी पुत्र पैदा होता है। यह रस भूत प्रेत और पिशाच आदि के द्वारा उत्पन्न हुए भय से प्राणियों को निर्मुक्त कर देता है। यह रस जड़ अर्थात् अपस्मार और उन्माद आदि से निश्चेष्ट पुरुष तथा मन्द बुद्धिवाले और दौहद से पीड़ित स्त्रियों के लिये भी अत्यन्त हितकर है। मन्द बुद्धि वाले पुरुषों को ब्राह्मी अथवा मण्डूकपर्णी के स्वरस, क्वाथ या चूर्ण तथा वचा के स्वरस, क्वाथ या चूर्ण और शहद् के साथ इसे सेवन कराना चाहिए। जो स्त्रिएं जन्मवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा हैं उनके पुत्र उत्पन्न होने के लिये श्रीब्रह्माजी ने पूर्वकाल में इस रस को बताया था॥ ४१-४६॥

विमर्शः—अभ्रक की द्रुति के प्रकार का वर्णन रसेन्द्रचिन्तामणि नामक ग्रन्थ में निम्न रूप से मिलता है।

यथा—अगस्त्यपत्रनिर्यासैर्मर्दितं शूरणोदरे। गोष्ठभूस्थं घनं मासं जायते जलसन्निभम्। इति। अन्यत्रापि—स्वरसेन वज्रवल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम्। पक्वञ्च शरावपुटे बहुवारं भवति रसरूपकम्। निजरसबहुपरिभावितसुरदालीचूर्णवापेन। द्रवति पुनः संस्थानं भजते कनकत्वं कालेऽपि॥ इति।

अथ सामान्योपायाः—

तत्र सर्पाक्षीप्रयोगः—

समूलपत्रां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत् ।
एकवर्णगवां क्षीरैः कन्याहस्तेन पेषयेत् ॥ ४७ ॥
ऋतुकाले पिबेद्वन्ध्या पलार्धं तद्दिने दिने ।
क्षीरशाल्यन्नमुद्गं च ह्यल्पाहारं प्रकल्पयेत् ॥ ४८ ॥
उद्वेगं त्वथ शोकं च दिवा निद्रां च वर्जयेत् ।
न कर्म कारयेत्किञ्चिद्वर्जयेच्छीतमातपम् ॥
एवं सप्तदिनं कुर्याद्वन्ध्या भवति गर्भिणी ॥ ४९ ॥

सर्पाक्षी अर्थात् पान शिउली या रास्नाविशेष औषध को रविवार के दिन प्रातः काल जड़ और पत्तों के सहित उखाड़ कर अपने घर ले आवें। फिर उस में से आधे पल भर लेकर शुद्ध पत्थर पर एकवर्ण वाली गाय के कच्चे दुग्ध के साथ कन्या (कुंआरी लड़की) के हस्त से महीन पिसवा कर थोड़ी सी मिश्री या शर्करा मिला कर दुग्ध में घोल कर वन्ध्या स्त्री को मासिक धर्म के स्नान के पश्चात् ४ से ७ दिन तक पिलानी चाहिए तथा बुभूक्षा लगने पर दुग्ध, सांठी के चांवल और मूंग की दाल पथ्य में थोड़ी २ कर के खिलानी चाहिए। साथ में ज्यादा घबड़ाहट, शोक, दिवा शयन, अधिक शीतलपवन, शीतल पदार्थों का सेवन, तेज धूप का सेवन तथा परिश्रम का कार्य आदि त्याग देना आवश्यक है। इस तरह नियम पूर्वक सर्पाक्षी को सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भिणी हो जाती है। प्रायः इस प्रयोग को तीन या चार वार मासिक धर्म के समय सेवन करते रहने से यथेष्ट फल प्राप्त होता है तथा मासिक धर्म के समय का रज शुद्ध हो जाता है तथा रजः कृच्छ्र आदि उपद्रव भी समूल नष्ट हो जाते हैं ॥४७-४९॥

अथ देवदालीप्रयोगः—

देवदालीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ।
निष्कत्रयं गवां क्षीरैः पूर्ववत्क्रमयोगतः ।
वन्ध्या प्रलभते गर्भं देयं पथ्यं यथा पुरा ॥ ५० ॥

देवदाली (बन्दाल) की ३ निष्क (१२ मा०) भर जड़ को दीतवार

और पुष्य नक्षत्र का योग होने पर प्रातःकाल उखड़ा कर मंगवा लेनी चाहिए। जब वन्ध्या स्त्री रजस्वला होने के पश्चात् चौथे दिन प्रातःकाल स्नान कर के निवृत्त हो जाय तब उस को कन्या के हस्त से एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में देवदाली को जड़ को पिसवाकर दुग्ध में घोल के मिश्री या चीनी डलवा कर पिला देवें। इस तरह सात दिन तक पिलानी चाहिए तथा भूख लगने पर दूध, साठी के चांवलों का भात और मूंग की दाल का थोड़ा २ पथ्य लेना चाहिए, तथा दिन में शयन, काम, क्रोध, उद्वेग और शोक श्रमादिकों का परित्याग कर देना चाहिए। इस प्रकार इस प्रयोग के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री गर्भिणी हो कर चिरजीवी पुत्र उत्पन्न करती है ॥ ५० ॥

अथ शरपुङ्ख्याप्रयोगः—

शीततोयेन सम्पिष्टं शरपुङ्खीयमूलकम् ।
कर्षं पीत्वा लभेद्गर्भं पूर्ववत्क्रमयोगतः ॥ ५१ ॥
नोचेदपरमासे तु कारयेत्पूर्ववत्फलम् ।
पतिसङ्गे लभेद्गर्भं नात्र कार्या विचारणा ॥ ५२ ॥

उपर्युक्त विधि के अनुसार अर्थात् रविपुष्य योग के दिन उखाड़ी हुई शरपुङ्खा की एक कर्ष भर जड़ को एक वर्णवाली गाय के दुग्ध में कन्या के हाथ से पिसवा कर दुग्ध में घोल के मिश्री या चीनी मिला कर ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भधारण करती है। इस योग से यदि एक वार सात दिन तक पीने से फल (गर्भ धारण) न हो तो दूसरे मास में ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक पीने से वन्ध्या स्त्री भी गर्भधारण करती है ॥ ५१–५२ ॥

रुद्राक्षादिप्रयोगः—

एकमेव तु रुद्राक्षं सर्पाक्षी कर्षमात्रकम् ।
पूर्ववच्च गवां क्षीरैः ऋतुकाले प्रदापयेत् ॥ ५३ ॥
महागणेशमन्त्रेण रक्षां तस्यास्तु कारयेत् ।
एवं दिनत्रयं कृत्वा वन्ध्या भवति पुत्रिणी ॥ ५४ ॥

रुद्राक्ष का १ दाना (मण्या) तथा १ कर्ष भर मूल (जड़) और पत्र के

सहित सर्पाक्षी इन दोनों को लेकर रुद्राक्ष को एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में चन्दन की तरह कन्या के हाथ से पिसवाकर पाव भर दुग्ध में मिला दें तथा शरपुङ्खा को भी एक वर्ण वाली गाय के दुग्ध में कन्या के हाथ से पिसवा कर रुद्राक्ष घृष्ट युक्त दुग्ध में मिला दें। फिर उस दुग्ध में थोड़ी सी चीनी या मिश्री मिला कर ऋतुस्नान करने के पश्चात् वन्ध्या स्त्री को पिला देवें तथा औषध पीने के पश्चात् अग्नि पर गूगल आदि की धूप लगाकर "ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा" इस महागणेशमन्त्र से उस स्त्री को १११ वार झाड़नी चाहिए। इस तरह तीन दिन तक इस योग के सेवन करने से वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती हो जाती है अर्थात् इस योग के सेवन करने के पश्चात् वह सन्तानोत्पत्ति कराने में समर्थ स्वभर्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भवती हो जाती है ॥ ५३–५४ ॥

श्वेतकण्टकारीप्रयोगः—

सुश्वेतकण्टकार्याश्च मूलं तद्वच्च गर्भकृत् ॥ ५५ ॥

अथवा श्वेतकण्टकारी की १ कर्ष भर जड़ को एक वर्ण वाली गो के दुग्ध में कन्या से पिसवा कर रुद्राक्ष के घासे के साथ या स्वतन्त्र (अकेली ही को) दुग्ध में घोलकर चीनी मिलाकर तीन दिन तक ऋतुस्नान के पश्चात् पीने से स्त्री का वन्ध्यत्व दोष नष्ट हो जाता है और वह शुद्ध शुक्रवाले स्वभर्त्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भवती हो जाती है ॥ ५५ ॥

विष्णुक्रान्ताप्रयोगः—

पूर्वपुत्रवती तासां कर्म तद्वच्च कथ्यते ।
पेषयेन्महिषीक्षीरैर्विष्णुक्रान्तां समूलकाम् ॥ ५६ ॥
महिषीनवनीतेन ऋतुकाले तु भक्षयेत् ।
एवं दिनं दिनं कुर्यात्पथ्ययुक्त्या च पूर्ववत् ॥
गर्भं प्रलभते नारी काकवन्ध्या सुशोभनम् ॥ ५७ ॥

अब पूर्वपुत्रवती अर्थात् जिनके एक वार पुत्र होने के पश्चात् सन्तति न होती हो ऐसी काकवन्ध्या स्त्रियों को पुत्र देने के योग्य कर्म अर्थात् चिकित्सासम्बन्धी योगों का वर्णन किया जाता है। यथा—विष्णुक्रान्ता को जड़ के सहित उखाड़

-कर भैंस के दुग्ध में पीसकर भैंस ही के नवनीत (ताजे घृत या मक्खन) में मिलाकर थोड़ी सी चीनी डालकर ऋतुस्नान के पश्चात् सात दिन तक सेवन करें। तथा पूर्ववत् पथ्य का पालन करने से काक वन्ध्या स्त्री फिर गर्भधारण करने योग्य हो जाती है ॥ ५६–५७ ॥

अश्वगन्धाप्रयोगः—

अश्वगन्धीयमूलं तु ग्राहयेत्पुष्यभास्करे ।
पेषयेन्महिषीक्षीरैः पलार्धं पाययेत्सदा ॥
सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या चिरायुषम् ॥ ५८ ॥

रविवार के दिन पुष्यनक्षत्र का योग होने पर असगन्ध की जड़ को उखाड़ कर घर ले आवें तथा जिस दिन स्त्री रजस्वला होने के कारण स्नान करके शुद्ध हो जाय उस दिन उस जड़ में से आधी पल (२ कर्ष) भर जड़ को भैंस के दुग्ध में पिसवा कर पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक पिलाने से काकवन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करके चिरजीवी पुत्र को पैदा करती है ॥ ५८ ॥

अथ शिवोक्ततान्त्रिकप्रयोगः—

अथ मृतवत्सालक्षणम्—

गर्भः सञ्जातमात्रस्तु पक्षान्मासाच्च वत्सरात् ।
म्रियते द्वित्रिवर्षैर्वा यस्याः सा मृतवत्सका ॥
तन्त्रयोगं प्रकुर्वीत यथा शङ्करभाषितम् ॥ ५९ ॥

जिस स्त्री के ऋतुकाल में स्वभर्त्ता के साथ सङ्गम करने से गर्भधारण होकर फिर उसका १ पक्ष (१५ दिन) या एक मास के अन्दर ही स्राव हो जाय अथवा बालक के जन्म हो जानेपर भी १ वर्ष, दो वर्ष या तीन वर्ष के भीतर वह बालक मर जाय तब वह स्त्री मृतवत्सा कहलाती है। ऐसी स्त्री के गर्भ अथवा पुत्र की रक्षा के लिये श्रीशङ्कर भगवान् के द्वारा कहे हुए निम्नलिखित तान्त्रिक प्रयोग का उपयोग करना अत्यन्त आवश्यक है ॥ ५९ ॥

अथ शङ्करोक्तदेवव्यपाश्रयचिकित्सा—

मार्गशीर्षेऽथवा ज्येष्ठे पूर्णायां लेपिते गृहे ।
नूतनं कलशं पूर्णं गन्धतोयेन कारयेत् ॥ ६० ॥
शाखाफलसमायुक्तं सर्वरत्नसमन्वितम् ।

सुवर्णमुद्रिकायुक्तं षट्कोणे मण्डले स्थितम् ॥ ६१ ॥
तन्मध्ये पूजयेद्देवीमेकान्तानामविश्रुताम् ।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैर्नैवेद्यसंयुतैः ॥ ६२ ॥
अर्चयेद् भक्तिभावेन मद्यैर्मांसैः समत्स्यकैः ।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ॥ ६३ ॥
वाराही च तथा चैन्द्री षट्पत्रेषु च मातृकाः ॥
पूजयेन्मन्त्रलिङ्गेन ओङ्कारैर्नामसंयुतैः ॥ ६४ ॥
दधिभक्तेन पिण्डानि सप्तसङ्ख्यानि कारयेत् ।
षट्संख्या षट्सु पत्रेषु आहृत्य कल्पयेत्पृथक् ॥ ६५ ॥
उल्लेख्य सप्तकं पिण्डं शुचिस्थाने बहिः क्षिपेत् ।
तैर्भुक्तैर्गृहमागच्छेच्चकाग्रे योगमाचरेत् ॥ ६६ ॥
कन्यका योगिनी रामा भोजयेत्सकुटुम्बकम् ।
दक्षिणां दापयेत्तासां देवताग्रे निवेद्य च ॥ ६७ ॥
विसर्ज्य देवतां चाऽथ नद्यां तत्कलशोदकम् ।
शकुनं वीक्षयेद्धीमाञ्शुभेन शुभमादिशेत् ॥ ६८ ॥
विपरीते पुनः कुर्याद्योगं तद्वत्सुसिद्धिदम् ।
प्रतिवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीवी सुतो भवेत् ॥ ६९ ॥
"ॐ ह्रां ह्रीं एकान्तदेवतायै नमः"
अनेन मन्त्रेण पूजा जपश्च कार्यः ।

मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा ज्येष्ठमास की पूर्णिमा के दिन अपने गृहको अच्छी प्रकार पीली और गोबर से लीप पोत कर शुद्ध कर लेवें । पश्चात् ताम्र, स्वर्ण, रजत या मृत्तिका के नवीन कलश में शुद्ध जल भरकर उसमें स्वर्ण या रजत की मुद्रा तथा आम की शाखा (डाली) और नारियलफल तथा यथालभ्य रत्न, गन्धाक्षत आदि डाल कर उस कलश को उस शुद्धगृह के किसी शुभप्रदेश में षट्कोण का मण्डल बनवाकर वहां धान (यव, गेहूं) बिच्छाकर उनपर स्थापित कर दें । पश्चात् उसी कलश के समीप षट्कोण मण्डल में एकान्त नाम से विख्यात देवी की प्रतिमा बनवाकर स्थापित करके जल से स्नान करा कर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य तथा मत्स्य आदि मांस और मद्य आदि अनेक

पदार्थों से तथा "ॐ ह्रां ह्रीं एकान्त देवतायै नमः" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भक्ति पूर्वक उस देवी की पूजन करनी चाहिए। इस पूजन के पश्चात् षट्कोण मण्डल के प्रत्येक कोण में क्रम से ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वारही और ऐन्द्री (इन्द्राणी) इन ६ मातृकाओं का आवाहन कर के उन देवियों के बीजमन्त्र का उच्चारण करते हुए पूर्वोक्त पदार्थों से षोडशोपचार पूजन आदि भक्ति भाव से करनी चाहिए। इनकी पूजन करने के पश्चात् भात के अन्दर दही मिलाकर एक २ छटाङ्क के सात पिण्ड बना कर उन में से छ पिण्डों को छ ही मातृका देवियों के निमित्त षट्कोणमण्डल के उन छहों कोणों पर रख देवें तथा सातवें पिण्ड को स्वर्ण या रजत की सलाई या कुशा से उल्लिखित कर के अर्थात् उसपर ५ या सात लकीरें खींच कर घर के बाहर चौराहे के पवित्र स्थान में रख देवें तथा काक और श्वान (कुत्ते) आदि उस पिण्ड को खा जांय तब अपने गृह को आकर उपर्युक्त षट्कोणमण्डल के सन्मुख ही आसन बिछा के बैठ कर "ॐ ह्रौं ह्रीं एकान्तदेवतायै नमः" इस मन्त्र का १०००८ अथवा १००८ वार उच्चारण (जप) करना चाहिए। इस प्रकार मन्त्रजप करने के पश्चात् कन्या, योगिनी तथा सौभाग्यवती स्त्रियों को कुटुम्ब सहित भक्तिभाव पूर्वक भोजन करा कर दक्षिणा देवें। इस दक्षिणा को उन्हें देने के पूर्व ही एकान्तादेवी के समीप रख देनी चाहिए। पश्चात् वहां से ले ले कर उन्हें देवें। इसके पश्चात् आहूत देवी देवताओं का विसर्जन करके उस समग्र पूजन सामग्री (पुष्पादिक) तथा कलशोदक को किसी नदी या तालाब आदि में डाल देवें। जब नदी में यह सामग्री डाली जाय तब बुद्धिमान् पुरुष को शुभ शकुन का विचार कर लेना चाहिए जैसे—सामग्री के डालने से जल की लहरें (तरङ्ग) अपनी तरफ आरहीं हो अथवा सामग्री डाल के गृह की तरफ लौटते समय कोई पुत्र को लिए (ली) हुई सौभाग्यवती स्त्री मिल जाय तब शुभ शकुन समझने चाहिए। यदि इनके विपरीत लक्षण या शकुन हो अर्थात् जल की तरङ्गे अपनी तरफ न आवें या गृह लौटते समय विधवा स्त्री, वन्ध्या स्त्री या अन्य अपवस्तु का दर्शन हो जाय तब फिर दूसरी वार इस उत्सव को करना चाहिए। इस तरह प्रतिवर्ष इस उत्सव के करते रहने से उस गृह की वन्ध्या स्त्री अपने निर्दोष स्वामी के साथ ऋतुकाल में सम्भोग करने से गर्भ को धारण करके दीर्घ-

जीवी पुत्र को उत्पन्न करती है। "ॐ ह्राँ ह्रीं एकान्त देवतायै नमः" इस मन्त्र से उपर्युक्त उत्सव में एकान्ता देवी का पूजन तथा जप करना चाहिए ॥६०-६९॥

अथ युक्तिव्यपाश्रये वन्ध्याकर्कोटकीप्रयोगः—

प्राङ्मुखः कृत्तिकाऋक्षे वन्ध्याकर्कोटकीं हरेत्।
तत्कन्दं पेषयेत्तोये कर्षमात्रं पिबेत्सदा॥
ऋतुकाले तु सप्ताहं दीर्घजीवी सुतो भवेत्॥ ७०॥

कृत्तिका नक्षत्र में पूर्व दिशाकी तरफ मुख करके बांझ ककोड़े की जड़ को उखाड़ कर घर पर ले आवें। इस जड़ में से १ कर्ष भर जड़ को जल के साथ पीसकर ऋतुस्नान करने के पश्चात् वन्ध्या स्त्री को पिलावें। इस तरह एक सप्ताह तक इस योगके सेवन करते रहने से उस स्त्री के दीर्घजीवी सन्तान पैदा होती है ॥७०॥

अथ गर्भिणीरोगः—

अथ गर्भिणीरोगापनयन-गर्भपोषणसामान्योपायाः—

तत्र प्रथममासे पद्मकादिकल्कः—

अकस्मात्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना।
गोक्षीरैः पेषयेत्तुल्यं पद्मकोशीरचन्दनम्॥
पलमात्रं पिबेन्नारी त्र्यहाद्गर्भः स्थिरो भवेत्॥ ७१॥

गर्भ धारण करने के पश्चात् प्रथम मास में कभी २ अकस्मात् गर्भ सम्बन्धी पीड़ा प्रारम्भ होती है। इस पीड़ा से गर्भ स्राव होने की सम्भावना रहती है अत एव पीड़ा को दूर करने के लिये पद्माक (पदुमकाठ का चूर्ण) उशीर (खस) और लाल चन्दन का चूर्ण इन तीनों को सम भाग मिला कर १ पल भर वजन ग्रहण कर के गाय के दुग्ध में अच्छी तरह महीन पिसवा के छान कर चीनी मिला के गर्भवती स्त्री को पिला देवें। इस तरह तीन दिन तक उपचार करने से गर्भ सम्बन्धी वेदना नष्ट हो जाती है तथा गर्भ भी स्थिर हो जाता है जिस से उस के स्राव होने की शङ्का दूर हो जाती है ॥ ७१ ॥

अथ द्वितीयमासे नीलोत्पलादिकल्कः—

नीलोत्पलं मृणालं च खण्डी कर्कटशृङ्गिका।
गोक्षीरैर्द्वितये मासि पीत्वा शाम्यति वेदना॥ ७२॥

यदि गर्भ धारण करने के पश्चात् द्वितीय मास में गर्भ सम्बन्धी पीड़ा

प्रारम्भ हो जाय तब गर्भवती स्त्री को नील कमल, कमल की डण्डी, खण्डी अर्थात् मुद्गपर्णी (खण्ड पाठ होने पर लाल चन्दन) और काकड़ासींगी इन औषधियों को समभाग लेकर चूर्ण बना के उसमें से आधे से १ तोले भर चूर्ण लेकर गाय के दुग्ध के साथ सेवन करना चाहिए। इस चूर्ण को प्रायः सात दिन तक सेवन करते रहने से द्वितीय मास में उत्पन्न हुई गर्भ की वेदना शान्त हो जाती है तथा गर्भस्राव होने का भय भी नहीं रहता है ॥ ७२ ॥

अथ तृतीयमासेश्रीखण्डादिकल्कः—

श्रीखण्डं तगरं कुष्ठं मृणालं पद्मकेसरम्।
पिबेच्छीतोदकैः पिष्टं तृतीये वेदना न हि ॥ ७३ ॥

यदि गर्भधारण करने के पश्चात् तीसरे मास में गर्भिणी को गर्भसम्बन्धी वेदना का अनुभव होता हो तब श्रीखण्ड अर्थात् श्वेतचन्दन का चूर्ण, तगर का चूर्ण, मीठे कूट का चूर्ण, पद्म की डण्डी (नाल) और कमलकेसर इन सब को सम भाग लेकर खरल में एकत्र कर के पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन १ तोले से ३ तोले तक लेकर शीतल जल के साथ पत्थर पर महीन पीस कर चीनी मिला के वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री को पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक उपचार करते रहने से गर्भ सम्बन्धी वेदना दूर हो जाती है तथा गर्भस्राव होने का भय भी दूर हो जाता है ॥ ७३ ॥

अथ तृतीयमासे नीलोत्पलादिप्रयोगान्तरम्—

नीलोत्पलमृणालानि गोक्षीरैश्च कसेरुकम् ॥ ७४ ॥

अथवा नील कमल, कमल की नाल (मृणाल) और कसेरू इन को सम भाग की मात्रा से १ पल भर लेकर पत्थर पर गाय के दुग्ध के साथ महीन पीस कर कपड़े से छान के चीनी मिला कर गर्भिणी को पिलाने से भी तीसरे मास की वेदना दूर हो जाती है ॥ ७४ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरः पाठादिकषायः—

पाठामुस्तावयःस्थाम्बुसारिवापद्मकैः शृतम्।
शीतं तोयं निहन्त्याशु गर्भिणीज्वरवेदनाम् ॥ ७५ ॥

यदि गर्भिणी स्त्री को ज्वर का उपद्रव प्रारम्भ हो जाय तब उसको दूर करना चाहिए। ऐसा न करने से उस ज्वर के प्रतिदिन बढते रहने से गर्भाशय की

गरमी भी बढ जाती है और गर्भ का स्राव हो जाता है। यदि स्राव न भी हो तो वह ज्वर बालक को हानि पहूंचाता है तथा गर्भजन्म के पश्चात् प्रसूतीरोग का कारण हो जाता है। निम्न कषायादिक सौम्य उपचारों से गर्भवती स्त्री का ज्वर दूर करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। पाठा, नागरमोथा, वयःस्था अर्थात् ब्राह्मी अथवा आंवले, अम्बु अर्थात् नेत्रवाला, सारिवा (अनन्तमूल) और पद्माख इन सबको समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बनाके चतुर्थांश शेष रहने पर छान करके शीतल होने पर गर्भिणी को पिला देवें। इस क्वाथ को जब तक ज्वर दूर न हो तबतक प्रतिदिन पिलाते रहना चाहिए। इस योग के सेवन करने से गर्भिणी स्त्रियों का ज्वर तथा वेदनाएं दूर हो जाती हैं ॥ ७५ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरश्छिन्नादिकषायः—

छिन्ना श्रीपर्णिकाक्वाथः सिताक्षौद्रयुतो हरेत्।
गर्भिणीनां ज्वरं घोरं लङ्केशमिव राघवः ॥ ७६ ॥

अथवा गुडूची, श्रीपर्णी अर्थात् गम्भारी की छाल इन दोनों को समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर नीचे उतार के वस्त्र से छान कर मिश्री या चीनी और शहद् मिला कर गर्भिणी स्त्री को पिलावें। यह छिन्नादि कषाय कुछ दिन तक सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों के भयङ्कर ज्वर को तुरन्त ही नष्ट कर देता है, जिस तरह भयङ्कर रावण को श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने नष्ट कर दिया था ॥ ७६ ॥

अथ गर्भिणीज्वरहरः पयस्यादिकषायः—

पयस्यासारिवायष्टीबलालोध्रमधूद्भवः।
दुग्धेन मिश्रितः क्वाथो हरेद्गर्भवतीज्वरम् ॥ ७७ ॥

अथवा पयस्या (क्षीर काकोली), सारिवा (अनन्तमूल), मुलेठी, बला (खरेटी = बरियारा), लोध (पठाणी) और महुए की छाल इन सब को सम भाग अर्थात् प्रत्येक को दो दो माशे भर लेकर अठगुने (९६ माशे भर) जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर चूल्हे से उतार कर शीतल कर के छान लेवें। फिर उस में आध पाव या पाव भर दुग्ध तथा चीनी मिला कर गर्भिणी स्त्री को पिला देवें। यह क्वाथ गर्भवती स्त्रियों के ज्वर को विनष्ट कर देता है ॥७७॥

अथ गर्भिणीज्वरहानिः—

दुर्जयः सर्वरोगेषु गर्भिणीनां ज्वरः खलु ।
तापो जूर्तिषु गर्भस्य विक्रियां कुरुतेतराम् ॥ ७८ ॥

गर्भिणी स्त्रियों के अन्य रोगों की अपेक्षा ज्वर अत्यन्त दुःसाध्य होता है। तथा जूर्तियों में अर्थात् अष्ट विध ज्वरों में ताप अर्थात् ज्वर का अधिक ताप गर्भ के अन्दर विकार पैदा कर देता है ॥ ७८ ॥

अथ गर्भिण्यतिसारहरो वृक्षकत्वगादिकषायः—

वृक्षकत्वग्घनो देवदारुदारुविभावरी ।
गर्भिण्या अतिसारघ्नः क्वाथ एषां भवेद् ध्रुवम् ॥ ७९ ॥

वृक्षक की त्वक् अर्थात् कटुज वल्कल (कुड़े की छाल), घन अर्थात् नागर मोथा, देवदार और दारुविभावरी अर्थात् दारुहलदी इन सब को सम भाग लेकर इन का अठ गुने जल में काढा बना के चतुर्थांश शेष रहने पर शीतल कर के वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री के अतिसार को दूर करने के लिए पिलावें। इस तरह यह क्वाथ गर्भिणी स्त्रियों के अतिसार को नष्ट करता है ॥ ७९ ॥

अथ गर्भिण्यतीसारहरौ श्रीपर्ण्यादिबलादिक्वाथौ—

श्रीपर्णीयष्टिगोप्यब्ददार्वीक्वाथोऽतिसारनुत् ।
बलादुरालभापाठाशुण्ठीमुस्ताकषायवत् ॥ ८० ॥

श्रीपर्णी अर्थात् गम्भारी की छाल या कायफल, मुलेठी, गोपी अर्थात् सारिवा (अनन्त मूल), अब्द अर्थात् नागर मोथा और दारु हरिद्रा इन सब को सम भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ कर के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान के गर्भिणी स्त्री को पिलाने से अतिसार नष्ट हो जाता है। अथवा बला (बरियारा), दुरालभा (जवासा), पाठा, सौण्ठ और नागर मोथा इन को सम भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर छान के गर्भिणी स्त्री को पिला देना चाहिए। इस तरह दो या चार दिन पिलाने से गर्भिणी स्त्री का अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ गर्भिण्युदावर्त्तादिहरः पुनर्नवादिकषायः—

जातः पुनर्नवाद्राभ्यां क्वाथः क्षीरयुतो निशि ।
पीतो हरेदुदावर्तं गुल्मांशः शोफवेदनाम् ॥ ८१ ॥

पुनर्नवा (साठेड़ी=गदपुर्णा) और अद्रक (आदी) इन दोनों को समभाग लेकर अष्टगुण जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान कर उसमें एक पाव दुग्ध मिला कर सन्ध्या के समय गर्भिणी स्त्रियों को पिलाना चाहिए। इस तरह इस योग के एक सप्ताह तक सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों का उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, शोथ तथा अन्य गर्भसम्बन्धी वेदनाएं नष्ट हो जाती हैं॥ ८१॥

अथ गर्भिण्याः शोथहरोपायः—

घृतक्षीरगुडान्याऽऽर्द्रकाथसिद्धेन चूर्णिताम्।
कणां संयोज्य सेवेत शोफपित्तापनुत्तये॥ ८२॥

अन्या अर्थात् हरड और अद्रक का अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश अवशिष्ट रहने पर वस्त्र से छान के उसमें घृत, दुग्ध और गुड़ मिलाकर रख दें। फिर २ माशे भर पिप्पली का चूर्ण लेकर उसको शहद् के साथ भक्षण कर के उपर्युक्त घृत दुग्धादिमिश्रित क्वाथ को पिला देवें। इस तरह एक सप्ताह तक इस योग के सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों के अङ्ग की सूजन तथा पित्त का विकार आदि रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ८२॥

अथ गर्भिणीशोथहरः पुनर्नवादिलेपः—

पुनर्नवावचाकल्कधान्यैर्लेपोऽतिशोफनुत्॥ ८३॥

पुनर्नवा (गदपूर्णा) और वचा इन दोनों को धान से बनी हुई काञ्जी के साथ पीस कर कल्क बनाकर गर्भिणी स्त्रियों के अत्यन्त बढे हुए शोथ पर प्रतिदिन लेप करने से वह नष्ट होजाता है॥ ८३॥

अथ गर्भिण्युदावर्त्तादिहरो वर्षाभूक्वाथः—

गुडाज्यसहितं क्वाथं वर्षाभूमूलसाधितम्।
उदावर्ते च शोफे च गर्भिणीं पाययेद्भिषक्॥ ८४॥

उदावर्त्त तथा शोथ रोग को दूर करने के लिये वर्षाभू अथात् पुनर्नवा के क्वाथ में गुड़ तथा घृत मिलाकर प्रतिदिन गर्भिणी स्त्री को पीलाना चाहिए। इस तरह वैद्य गर्भिणी स्त्री के उदावर्त्त तथा शोथ को दूर करें॥ ८४॥

अथ गर्भिण्याः पित्तार्तिहरोयष्टिकादिक्वाथः—

पित्तार्तिं हन्ति यष्टीका द्राक्षामलकसाधिता।
पीता दुग्धयवागूश्च गर्भिणीनामसंशयम्॥ ८५॥

मुलेठी, दाख और आंवले इनको समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल के चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें। फिर इस क्वाथ में यवागू सिद्ध कर के दुग्ध मिलाकर सेवन करने से गर्भिणी स्त्रियों की पित्त की वेदना को नष्ट कर देती है॥८५॥

अथगर्भिण्याः श्वासकासहरस्तिक्तकादिकषायः—

तिक्ताहरीतकीभार्ङ्गीवचाशुण्ठीकषायकम् ।
सगुडं पाययेद्वैद्यः श्वासकासापनुत्तये ॥ ८६ ॥

तिक्ता अर्थात् कुटकी, हरड़, भारङ्गी, वचा और सौंठ इन सबको समभाग लेकर अठगुने जल में उबाल के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर कषाय तैयार कर लेवें। फिर इस कषाय में गुड़ डालकर वैद्य गर्भिणी स्त्रियों को श्वास तथा कास के विनष्ट करने के लिये पिलावें ॥ ८६ ॥

अथ गर्भिणीकासे मरिचप्रयोगः—

मरीचचूर्णं सक्षौद्रसिताज्यं कासनाशनम् ॥ ८७ ॥

केवल काली मरिचों का चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से २ माशे भर चूर्ण लेकर चीनी, शहद् और घृत के साथ मिलाके प्रतिदिन सेवन करते रहने से गर्भिणी स्त्रियों का कासरोग नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ गर्भिण्या वान्तौ लाजादिकषायः—

लाजैलाकोलमज्जाम्बु निपीतं वान्तिनाशनम् ॥ ८८ ॥

लाज (धान के लावे या खीलें), बड़ी इलायची, बेर के फल का गूदा अथवा अङ्कोल के फल की गिरी इन सब को समान लेकर अठगुने जल में उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसका वमन दूर हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ गर्भिण्या हिक्कायां बालबिल्वक्वाथः—

बालबिल्वोद्भवः क्वाथो हिक्कां हन्ति समाक्षिकः ॥ ८९ ॥

बालबिल्व अर्थात् बेल के कच्चे फलकी गिरी (गदी) का अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छानकर उस में शहद् मिलाकर गर्भिणी स्त्री को पीलाने से उसका हिक्कारोग नष्ट हो जाता है ॥ ८९ ॥

अथ गर्भिण्या अग्निमान्द्ये अजमोदादिचूर्णम्—

अजमोदाश्वगन्धा च द्वे कणे जीरकं तथा ।

लीढा मधुगुडोपेता निहन्युर्मन्दवन्हिताम् ॥ ९० ॥

अजमोदा, असगन्ध, छोटी पीपल तथा बड़ी (गज) पीपल और जीरा इन सबको बराबर लेकर लोहे की ओखली में महीन कूट खांड के चूर्णकर लेवें। इस चूर्ण को २ माशे से आधे तोले भर तक लेकर शहद् और गुड़ के साथ मिला के गर्भिणी स्त्री को खिलाने से उसका मन्दाग्निरोग नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

अथ गर्भिण्या वातरोगे बालबिल्वादिसाधितक्षीरप्रयोगः—

बालबिल्वविदारीभिः पृश्निपर्ण्या च साधितम्।
क्षीरं क्षीरयवाग्वापि पिबेद्वातकृतामये ॥ ९१ ॥

बेल के कच्चे फल का गूदा, विदारीकन्द और पृष्ठपर्णी इन तीनों को जल के साथ सील (पत्थर) पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क में क्षीरपाक विधि से दुग्ध का पाक करके उसको दुग्ध में बनी हुई यवागू के साथ पीने से गर्भिणी स्त्रियों के वातिकरोग तथा उन से उत्पन्न वेदनाएं नष्ट हो जाती हैं ॥९१॥

अथ गर्भिण्या मूत्ररोगे श्वदंष्ट्रादिकषायः—

श्वदंष्ट्राबलयोः क्वाथो मूत्ररोगे प्रशस्यते ॥ ९२ ॥

श्वदंष्ट्रा अर्थात् गोखरू और बला इन दोनों को समान २ लेकर अष्टगुण जल में क्वाथ करके चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से मूत्र रोग (मूत्रावरोध) में लाभ होता हैं ॥ ९२ ॥

अथ गर्भिण्या मासानुमासिकयोगाः—

सुरदारु वयःस्था च शाकबीजं च यष्टिका।
बला कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली चाश्मन्तकस्तथा ॥ ९३ ॥
नीलोत्पलं वयःस्था च गुडूची सारिवा तथा।
मधुयष्टी च पद्मं च रास्ना सारिवया सह ॥ ९४ ॥
काश्मर्या बृहती क्षीरी शृङ्गवल्लीत्वचो घृतम्।
मधुपर्णीबलाशिग्रुश्वदंष्ट्रापृश्निपर्णिका ॥ ९५ ॥
सितामधुकशृङ्गाटद्राक्षाबिसकसेरुकाः।
सप्तश्लोकार्धनिर्दिष्टान्योगान्सप्त पयोऽन्वितान् ॥
पिबेत्क्रमेण मासेषु गर्भस्रावादिवारणान् ॥ ९६ ॥

सुरदारू (देवदारू), वयःस्था-हरड़ या आंवले, शाकबीज (सागोन के बीज)

और मुलेठी इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध के साथ पीसकर चीनी मिला के प्रथम मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। बला (बरियारा), काले तिल, ताम्र वल्ली अर्थात् मंजीठ और अश्मन्तक (पाषाण भेद) इनको समान२ लेकर दुग्ध में पीसकर मिश्री या चीनी मिलाके गर्भिणी स्त्री को द्वितीय मास में पिलावें। नीलकमल, वयस्या (क्षीरकाकोली), गुडूची और सारिवा (अनन्तमूल) इन को दो२ माशे भर लेकर दुग्ध के साथ पीसकर चीनी मिला के गर्भिणी स्त्री को तृतीय मास में पिलावें। मुलेठी, कमलगट्टा, रास्ना और सारिवा इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीसकर चीनी मिला के चतुर्थ मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। काश्मरी अर्थात् गम्भारी के फल, बड़ी कटेरी की जड़, दुग्धिका, विदारीकन्द और काकड़ासीङ्गी, (अथवा 'क्षीरी शुङ्गास्त्वचः' ऐसा भी पाठ है वहाँ क्षीरीवृक्ष (वट के शुङ्ग और उसीकी छाल लेवें) घृत, इनको समभाग लेकर दुग्ध के साथ पीस के गर्भिणी स्त्री को पञ्चम मास में पिलावें। मधुपर्णी अर्थात् मुलेठी अथवा गम्भारी की छाल, बला, सहजन की छाल, गोखरू, पृष्ठपर्णी इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीस के षष्ठ मास में गर्भिणी स्त्री को पिलावें। चीनी, मुलेठी, सिंघाड़े, दाख, कमल की नाल और कशेरू इन सबको दो२ माशे भर लेकर दुग्ध में पीसकर चीनी मिला के गर्भिणी स्त्री को सातवें मास में पिलाना चाहिए। इस तरह इन श्लोकों के आधे२ सात चरणों में कहे हुए सात योगों की औषधियों को दुग्ध के साथ पीसकर अथवा इन औषधियों का क्वाथ बना के दुग्ध में मिलाकर प्रथम मास से प्रारम्भ करके सात मास तक क्रम से गर्भिणी स्त्री को सेवन कराते रहना चाहिए। इन योगों को अपने २ मास के अनुसार (अर्थात् प्रथम मास में प्रथम योग, एवं द्वितीय मास में द्वितीय योग) सेवन करने से गर्भस्राव तथा गर्भवेदना आदि गर्भिणी स्त्री के सर्व उपद्रव दूर हो जाते हैं॥ ९३-९६॥

अथ गर्भिणीवातहरमुशीरादिक्षीरम्—

उशीरयष्टीसँसिद्धं गर्भिणीवातहृत्पयः ॥ ९७ ॥

उशीर (खस) और मुलेठी इन दोनों को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर या सील पर पीस कर कल्क बना लेवें फिर इस कल्क से क्षीरपाकविधि के अनुसार दुग्ध पका कर उसको पीने से गर्भिणी स्त्री की वातवेदना नष्ट हो जाती है ॥ ९७ ॥

अथ गर्भिणीवातहरीद्राक्षादियवागूः—

द्राक्षायष्टिकसिद्धा च यवागूश्च तथाफला ॥ ९८ ॥

अथवा दाख (मुनक्का) और मुलेठी को समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर उतार के शुद्ध वस्त्र से छान लेवें। फिर उस क्वाथ में यवागू बना कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसकी वातिक पीड़ाएं दूर हो जाती हैं ॥ ९८ ॥

अथ गर्भिण्याःपित्तहरो बलादिक्काथः—

बला वासा पृथक्पर्णी निर्यूहश्चापि पित्तनुत् ॥ ९९ ॥

बला (बरियारा), वासा (अडूसा) और पृष्ठपर्णी इनको समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर वस्त्र से छान कर गर्भिणी स्त्री को पिलाने से उसकी पित्तजन्य वेदनाएं दूर हो जाती हैं ॥ ९९ ॥

अथ गर्भिणीकामलाद्यपहो बलादिक्काथः—

सपुनश्छिन्नया युक्तो गर्भिणीकामलापहः ।
कासं श्वासं तथा रक्तपित्तं चाशु विनाशयेत् ॥ १०० ॥

उसी क्वाथ अर्थात् बला, वासा और पृष्ठपर्णी के क्वाथ के अन्दर गुडूची का स्राव अथवा क्वाथ मिलाकर प्रतिदिन पीने से गर्भिणी स्त्री के कामलारोग को नष्ट करता है तथा यह क्वाथ कास, श्वास और रक्तपित्त को भी जल्दी ही दूर कर देता है ॥ १०० ॥

अथ गर्भिण्याः सर्वरोगहरो बलाक्काथः—

अघृतः सघृतो वापि सदुग्धो वाप्यदुग्धवान् ।
एक एव बलाक्कथो गर्भिणीसर्वरोगनुत् ॥ १०१ ॥

गर्भिणी स्त्रियों के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करने के लिये केवल बला का क्वाथ जिसमें चाहे घृत मिला हुआ या ऐसे ही, तथा दुग्ध मिला हुआ हो या ऐसे ही हो श्रेष्ठ औषध है ॥ १०१ ॥

गर्भिण्याः पथ्यापथ्यविवेकः—

शालयः षष्टिकामुद्गा गोधूमा लाजशक्तवः । नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥१॥
पनसं कदलीधात्री द्राक्षाम्लं स्वादु शीतलम् । कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् ॥२॥
चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः।सन्तर्पणं प्रियाश्लेषो विहाराश्च मनोरमाः३
प्रियङ्करं चान्नपानं गर्भिणीनां हितं सदा ॥ ४ ॥ इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

स्वेदनं वमनं क्षारं कदन्नं विषमाशनम्। अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गर्भिणीनां महर्षिभिः ॥१॥

अथ मूढगर्भचिकित्सा—

विलोमवायुना गर्भो जीवन्यदि न निःसरेत्।
स गर्भसङ्ग इत्युक्तो मूढगर्भो मृते शिशौ ॥ १०२ ॥

गर्भाशय की वायु के विलोम (विकृत) हो जाने से जीवित गर्भ श्रोणि गुहा के भीतर रुक जाता है तथा प्रसव काल के उपस्थित होने पर भी बाहर नहीं निकल सकता है ऐसी दशा में उसे गर्भ सङ्ग कहते हैं किन्तु यदि वह भीतर ही मर जाय तब उस को मूढ गर्भ कहते हैं ॥ १०२ ॥

अन्तर्मृतापत्याया लक्षणम्—

स्तब्धाध्मानं शिशिरजठरं सास्यशोषं समूर्छं
गर्भास्पन्दः श्वसनकमहापूतिगन्धा भ्रमार्तिः।
कृच्छ्रोच्छ्वासोऽसितरुचिरवपुः स्तब्धनेत्रे व्यथोग्रा
विण्मूत्रार्तिर्भवति हि मृताऽपत्यगर्भाङ्गनायाः ॥१०३॥

गर्भिणी स्त्री के बालक के गर्भ में मर जाने पर निम्न लक्षण प्रगट होते हैं। बालक के मर जाने पर गर्भिणी स्त्री के पेट (उदर) में स्तब्धता, आध्मान, उदर प्रदेश में अधिक शीतलता, मुख का बार २ सूखना, मूर्च्छा (बेहोशी) का होना, गर्भ के स्पन्दन का अभाव, श्वासोच्छ्वास के समय निकले हुए सांस में सड़ने की सी बदबू आना, चक्कर तथा पीड़ा (विशेष कर उदर और गर्भाशय में), श्वास लेने में कठिनाई होना, शरीर का कालिमा लिये हुए नीला हो जाना, दोनों नेत्रों में स्तब्धता तथा सारे शरीर में विशेष कर सन्धियों में उग्र पीड़ा होना, विष्ठा और मूत्र के अवरोध हो जाने से अधिक कष्ट होना आदि ये सब अन्तर्मृतगर्भा स्त्री के लक्षण हैं ॥ १०३ ॥

अथ मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम्—

अकालश्वाससंयुक्ता बद्धभ्रष्टभगान्विता।
शीताङ्गी पूतिकोद्गारा मूढगर्भा न जीवति ॥ १०४ ॥

अकाल श्वास अर्थात् अकस्मात् श्वासोच्छ्वास की तेजी के दोरे होना, योनि का सङ्कोच या अपने स्थान से च्युत हो जाना, समग्र शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्गों में

शीतलता का अनुभव होना, खट्टी तथा दुर्गन्धित डकारों का बार २ आना इन लक्षणों के प्रगट हो जाने पर मूढगर्भा स्त्री जीवित नहीं रह सकती है ॥ १०४ ॥

अथ गर्भप्रसवसामान्योपायाः—

तत्र करञ्जबीजादिप्रलेपअहिनिर्मोकस्नुहीक्षीरौ च—

बीजं करञ्जसञ्जातं कपित्थतुलसीजटा ।
दुग्धे पिष्ट्वा विलिप्याऽथ नाभिपत्करलेपतः ॥ १०५ ॥
सुरया वाऽहिनिर्मोकैः सम्यग्योनिप्रधूपनात् ।
सुखं सूते वधूमूर्ध्नि स्नुक्पयःक्षेपणादपि ॥ १०६ ॥

करञ्ज के फल की गिरी, कपित्थ के फल की गूदी और तुलसी की जड़ इन तीनों को समान लेकर पत्थर पर दुग्ध के साथ पीसकर प्रसवोन्मुखी स्त्री की नाभि, पैर और हाथों पर लेप करने से सुख पूर्वक प्रसव हो जाता है। अथवा सर्प की कांचली (शरीरावरण) को सुरा (काञ्जी) के साथ पत्थर पर पीसकर अग्नि पर रख के योनिप्रदेश को धूपित करने से तथा गर्भिणी स्त्री के माथेपर थूहर के दुग्ध का प्रलेप करने से सुख से प्रसव हो जाता है ॥ १०५-१०६ ॥

अथ हलिनीप्रयोगः—

हलिनीमूलिका नाभिगुह्यबस्तिप्रलेपिता ।
विशल्यां कुरुते नारीं श्वेतपुष्पा च सा क्षणात् ॥ १०७ ॥

श्वेतपुष्पवाली कालिहारी की जड़ को पत्थर पर दुग्ध अथवा जल के साथ पीस कर गुह्यप्रदेश (योन्यादि), वस्ति और नाभि के ऊपर प्रलेप करने से यह योग क्षण भर में स्त्री को विशल्य कर देता है अर्थात् बालक के जन्म हो जाने से गर्भिणी स्त्री शल्य (दुःख) से रहित हो जाती है। कुछ टीकाकारों ने श्वेतपुष्पा शब्द का लाङ्गली से पृथक् (अर्थात् उस का विशेषण न मान कर) श्वेतापराजिता अर्थ किया है। अर्थात् श्वेत अपराजिता की जड़ को पीस कर बस्ति नाभ्यादि अङ्गों पर प्रलेप करने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ १०७ ॥

अथ यष्टिकादिकल्कः—

यष्टी लुङ्गजटा पिष्टा पीता सूतिकरी ध्रुवम् ॥ १०८ ॥

मुलेठी और बिजोरे निम्बू (मातुलुङ्ग) की जड़ इन दोनों को दोर माशेभर

लेकर शीतल जल से पीसकर मिश्री मिला के छानकर प्रसवोन्मुखी स्त्री को पिला देने से सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ १०८ ॥

अथ लाङ्गल्यादिलेपः—

लाङ्गलीमधुसिन्धूत्थैर्योनिलेपात्स्रवेद्वधूः ॥ १०९ ॥

कलिहारी की जड़, शहद् और सैन्धव लवण इन तीनों को बराबर ले कर पत्थर पर पीसकर योनि पर प्रलेप कर देने से गर्भिणी अर्थात् प्रसव पीड़ावाली स्त्री शीघ्र ही बालक को पैदा करती है ॥ १०९ ॥

अथ मातुलुङ्गीरम्भाप्रयोगौ—

मातुलुङ्ग्याश्च मूलं हि रम्भाया वा कटिस्थिते ॥ ११० ॥

बिजोरे निम्बू की जड़ अथवा केले की जड़ को प्रसवोन्मुखी स्त्री के कटिप्रदेश में बांध देने से शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ११० ॥

अथ सिद्धार्थादिवस्तिः—

सिद्धार्थमागधीकुष्ठगोलोमीमिषिकल्कितः ॥
निरूहः स्नेहपट्वाढ्यजरायुं पातयेत्तराम् ॥ १११ ॥

सिद्धार्थ अर्थात् सरसों के बीज, पीपल, कूठ, गोलोमी अर्थात् श्वेत दूर्वा या वाराही कन्द या वचा तथा सौंफ अथवा अजवाईन इन सब को समभाग लेकर क्वाथ बना के छानकर उसमें स्नेह (तैल या घृत) तथा थोड़ा सा सैंधा नीमक मिलाकर उसकी योनि में पिचकारी लगाने से शीघ्र ही सुखप्रसव होता है तथा अपरा का भी शीघ्र पतन हो जाता है ॥ १११ ॥

अथ सिद्धार्थकानुवासनम्—

सिद्धं सिद्धार्थकं तैलं पायौ वा स्मरमन्दिरे ।
अनुवासनतः शीघ्रमपरां पातयेत्तराम् ॥ ११२ ॥

अथवा सरसों, पीपल, कूठ, श्वेत दूर्वा और अजवाईन इनको समभाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बनाकर उसके अन्दर तैलपाकविधि से सरसों का तैल पकाकर छान लेवें। फिर इस तैल की गुदा तथा योनि में पिचकारी लगाने से अपरा जल्दी ही से गिर जाती है ॥ ११२ ॥

अथ सूतिकाचिकित्सा—

अथ पर्पटीरसः—

मञ्जारीमितवज्रहेमरजतैर्व्योमार्ककान्तैर्मृतै-
र्भागैस्तूत्तरवर्धितैः समरसैर्गन्धैर्द्विभागोन्मितैः।
जातः पर्पटिकारसो घृतकणायुक्तो हरेत्सर्वशः
सूतीनां हि महागदान्गदचयं नानानुपानान्वितः॥ ११३॥

हीरे की भस्म १ तोला, स्वर्णभस्म २ तोला, चांदी की भस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म ४ तोला, ताम्रभस्म ५ तोला, कान्तलौहभस्म ६ तोला तथा शुद्धपारद सब भस्मों के बराबर अर्थात् २१ तोला तथा शुद्धगन्धक ४२ तोला लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष भस्में मिला के एकदिन भर तक अच्छी तरह से घोट कर घृत से लिप्त लोहे की कड़ाही में डाल कर उसे चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि से द्रुत करें। जब समग्र कज्जली ठीक तरह से पिघल जाय तब उसको गोबर के ऊपर रखे हुए हरे केले के पत्ते पर गिरा कर दूसरे केले के पत्ते से ढक कर गोबर से दबाकर चपटी पर्पटी बना लेवें। स्वाङ्ग-शीतल पर्पटी को खरल में महीन पीसकर कपड़े से छान के काच की शीशी में भर देवें। इस तरह यह पर्पटिकारस तैय्यार होता है। यह १-४ रत्ती भर रस लेकर घृत और $\frac{1}{2}$ माशे भर पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से समस्त प्रकार के सूतिका रोग नष्ट हो जाते हैं। यह रस यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करने से नाना प्रकार के भयङ्कर रोगों को नष्ट कर देता है॥११३॥

अथ सूतिकारोगनाशनरसः—

स्वर्णतारघनभानुतीक्ष्णकं तेषु चैकमतिमात्रमारितम्।
सूतिकासकलरोगनाशनं रोगहारि विहितानुपानतः॥ ११४॥

स्वर्णभस्म, रजतभस्म, (चांदी की भस्म), अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, तीक्ष्ण-लौहभस्म, इन (उपर्युक्त स्वर्णादिभस्मों) में से शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक बनाई हुई किसी एक भस्म को लेकर उस के सेवन करने से सूतिका स्त्री के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ११४॥

अथ सौभाग्यशुण्ठी-(सूतिकामृतम्)

अञ्जलिद्वितये तोये कंसमात्रपयोन्विते।

तुलार्धशर्करां दत्त्वा गुडपाके कृते क्षिपेत् ॥ ११५ ॥
एलारिङ्गिणिकावेल्लव्योषजीरकदीप्यकान् ।
भृङ्गं लवङ्गं बोलं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ११६ ॥
मिषिः पञ्चपला धान्यं पलत्रयमितं तथा ।
शुण्ठीमष्टपलां सम्यग्विचूर्ण्य परिमिश्रयेत् ॥ ११७ ॥
एषा सौभाग्यशुण्ठीति शम्भुदेवेन कीर्तिता ।
सेविता हन्ति सूताया ज्वरं रोगमनेकधा ॥ ११८ ॥
प्लीहानं मलबन्धं च पाण्डुगुल्मारुचीस्तथा ।
कासश्वासक्रिमींनग्निमान्द्यादिकगदांस्तथा ॥
कायाग्निजननं ह्येतत्सूतिकामृतमुच्यते ॥ ११९ ॥

दो अञ्जली (१ शराव या ८ पल) भर जल तथा १ कंस भर (१ आढक) दुग्ध के अन्दर आधी तुला (५० पल) भर चीनी डाल कर गुड़ की तरह पाक करके अर्थात् अच्छी तरह से चाशनी बना लेवें। फिर इलायची का चूर्ण १ पल, रिङ्गिणी अर्थात् केवटी मोथा (कुछ लोग मुद्गपर्णी डालते हैं) का चूर्ण १ पल, वायविड़ङ्ग का चूर्ण १ पल व्योष अर्थात् त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) का चूर्ण १ पल, जीरे का चूर्ण १ पल, दीप्यक (अजवाईन) का चूर्ण १ पल, भृङ्गराज का चूर्ण १ पल, लवङ्ग का चूर्ण १ पल, बोल (गन्ध बोल बोलबद्ध, या बोलरस) का चूर्ण १ पल तथा सौंफ का चूर्ण ५ पल, धनिये का चूर्ण ३ पल तथा सोंठ का चूर्ण ८ पल भर लेकर सब को खरल में एकत्रित करके अच्छी तरह घोट कर उपर्युक्त चाशनी में मिलाकर कलच्छू से घोट कर शीशी में भर देवें। इसे सौभाग्यशुण्ठी कहते हैं। इस को श्रीशङ्कर भगवान् ने बनाई है। इस शुण्ठी पाक को यथाबल और अग्नि के अनुसार सेवन करने से सूतिका स्त्री का ज्वर तथा और अन्य वातिक व्याधियां भी नष्ट हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त यह सौभाग्यशुण्ठी प्लीहा, मलबन्ध, पाण्डुरोग, गुल्म, अरुचि, कास, श्वास, क्रमिरोग तथा अग्निमांद्य आदि सब रोगों को नष्ट कर देती है। यह सौभाग्य शुण्ठी शरीर की पाचक अग्नि को बढाती है तथा यह सूतिका के लिये अमृत ही के समान है ॥ ११५–११९ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कोरण्टकादिक्वाथः—

कोरण्टकं कुलत्थं च सर्वैरेभिः शृतं जलम्।
युक्तं शर्करया पीतं सूतिशूलज्वरापहम्॥ १२०॥

कोरण्टक अर्थात् पीले पुष्प वाली कटसरैया (झिण्टी) की जड़ और कुलत्थ इन दोनों को समभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करके चतुर्थांश रहने पर या सोलह गुने जल में क्वाथ करके अष्टमांश (औषध से द्विगुण) शेष रहने पर चूल्हे से उतार कर मन्दोष्ण रहते २ छानकर चीनी मिला के प्रतिदिन पीते रहने से सूतिका स्त्री के शूल और ज्वर को नष्ट कर देता है॥ १२०॥

पञ्चमूलक्वाथः—

लोहखण्डयुतं पञ्चमूलिकासाधितं जलम्।
नाशयेत्सूतिकारोगान्सवातान्विविधान्खलु॥ १२१॥

पञ्चमूल (बृहत्पञ्चमूल जैसे—बिल्व, श्योनाक, गम्भारी, पाटला, गणिकारिका) को १ पल भर लेकर अठगुने (८ पल) जल में क्वाथ करके चतुर्थांश (२ पल) शेष रहने पर अथवा सोलहगुने (१६ पल) जल में क्वाथ करके अष्टमांश (दो पल) शेष रहने पर उतार के छान लेवें। फिर उस क्वाथ में प्रतप्त किये हुए शुद्ध लौह को १ वार या सात वार बुझाकर फिर छान लेवें। इस प्रकार पञ्चमूल का क्वाथ बनाकर प्रतिदिन सेवन करने से सूतिका स्त्री के विविध प्रकार के वातिक उपद्रवों से युक्त बड़े २ रोग नष्ट हो जाते हैं॥ १२१॥

विमर्शः—इस प्रकार के योगों का अन्यत्र भी वर्णन मिलता है यथा-ध्मापयित्वाऽनले लौहं मुद्गयूषे निषेचयेत। पञ्चमूलस्य वा क्वाथे पिप्पलीसलिलेऽथवा। पीतं यूषादि तच्छीघ्रं सर्वसूतीरुजापहम्॥ इति रसरत्नाकरः।

अन्यच्च—पञ्चमूलस्य क्वाथं वा तप्तलोहेन सङ्गतम्।
सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वा तद्युतां सुराम्॥ इति योगरत्नाकरः।

भूनिम्बादितैलम्—

भूनिम्बनिम्बभद्राश्वगन्धसप्तच्छदत्वचा।
तैलं पचेत्तदभ्यङ्गात्सूतिकासर्वरोगनुत्॥ १२२॥

भूनिम्ब अर्थात् चिरायता, निम्ब की छाल या पञ्चाङ्ग, नागरमोथा, असगन्ध और सप्तपर्ण की छाल इन सब को बराबर लेकर जल के साथ पीस कर कल्क

बना लेवें। फिर इस कल्क में तिल तैल पकाकर उसके अभ्यङ्ग करने से सूतिका स्त्रियों के सब प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

विमर्शः—कहीं २ पर इस योग के पश्चात् निम्न पाठ अधिक मिलता है। यथा-तैलं लाक्षादिकं नाम सर्वामयविनाशनम्। चन्दनं सारिवा लोध्रं मृद्वीका शर्करान्वितम्। क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिण्यां ज्वरशान्तये। ह्रीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्यार्क वत्सादनी, मुस्तोशीरयवासपर्पटवृषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी। नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे। योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्राममेघूत्तमः। इति।

अथ योनिव्यापच्चिकित्सा—

तत्रादौ योनिशूलहरो निर्गुण्ड्यादिप्रयोगः—

निर्गुण्डीपत्रनिर्यासो गुडो जीर्णः सुरान्वितः।
सेवितस्तक्रभक्ताभ्यां योनिशूलविनाशनः ॥ १२३ ॥

निर्गुण्डी के पत्तों का निर्यास (स्वरस), पुराना गुड़ इन दोनों को समभाग लेकर सुरा (कुमार्यासव या द्राक्षासवादिक) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से तथा छाछ (मट्ठा) और भात का पथ्य करने से स्त्रियों का योनिशूल नष्ट हो जाता है ॥ १२३ ॥

अथ प्रस्रंसिन्यांकारलीकन्दप्रयोगः—

निर्गताऽपि विशेद्योनिः कारलीकन्दलेपिता ॥ १२४ ॥

करेले के कन्द (जड़) को जल में पीस कर बाहर निकली हुई (स्वस्थान-च्युत) योनि पर लेप करने से वह भीतर चली जाती है ॥ १२४ ॥

अथ शिथिलयोनो इन्द्रगोपप्रयोगः—

इन्द्रगोपाग्निलेपेन श्लथयोनिर्दृढा भवेत् ॥ १२५ ॥

इन्द्रगोप अर्थात् वीर बहूटी को घृत या जल के साथ पीस कर कल्क बना के उस के प्रलेप करने से शिथिल योनि दृढ हो जाती है ॥ १२५ ॥

अथ विवृतायांमाकन्दमूलादिलेपः—

माकन्दमूलकर्पूरमधुभिश्च जरत्स्त्रियः।
कुरुते संवृतां योनिं कन्यकाया इव ध्रुवम् ॥ १२६ ॥

माकन्द (आम्र वृक्ष) की जड़ की छाल, कपूर और शहद् इन को सम भाग लेकर पत्थर पर पीस के वृद्धा स्त्रिएं यदि अपनी योनि पर प्रलेप करें तो उन की विवृत योनि कन्याओं के समान संवृत अर्थात् दृढ़ हो जाती है ॥ १२६ ॥

अथ श्रीपर्णीतैलम्—

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम्।
तत्तैलं तुलिकेनैव स्तनयोः परिदापयेत्॥ १२७॥
पतितावुच्छ्रितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ।
गजकुम्भसमाकारावुन्नतौ परिमण्डलौ॥ १२८॥

श्रीपर्णी (गम्भारी) की छाल का स्वरस चार सेर तथा उसी की छाल का कल्क १ पाव भर और तिल का तैल एक सेर लेकर कड़ाही में डाल कर तैल पाक विधि से तैल सिद्ध कर के शीतल होने पर छान के शीशी में भर देवें। फिर रुई के फावे को इस तैल में भींगो कर स्त्रियों के शिथिल स्तनों पर प्रतिदिन लगाने से वे शिथिल स्तन लटकते हुए ऊंचे उठ जाते हैं तथा हाथी के गण्डस्थल के समान सुन्दर, कठिन और गोलाकार हो जाते हैं॥ १२७–१२८॥

अथ बालरोगः—

अथ माहेश्वरधूपः—

श्रीवेष्टदारुबाह्लीकमुस्ताकटुकरोहिणी।
सर्षपा निम्बपत्राणि मदनस्य फलं वचा॥ १२९॥
बृहत्यौ सर्पनिर्मोककार्पासास्थियवास्तुषाः।
गोशृङ्गं खररोमाणि बर्हिपिच्छं बिडालविट्॥ १३०॥
छागरोमघृतं चेति बस्तमूत्रेण भावितम्।
एष माहेश्वरो धूपः सर्वग्रहनिवारणः॥ १३१॥

श्रीवेष्टक (लोबान या नवनीत खोटो), देवदारु, हीङ्ग, मोथा, कुटकी, सरसों, नीम के पत्र, मैनफल, वचा, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सांप की कांचली, कपास के बीज (विनौले), जौ या उनकी भूसी, गाय के शृङ्ग के ऊपरी पर्त (आवरण), गदहे के बाल, मयूर की पुच्छ का सचन्द्र अर्थात् चमकीला भाग (मोरपंख), बिलाव की विष्ठा, बकरी के बाल तथा बकरी का घृत इन सब को समभाग लेकर लोहे की ओंखली में कूट पीस कर चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को वस्त मूत्र अर्थात् बकरे के मूत्र से भावित कर के घोट कर सुखा के शीशी में भर कर बन्द कर के सुरक्षित रख देवें। इस को माहेश्वर धूप कहते हैं। इस धूप की बालकों के शयन के घर में प्रतिदिन सुबह और सन्ध्या के समय धूनी लगाने से सर्वप्रकार की ग्रहबाधाएं दूर ही रहती हैं॥ १२९–१३१॥

अथ विजयधूपः—

शैलेयगुग्गुलुरसैः सपुरप्रचण्डद्रव्यापहृत्सरसकुन्दुरुभिः सकुष्ठैः।
सध्यामकैः सुरभिगन्धरसैश्च धूपः सौभाग्यबुद्धिजयकृद्विजयो विवादे १३२
देवासुरोरगपिशाचपितृग्रहेषु गन्धर्वयक्षपिशिताशिषु च ग्रहेषु।
जीर्णज्वरेषु विहितश्च विषातुरेषु धूपोयमाजिविजयार्तिषु पार्थिवानाम् १३३

शैलेय (भूरि छरिला), शुद्ध गूगल, शिलारस, नागरमोथा, प्रचण्ड अर्थात् सफेद कनेर की छाल, लाख (लाह), अपहृत् अर्थात् चोरक (ग्रन्थिपर्ण), सरस अर्थात् काष्ठागुरु, कुन्दरु की जड़, कूठ, घमासा, अथवा गन्धतृण, सुरभि (सर्जरस=राल) तथा गन्धरस (गन्धबोल) इन सबको समान लेकर एकत्र कूट पीसकर धूप बना लेवें। इसको विजय धूप कहते हैं। इस धूप को बालकों के शयन गृह के भीतर तथा आस पास दिन में दो वार (प्रातः सायं) लगाने से बालकों की सुन्दरता तथा सद् बुद्धि की वृद्धि होती है। इस धूप की वादविवाद तथा युद्ध के स्थलपर धूनी देने से विजय होती है अथवा इस धूप से धूपित बालक वादविवाद में विजय प्राप्त करता है। इस धूप को रोगियों के समीप धूनी लगाने से देव, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष तथा राक्षस आदि से समस्त उत्पन्न उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। यह धूप राजाओं के लिये युद्धाङ्गण में विजय कराने में भी श्रेष्ठ है ॥ १३२-१३३ ॥

अथ ग्रहनाशिनीगुटिका—

राजीकरञ्जपुन्नाटशिरीषार्कनिशाद्वयम्।
प्रियङ्गुत्रिफलादारुहिङ्गुव्योषकुचन्दनम् ॥ १३४ ॥
मञ्जिष्ठोग्राजमूत्रं च गुटिका ग्रहनाशिनी।
पाननस्याञ्जनालेपस्नानोद्वर्तनधूपनात् ॥ १३५ ॥

राई, करञ्ज के बीज की गिरी, पुन्नाट (पनवाड़=चक्रमर्द), सहजन की छाल या सिरस के बीज, आक की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, त्रिफला (हरड़, बहेड़े, आंवले), देवदारू, हीङ्ग, व्योष (सोंठ, मरिच, पीपल), लाल चन्दन, मंजीठ तथा वचा इन सबको समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्ण को बकरी के मूत्र में भावित कर के घोटकर तीन २ माशे भर की गोलियां बनाकर शीशी में भर देवें। इस गुटिका के जल के साथ घोटकर पीने,

सूंघने, आंखों में आंजने, शरीर पर लेप करने, पानी में डालकर स्नान करने, उबटन करने या धूनी देने से समस्त ग्रहबाधाएं नष्ट हो जाती हैं ॥१३४-१३५॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कणास्वर्णप्रयोगः—

गर्भनिर्गतबालस्य कणास्वर्णं प्रदापयेत ॥ १३६ ॥

पिप्पली का चूर्ण ३ रत्ती तथा स्वर्ण की भस्म ¼ रत्ती लेकर दोनों को शहद् में मिलाकर गर्भ से निकले हुए बालक को चटा देवें । प्रथम उत्पन्न हुए बालक के मुखादि अङ्गों की शुद्धि करने के पश्चात् उक्त औषध खिलाना चाहिए ॥ १३६ ॥

सद्योजातबालस्य संज्ञाजननोपायः—

पाषाणद्वितयं युञ्ज्यात्कांस्यभाजनमुच्चकैः ।
तेन त्रस्तः ससंज्ञः स्याद्योनिनिर्गमपीडितः ॥ १३७ ॥

कष्ट पूर्वक प्रसव होने से कभी २ बालक की चेतना शक्ति सुप्त रहती है । ऐसी दशा में बालक की अचेतनता को दूर करने के लिये दो पत्थर लेकर उन्हें परस्पर जोर २ से बजावें अथवा कांसे के बर्तन को किसी (लकड़ी) डण्डे या पत्थर से जोर २ से बजावें । इस प्रकार की आवाज से बालक डर कर सचेतन हो जाता है ॥ १३७ ॥

अथ सद्योजातबालस्य ज्वरादिनिवारणोपायः—

सुखोष्णैः काञ्जिकैर्बालं सम्प्रोक्ष्य द्वित्रिवारतः ।
देयः शिरसि बालस्य घृतपिण्डो ज्वरापहः ।
शिरोगतविकारघ्नो मुख्यो रत्नाकरस्तथा ॥ १३८ ॥

सद्योजात बालक के शरीर को मन्दोष्ण काञ्जी से दो चार वार धोना चाहिए तथा शुद्धवस्त्र या तोलिए से शरीर को पोंछ कर उसके मस्तिष्क पर घृत का पिण्ड रख कर धीरे २ मलना चाहिए । इस प्रकार का उपचार सद्योजात बालक के ज्वर और शिर के विकार को दूर करता है तथा उससे बालक की शीतादि से रक्षा भी होती ॥ १३८ ॥

अथ पित्तज्वरे रोहिणीक्षीरम्—

भक्षणं रोहिणीकल्के (१) सिद्धं पानानुलेपतः ।

---

(१) द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरात्तोयं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः । इति ।

ज्वरं पित्तोत्तरं हन्ति मुस्ताक्वाथ इव ध्रुवम् ॥ १३९ ॥

रोहिणी (कटुकी) को जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क का क्वाथ बनाकर उस क्वाथ में यवागू बनाकर भक्षण करने से पित्तज्वर नष्ट होता है अथवा रोहिणी कल्क में क्षीरपाक विधि से सिद्ध किए हुए दुग्ध के पीने से भी पित्तज्वर नष्ट हो जाता है। अथवा केवल रोहिणीकल्क की शरीर पर मालिश (अभ्यङ्ग) करने से पित्तप्रधान ज्वर उतर जाता है जिस तरह मोथे के क्वाथ के पीने से पित्तज्वर दूर होता है ॥ १३९ ॥

अथ पित्तज्वरे अश्वत्थक्षीरम्—

अश्वत्थपल्लवैश्चाम्भः क्षीरं पक्वं निषेवितम् ।
पित्तजातं ज्वरं तीव्रं बालानां हन्ति निश्चितम् ॥ १४० ॥

पीपल के पत्तों को अठगुने जलमें उबाल कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान के इस पानी को पीलाने से बालकों का पित्तज्वर नष्ट हो जाता है। अथवा उसी पानी में दुग्ध को पकाकर दुग्धमात्र शेष रहने पर उसको पिलाने से बालकों का पित्तज्वर दूर हो जाता है ॥ १४० ॥

अथ गन्धोत्पलजटादिकल्कः—

गन्धोत्पलजटा पिष्टा कटुकी नाशयेज्ज्वरम् ॥ १४१ ॥

गन्धोत्पल अर्थात् श्वेतकमल, जटामांसी और कटुकी इन तीनों को समभाग लेकर क्वाथ बना के पिलाने से बालकों का ज्वर दूर हो जाता है ॥ १४१ ॥

अथ सहदेव्यादिचूर्णम्—

सहदेवीकणाभृङ्गक्षौद्रं लीढं हरेच्छिशोः ।
वमिकासज्वरव्याधीन्क्षौद्रेणातिविषा तथा ॥ १४२ ॥

सहदेवी (पीतपुष्पवाली बला), पीपल और भृङ्गराज इन तीनों को समभाग लेकर खरल या ओंखली में कूट पीसकर कपड़ छान करके चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण में से ३ रत्तीभर चूर्ण लेकर मधु के साथ अथवा अतीस के चूर्ण और शहद के साथ सेवन करने से बालकों के वमन, कास और ज्वरादिक व्याधियां नष्ट हो जाती है ॥ १४२ ॥

अथ न्यग्रोधादि ाथः—

न्यग्रोधजम्ब्वाम्रशिरीषकाणां क्राथो रसो वा नवपल्लवानाम् ।
पित्तातिसारज्वरवान्तिमूर्च्छातृष्णां निहन्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ १४३॥

न्यग्रोध (बड़), जामून, आम और शिरीष इन तीनों की बराबर २ छाल लेकर उस का क्वाथ बना कर सेवन करने से अथवा इन तीनों वृक्षों के नवीन और कोमल पत्तों के स्वरस को शहद् के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करने से बालकों के पित्तजन्य अतीसार, ज्वर, वमन, मूर्च्छा और तृष्णा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४३ ॥

अथ रक्तातिसारहरचूर्णम्—

मध्वम्बुशृङ्गीपाठाब्दं रक्तातिसारहच्छिशोः ॥ १४४ ॥

मुलेठी, अम्बु अर्थात् नेत्र वाला, काकड़ा सींगी, पाठा और नागर मोथा इन सब को बराबर २ लेकर ओंखली (इमाम दस्ता) में कूट पीस के महीन चूर्ण बना कर वस्त्र से छान के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से १ माशे भर चूर्ण को मधु तथा चावलों के धोवन के साथ सेवन करने से बालकों का रक्तातीसार नष्ट हो जाता है ॥ १४४ ॥

अथ सक्षीरबोलप्रयोगः—

क्षीरं सबोलं कण्ठोरःशिरः कफहरं शिशोः ॥ १४५ ॥

एक रत्ती भर या दो रत्ती भर गन्धबोल को दुग्ध के अन्दर घोट कर सेवन करने से बालकों के कण्ठ, छाती (वक्ष) और शिर के कफ को नष्ट करता है ॥ १४५ ॥

मूत्रविड्ग्रहहरं—

मूत्रविड्ग्रहहरं मधुकादि—

मधुकं मरिचं पिष्टं गोजलैः परिसेवितम् ।
विनाशयति वेगेन बालानां मूत्रविड्ग्रहम् ॥ १४६ ॥

महुए की छाल या पुष्प अथवा मुलेठी और मरिच इन दोनों को एक २ माशे भर लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर बालकों को सेवन कराने से उनका रुका हुआ मूत्र तथा मल शरीर से उत्सर्गित होने लग जाता है ॥ १४६ ॥

अथ यष्ट्यादिघृतम्—

यष्टीलोध्रकणागन्धबालाशाल्मलिसारिवा ।
सुगन्धा माक्षिकं चेति सिद्धं सर्पिर्निषेवितम् ॥
शुष्यद्गात्रस्य बालस्य बृंहणं बलकारि तत् ॥ १४७ ॥

मुलेठी, पठाणीलोध, पिप्पली, सुगन्धबाला, सेमल की छाल, सारिवा (अनन्तमूल), सुगन्धा (स्पृक्का) तथा शहद इन्हें समभाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से चतुर्गुण घृत तथा स्नेह से चतुर्गुण जल लेकर सब को कड़ाही में डालकर पकावें। जब घृतमात्र शेष रह जाय तब चूल्हे से उतार कर छान के चोड़े मुख वाली शीशी में भर देवें। इस घृत के सेवन करने से सूखते हुए बालक का शरीर मोटा और मजबूत हो जाता हैं। यह घृत शुष्क और दुर्बल बालकों के लिये अत्यन्त हितकर है ॥ १४७ ॥

शङ्खनाभ्यादिवर्त्तिः—

शङ्खनाभिकणापथ्यारसाञ्जनविनिर्मिता।
वर्तिर्निहन्ति मधुना बालनेत्राखिलामयान् ॥ १४८ ॥

शङ्ख की नाभि की भस्म, पिप्पली का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण और रसाञ्जन इन सबको समभाग लेकर खरल में डाल के पानी के साथ पीसकर बत्ती बनाकर सुखा लेवें। इस बत्ती को मधु में घिस कर बालकों के नेत्रों में प्रतिदिन अञ्जन की तरह लगाने से उनके नेत्रों के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४८ ॥

अथ अश्वगन्धाघृतम्—

क्षीरेऽश्वगन्धया ताम्रसूताब्दैः सह साधितम्।
घृतं पुष्टिकरं वर्ण्यं बलकृत्सुखकारि च ॥ १४९ ॥

असगन्ध का चूर्ण, ताम्र की भस्म, पारद की भस्म (रससिन्दूर) और नागरमोथा इन चारों को समभाग लेकर पानी में पीस कर कल्क बना लेवें, तथा कल्क से चतुर्गुण घृत तथा घृत से चतुर्गुण दुग्ध और दुग्ध से चतुर्गुण जल डालकर घृत को पका लेवें। यह घृत बालकों के कृश शरीर को पुष्ट करता है, वर्ण बढाता है तथा बलदायक और सुखकारी है ॥ १४९ ॥

अथ तालुकण्टलक्षणम्—

श्लेष्माहृत्तालुमांसस्थः करोति कुपितः शिशोः।
तालुकण्टकमेतेन तालुस्थाने च निम्नता ॥ १५० ॥
तृष्णा तालु विपाकश्च स्तन्यद्वेषश्च विड्ग्रहः।
भ्रमास्यशोषकण्डूतिर्ग्रीवामूर्धगता वमिः ॥
अक्षिरोगादिकं चापि—" ॥ १५१ ॥

बालक के हृदय और तालु के मांस के अन्दर रहने वाले कफ के दूषित हो जाने से तालुकण्टकरोग उत्पन्न होता है। इस रोग के उत्पन्न होने पर निम्न लक्षण होते हैं। तालु प्रदेश में गड्ढा सा बन जाता है। तालुकण्टकरोग से पीड़ित बालक को अत्यन्त प्यास लगती है, उस के तालु में शोथ पैदा होकर पाक हो जाता है, स्तनपान करने में बालक की रुचि नहीं होती है, मल का अवरोध रहता है, चक्कर आना, मुख का सूखना, गर्दन और माथे में खुजली चलना, वमन होना तथा आंखों के अन्दर रोग आदि लक्षण पैदा होते हैं ॥१५०-१५१॥

अथ तालुकण्टक चिकित्सा—

"—तत्र चोन्नीय तालुकम् ॥
प्रतिसार्यं यवक्षारक्षौद्राभ्यामतियत्नतः ॥ १५२ ॥
यद्वा विश्वा कणा सिन्धुगोमयोत्थरसैस्तथा ।
पथ्याकुष्ठवचाकल्कं स्तन्येन मधुना सह ॥
पीतं निहन्ति वेगेन बालानां तालुकण्टकम् ॥ १५३ ॥

तालुकण्टक रोगी की अवस्था में बालक रोगी के मुख को खोलकर उसके ऊपरी भाग को ऊंचा उठाकर तालु प्रदेश के भीतर मांसल भागपर शहद में मिले हुए यवक्षार का प्रतिसारण कर दें अर्थात् लगाकर धीरे २ अङ्गुली से रगड़ें। अथवा सोंठ, पीपल, सेंधानिमक, हरड़, कूठ और वचा इनको समभाग लेकर महीन कूट पीस के गोबर के रसके साथ पीसकर कल्क बना लेवें। इस कल्क को वस्त्र के भीतर पोटली रूप में बांध कर दोनों हाथों से दबाकर रस निकाल लेवें। फिर इस रस में माता का दुग्ध और शहद मिलाकर बालक को पिला देवें। इस प्रकार इस योग के सेवन करने से बालकों का तालुकण्टक रोग दूर हो जाता है ॥ १५२-१५३ ॥

अथ गुदकीटस्य निदानलक्षणे—

प्रस्वेदान्मललेपाद्वा रक्तश्लेष्मभवो गुदे ।
गुदकीटो भवेद्रोगस्तीव्रव्रणसमन्वितः ॥ १५४ ॥

माता या धाई की लापरवाही से बालकों की गुदा में पसीने और मलके लगे रहने से उस स्थान के रक्त तथा कफ इन दोनों के दूषित हो जाने से गुदकीट नामक रोग पैदा हो जाता है अर्थात् गुदा के दूषित रहने से वहां कीड़े

पड़ जाते हैं और वे कीड़े उस बालक के गुदनलिकाद्वार के बहिर्भाग को खाते रहते हैं जिससे वहां तीव्र व्रण बन जाता है ॥ १५४ ॥

अथ गुदकीटचिकित्सा—

शृतशीताम्बुशैलेयलुक चूर्णं मधूत्थकम् ।
तेनापानव्रणं सम्यग्लेपयेद्भिषगुत्तमः ॥ १५५ ॥
त्रिफलाबदरीपत्रक्वाथेन परिषेचयेत् ।
रागकण्डूमतो रक्तं जलूकाभिः समन्वितम् ॥
पित्तव्रणचिकित्सा च सकलात्र प्रशस्यते ॥ १५६ ॥

शैलेय (भूरि छरिले) और चौलाई या घृतकुमारीसार को समान २ लेकर शृतशीतजल के साथ पीस के उसमें शहद मिलाकर अपान अर्थात् गुदा के व्रणों पर लेप कर के पट्टी बांध देवें तथा दूसरे दिन त्रिफला और बेर के पत्तों का क्वाथ बनाकर उससे गुदा के व्रण की पट्टी खोलकर प्रलेप हटा के धीरे२ गुदव्रण का प्रक्षालन करना चाहिए । बाद में उपर्युक्त औषध लगाकर पट्टी बन्धन कर देवें । कुछदिनों तक इस तरह के उपचार के करने से भी विशेष लाभ न हो और गुदा के आसपास लालिमा तथा खुजली बनी रहे तब जलौकाओं को लगवा कर वहां का अशुद्ध रक्त निकला देवें । गुदकीट रोग में पित्तव्रण की समग्र चिकित्सा भी विशेष फलप्रद होती है ॥ १५५–१५६ ॥

अथ गुदपाकचिकित्सा—

गुदपाके तु कर्तव्या पित्तव्रणहरा क्रिया ।
पानप्रलेपयोः शस्तं विशेषेण रसाञ्जनम् ॥ १५७ ॥
अजादुग्धेन सम्मिश्र्य जीरकाञ्जनचूर्णकैः ।
जातीपत्ररसोपेतैः पूर्वप्रोक्तरसैरपि ॥ १५८ ॥

बालकों की गुदा के पक जाने पर पित्त व्रण को नष्ट करने वाली चिकित्सा को करने से लाभ होता है तथा विशेष कर के बकरी के दुग्ध में घोटे हुए रसाञ्जन के पीने से तथा गुदा पर लगाने से लाभ होता है । अथवा जीरे और रसाञ्जन को चमेली के पत्तों के स्वरस या पूर्वोक्त त्रिफला बदरी पत्रादि क्वाथ के साथ पीस कर पीने से तथा गुदा पर लेप करने से लाभ होता है ॥ १५७–१५८ ॥

अथ मुखपाकचिकित्सा—

मुखपाके मुखं लिम्पेद्बोधित्वग्घृतसारघैः ।
जातीपत्राऽभयायष्टीमधुदार्व्या च लेपयेत् ॥ १५९ ॥

वालकों के मुख के भीतर जिह्वा, दांतों के मसूड़े, गले और ताल्वादि स्थानों में पाक हो जाय तथा छाले पड़ जावें तब उनपर अश्वत्थ (पीपल) की छाल (अन्तर छाल) के चूर्ण को घृत तथा शहद् में मिलाकर लेप करने से आराम हो जाता है । अथवा चमेली के पत्र, हरड़ मुलेठी और दारु हलदी इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर के घृत तथा मधु के साथ प्रलेप करने से भी मुखपाक तथा छाले आदि ठीक हो जाते हैं ॥ १५९ ॥

अथ नाभिपाकचिकित्सा—

नाभिपाके प्रलेप्तव्यं सिक्थं तैलेन भूरिशः ।
रजनीयष्टिकालोध्रप्रियङ्गूणां च कल्कतः ॥
चूर्णैरेषां सतैलेन नाभिपाकं शमं नयेत् ॥ १६० ॥

बालकों के नाभि प्रदेश में उत्पन्न हुए पाक (शोथ) पर तैल के साथ पकाये हुए मोम को गरम कर के प्रलेप करना चाहिए । अथवा हलदी, मुलैठी, पठानी लोध और प्रियङ्गु इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें । फिर इस कल्क से यथाविधि तैल पकाकर उस तैल का मर्दन करना चाहिए, अथवा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को तैल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें । फिर उस कल्क को बालकों की पकी हुई या शोथयुक्त नाभि पर लगा देवें । इस तरह इनमें से किसी एक उपचार के यथाविधि करने से बालकों का नाभिपाक दूर हो जाता है ॥ १६० ॥

अथ कुण्डलचिकित्सा—

अपुष्पाश्वत्थपञ्चाङ्गक्वाथेनापि च कल्कतः ।
सिद्धं तैलप्रलेपेन कुण्डलव्याधिनाशनम् ॥ १६१ ॥

पुष्पों के अतिरिक्त पीपल के पञ्चाङ्ग (मूल, जड़, पत्र, फल) का क्वाथ चार सेर तथा पीपल के चारों वस्तुओं का कल्क एक पाव तथा तिलतैल एक सेर भर लेकर लोहे की कड़ाही में सबको डालकर चूल्हे या भट्टीपर चढ़ा के मन्द २ अग्नि से पकावें । जब तैल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को चूल्हे से उतार

कर स्वाङ्गशीतल होने पर तैल को छान के शीशी में भर देवें। कल्क को भी दोनों हाथों से दवाकर तैल निकाल के फेंक देवें। इस तैल का नाभि के नीचे वस्तिप्रदेश पर अभ्यङ्ग करने से कुण्डलव्याधि नष्ट हो जाती है ॥ १६१ ॥

अथ बालपञ्चामृतम्—

हिङ्गुशुण्ठीकणापथ्यामिशीपञ्चामृतं मतम् ।
सर्वबालामयान्हन्ति पाचनं दीपनं परम् ॥ १६२ ॥

हीङ्ग, सोंठ, पिप्पली, हरड़ और सोंफ ये पांचो द्रव्य बालकों के लिये पञ्चामृत के समान हैं। इन पांचों को बराबर २ लेकर लोहे की ओंखली में कूट खांड के चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को शहद या माता के दुग्ध के साथ बालकों को प्रतिदिन चटाने से उन के सब रोग नष्ट हो जाते हैं। यह चूर्ण अत्यन्त पाचन तथा दीपन है ॥ १६२ ॥

अथ तिक्ताद्यं घृतम्—

तिक्ताग्निव्योषमालूरपथ्यारुचकहिङ्गुलम् ।
तुल्यदुग्धं घृतं पक्वं गुल्मानाहविलम्बिकाः ।
कासं श्वासं गुदभ्रंशं विनिहन्ति न संशयः ॥ १६३ ॥

कुटकी, चित्रक, व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, मालूर अर्थात् पके हुए विल्वफल की सूखी गूदी, हरड़ रुचक (सौवर्चल लवण) और हीङ्ग इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चतुर्गुण दुग्ध तथा दुग्ध के बराबर घृत और घृत से चतुर्गुण जल लेकर सब को कलईदार कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब समस्त जलीयांश नष्ट हो जाय तब सिद्ध हुए घृत को चूल्हे से उतार कर छान के चोड़े मुख वाले काच के पात्र या मृतबान में भर कर रख दें। यह घृत बालकों के गुल्म, आनाह, विलम्बिका, कास, श्वास और गुदभ्रंश आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १६३ ॥

अथ राजीकुष्ठादिलेपः—

राजीकुष्ठनिशागेहधूमवत्सकतक्रतः ।
लेपो विचर्चिकां सिध्म हन्ति पामां च वेगतः ॥ १६४ ॥

राई, कूठ, हरिद्रा, रसोई घर का धुंआ और कूडे की छाल इन सबको सम भाग लेकर ओंखली में कूट पीसकर चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्ण को गाय के

मट्ठे के साथ पीसकर लेप करने से विचर्चिका, सिध्म और पामा आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १६४ ॥

अथ छिन्नातैलम्—

छिन्नाफणिज्झहंसाङ्घ्रिभानुपत्ररसैः सह।
सस्तन्यं साधितं तैलं लिप्तं सर्वग्रहार्तिजित् ॥ १६५ ॥

गिलोय, तुलसी, हंसपदी और आक के पत्र इन सबका (दुग्ध से चतुर्गुण) स्वरस तथा माता का या गाय का दुग्ध (तैल से चतुर्गुण) और तैल इन सबको लोहे की कड़ाही में डालकर मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब कड़ाही को उतारकर तैल को छान के काच की शीशी में भर देवें। इस तैल की बालकों के शरीर पर प्रतिदिन मालिश करने से सर्व प्रकार की ग्रह पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ १६५ ॥

अथ स्फूर्जकादितैलम्—

स्फूर्जकं हपुषापुष्पं हंसपादिकुरण्टकम्।
करञ्जार्कदलस्फूर्जश्वेतपुष्पं च कल्कितम् ॥
तेन संसाधितं तैलं तेनाऽभ्यङ्गं चरेच्छिशोः ॥ १६६ ॥

तिन्दुक वृक्ष की जड़, हाऊबेर के पुष्प, हंसपादी, कुरण्टक अर्थात् पीले फूल वाली कटसरैया, करञ्ज की जड़, आक के पत्ते और सफेद पुष्प वाली कनेर की जड़ इन सबको समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीसकर कल्क बनालेवें। फिर इस कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल से चतुर्गुण जल लेकर सबको लोहे की कड़ाही में डालकर तैल पका लेवें। इस तैल की बालकों के शरीर पर प्रतिदिन मालिश करने से सर्व प्रकार की ग्रह बाधाएं दूर हो जाती हैं ॥ १६६ ॥

अथ निम्बादिघृतं क्षीरञ्च—

निम्बाश्वत्थपलाशानां बिल्वकिंशुकयोर्दलैः।
सिद्धं सर्पिस्तथा तैलं पानाद्बालग्रहाञ्जयेत् ॥ १६७ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये वन्ध्यागर्भिणीसूतिकाबालरोगचिकित्सा नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

नीम, पीपल, पलाश (ढाक), बिल्व और सेमल के कोमल पत्तों को लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। इस कल्क से चतुर्गुण घृत या तैल तथा स्नेह से चतुर्गुण जल लेकर घृत या तैल को सिद्ध कर के शीशी में भर देवें। इस तैल या घृत के पान करने से बालकों की ग्रह बाधाएं दूर हो जाती हैं ॥ १६७ ॥

अथ बालरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

यत्पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु। तत्तद्विधेयमौचित्याद् बालानां तेषु जानता ॥१॥
पूर्वं पथ्यमपथ्यञ्च मन्दाग्नौ यत्प्रकीर्तितम्। औचित्याद्योजयेज्जाते बालानां पारिगर्भिके।२॥
आगन्तून्मादवातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम्। औचित्याद्योजयेत्तत्र बालेषु ग्रहरोगिषु।॥३॥

इति पथ्यापथ्यविवेकः।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकायां वन्ध्यागर्भिणी-सूतिकाबालरोग-चिकित्सानाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः।

अथोन्मादरोगः—

तत्रादावुन्मादस्य निदानसम्प्राप्ती—

आधिव्याधिकृशस्य दुर्बलतनोराहारतो वा भयात्।
पूज्यातिक्रमणाद्विषादुपविषाद्दैवादसामर्थ्यतः।
वैषम्यादपि कर्मणां हृदि मलाद्बुद्धेर्विधायोल्वणं
कालुष्यं हतसौख्यदुःखमथनादुन्मादमातन्वते ॥ १ ॥

आधि (मनो व्यथा) और व्याधि (ज्वरादिरोगजन्य शरीर व्यथा) के कारण शरीर की धातुओं के क्षीण हो जाने से दुर्बल हुए पुरुष के विरुद्धाहार करने से, भय से, पूज्य पुरुषों की पूजा के व्यतिक्रम से, विष तथा उपविषों के सेवन करने से, दैवयोग से, शरीर की असमर्थता से तथा पञ्चकर्म की विषमता आदि कारणों से कुपित हुए मल अर्थात् वात पित्तादिक दोष हृदय में स्थित होकर

बुद्धि को अत्यन्त कलुषित कर के सुख और दुःख के विनाशक उन्माद रोग को उत्पन्न करते हैं। अर्थात् उन्माद के कारण पुरुष संज्ञा शून्य रहने से सुख दुःखों को एक समान मान कर पागल के सदृश हो जाता है॥ १॥

अथोन्मादलक्षणम्—

सञ्जल्पको धावति हन्ति चैतदुन्मादवातस्य च लक्ष्म बोध्यम्॥ २॥

उन्माद रोग से पीड़ित पुरुष अत्यन्त असम्बद्ध प्रलाप करता है तथा इधर उधर दौड़ता फिरता है तथा लकड़ी और पत्थर या ढेलों से अपने को तथा दूसरों को भी मारता है ये सब उन्माद वात के लक्षण हैं॥ २॥

अथ उन्मादचिकित्सा।

अथ रक्षोघ्नधूपः—

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतक-
त्वङ्मांसीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः।
नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नः परम्॥ ३॥

कपास के बीज, मोर की पुच्छ, बड़ी कटेरी, शिवनिर्माल्य अर्थात् शिवजी के चढ़ाये हुए बिल्व पत्र, माला और पुष्पादिक, पिण्डीतक (मैन फल), त्वग् (तगर या खस), जटामांसी, अडूसा, दंशविट् अर्थात् बिड़ाल (बिलाव) की विष्ठा, जौ के तुष, वचा, गदहे के बाल, सांप की काञ्चली, हाथी के दांत, गाय के सींग, हींग और मरिच इन सब को समभाग लेकर खरल में कूट कर धूप बना लेवें। इस धूप की बालक के शयन गृह में धूनी देने से स्कन्दग्रह, उन्माद, पिशाच, राक्षस, असुर और दैव आदि का आवेश तथा समस्त ग्रहपीड़ाएं दूर हो जाती हैं। इस धूप को प्रतिदिन धूनी लगानी चाहिए॥ ३॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ अर्कमूर्त्तिरस्य प्रयोगविधिः—

अत्रार्कमूर्त्याख्यरसस्य वल्लं धत्तूरबीजेन समं प्रदद्यात्।
मरीचचूर्णेन घृतेन वापि पथ्यं च गुर्वन्नमिह प्रशस्तम्॥ ४॥
शुष्कं च शाकं परिवर्जयीत रूक्षं कषायं बहुशीतलं च।
निम्बस्य तैलेन विमर्दयेत कलेवरं शाम्यति तेन रोगः॥५॥

उन्माद रोग में १ वल्ल (३ रत्ती) भर अर्कमूर्त्ति रस को शुद्ध धत्तूरबीजचूर्ण अथवा मरिचचूर्ण और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करते समय पथ्य में घृतादि से संस्कृत किये हुए गुरु पदार्थों का सेवन करना प्रशस्त है। इस रस के सेवन करते समय शुष्क पदार्थ तथा शुष्क शाक, रुक्षपदार्थ, कषैले पदार्थ और अत्यन्त शीतल पदार्थों का सेवन करना वर्जित है। विशेष कर नीम के पञ्चाङ्ग के कल्क में सिद्ध किये हुए तैल से शरीर की मालिश करने से इस रोग के नाश करने में विशेष सहायता होती है ॥ ४–५ ॥

अथ निर्गुण्डिकादितैलम्—

निर्गुण्डिकोन्मत्तकतुम्बिनीनां रसैस्तु तैलं परिपाचयीत ॥
कलेवरं तेन विलेपयेत मासार्धतः शान्तिमुपैति रोगः ॥६॥

निर्गुण्डी के पत्ते तथा जड़, धत्तूरे की जड़ और कड़वी तुम्बी इनका स्वरस तैल से चौगुना लेकर उससे तैल पाक करें। जब तैल मात्र शेष रह जाय तब उसे छानकर शीतल करके शीशी में भर देवें। इस तैल से प्रतिदिन उन्मादरोगी के शरीर की मालिश करनी चाहिए। इस तरह आधे मास तक मालिश करने से यह रोग उन्माद रोग को नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

अथापस्मारः—

तत्रादावपस्मारसम्प्राप्तिलक्षणे—

क्रुद्धैर्धातुभिराहते च मनसि प्राणी तमः संविश-
न्दन्तान्खादति फेनमुद्गिरति दोः पादौ क्षिपन्मूढधीः ।
पश्यन् रूपमसत्ततो निपतति प्रायः करोति क्रिया
बीभत्सा स्वयमेव शाम्यति गते वेगे त्वपस्माररुक् ॥ ७ ॥

शरीर के वातादिक धातुओं(१)के प्रकुपित या दूषित हो जाने से अथवा रस रक्तादि धातुओं के दूषित हो जाने से तथा अचानक स्त्री, पुत्र और धनादिक प्रिय वस्तुओं के विनाश के कारण चित्त के आहत (दुःखित या ताडित) हो जाने से पुरुष भ्रान्त बुद्धि होकर तमोगुण में अधिक प्रविष्ट होता हुआ दांतों को कटकटाने लगता है, फेन का उद्गिरण करता है, हाथ और पैरों को इधर उधर पटकता है तथा फिर बड़े २ बीभत्स रूपों को देखता हुआ पृथिवी पर लकड़ी के समान निश्चेष्ट

(१) धारणाद्धातवः, दूषणाद्दोषाः, मलिनीकरणान्मला इति चरकः ।

होकर यकायक गिर पड़ता है तथा कुछ देर बाद अनेक बीभत्स चेष्टाओंको करता रहता है। इस तरह कुछ समय के पश्चात् दोरे के चले जाने पर वह अपने आप अच्छा हो जाता है। इस तरह की व्याधि को अपस्मार कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ अपस्मारचिकित्सा—

अथ अपस्मारनाशनरसः—

रसगन्धशिलातुत्थकान्तहेमाग्निफेनकम्।
रजनी तेजनीबीजं कर्षमात्रं पृथक् पृथक ॥ ८ ॥
निम्बुद्रावार्द्रं तेनान्तर्लिप्तां ताम्रपलोन्मिताम्।
पात्रीं न्युब्जां सुभाण्डान्तां रुद्ध्वा खर्परिकां धृताम् ॥ ९ ॥
भस्मनाऽऽपूर्य भाण्डान्तर्धृत्वाऽधो द्विनिशं पचेत्।
स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ रसोऽपस्मारनाशनः ॥ १० ॥
वल्लमस्योदये दद्याद्व्योषविडङ्गयुक्।
अनुदेयमजामूत्रं ततोऽर्धप्रहरे गते ॥ ११ ॥
सार्षपे षाडशपले तैले तत्कलितं पचेत्।
नस्यं तैलेन तेनास्य दद्यात्सव्योषकेण तु ॥ १२ ॥

शुद्ध पारद १ कर्ष, शुद्ध गन्धक १ कर्ष, शुद्ध मनः शिला १ कष,शुद्ध तुत्थक १ कर्ष, कान्तलौह की भस्म १ कर्ष तथा मालकांगनी के बीजों का चूर्ण १ कर्ष भर लेकर सर्व प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके सबको एकत्र अच्छी तरह खरल कर लेवें। फिर निम्बू के स्वरस से रात भर भीङ्गो कर दिन भर घोटकर कल्क बना लेना चाहिए। फिर एक पलभर शुद्ध ताम्र के पत्र की पात्री (कटोरी) बनाकर उसके भाग में उक्त औषध कल्क को प्रलिप्त करके सुखा लेवें। फिर इस ताम्र की कटोरी को अधोमुखी करके एक हण्डिका के भीतर रखकर उस ताम्र की कटोरी के पृष्ठ को शराव से ढककर हण्डिका और शराव की सन्धियों को चिकनी मिट्टी के कीचड़ से लीप के बन्द करके सुखादें। पश्चात् शराव के ऊपर हण्डिका के खाली भाग में भस्म (राखी) भरकर भाण्ड के मुख को भी सकोरे से बन्द करके सन्धिबन्धन कर देवें। फिर इस हण्डिका के सम्पूर्ण बाहरी भाग पर कपड़ मिट्टी करके सुखाकर चूल्हे पर चढाकर दो दिन और दो रात भर तक पकावें। स्वाङ्गशीतल होने पर हण्डिका में से राखी

निकालकर भीतरी सकोरे को हठा कर ताम्र की कटोरी सहित सिद्ध औषध को खरल में महीन पीसकर चूर्ण बना के कपड़े से छान लेवें। यह रस अपस्मार को नष्ट करता है। एक वल्ल (३ रत्ती) भर इस रस को समभाग गृहीत वचा, सोंठ मरिच, पीपल और वायविडङ्ग इन औषधियों के ४ माशे भर चूर्ण और शहद् के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करने के आधे घण्टे के पश्चात् बकरी का मूत्र (१ पल भर) पिलाना चाहिए। अथवा वचा, त्रिकटु और वायविड्ङ्ग इन को समभाग लेकर चार पल भर कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चतुर्गुण अर्थात् १४ पल भर सरसों का तैल और तैल से चतुर्गुण जल लेकर सबको कड़ाही में पकाकर तैलमात्र शेष रहने पर स्वाङ्गशीतल कर के छान कर शीशो में भर देवें। फिर व्योष (सोंठ, मरिच, पीपल) के चूर्ण में इस तैल को मिलाकर अपस्मार रोगी को नस्य देवें, तथा तीन या चार बूंद तैल भी रोगी के नाक में टपका देना चाहिए। इस तरह यह रस अपस्मार रोग को विनष्ट करता है ॥ ८–१२ ॥

अथ नवाङ्गवटिका—

त्रिलोहपिष्टस्रोतोजसृष्टित्रययुतं रसम्।
भक्षयेत् पूर्ववत्सिद्धमपस्मारप्रणुत्तये ॥ १३ ॥

(१)त्रिलोह अर्थात् स्वर्ण भस्म, रजतभस्म, ताम्रभस्म तथा पिष्ट अर्थात् सीसे की भस्म, शुद्ध स्रोतोऽञ्जन, सृष्टि अर्थात् ऋद्धि का चूर्ण, त्रय अर्थात् सोमराजी का चूर्ण और रस (रस सिन्दूर) अथवा सृष्टित्रय अर्थात् अभ्रकभस्म, शुद्धमनःशिला और शुद्ध गन्धक तथा रस (शुद्ध पारद) इन सबको समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह से एक दिन तक घोट कर देवदाली आदि अपस्मार हर औषधियों के क्वाथ या स्वरस के साथ खरल करके गन्धकतैल में पकाकर सिद्ध कर लेवें। इस रस को अपस्मारहर औषधियों (शंखपुष्पी, वचा, ब्राह्मी, कुष्ठ, आदि) के चूर्ण तथा शहद् के साथ प्रतिदिन अपस्मार के नष्ट होने के लिये सेवन करना चाहिए ॥ १३ ॥

अथ सूतकप्रत्ययः—

तथैव पर्पटीसूतं ब्राह्मीरसविमिश्रितम्।

---

(१) सुवर्णं रजतं ताम्रत्रयमेतत् त्रिलोहकम्।

सूतकः प्रत्ययाख्योऽसौ उन्मादापस्मृतो हरेत् ॥ १४ ॥

अथवा पूर्व में कहे हुए पर्पटी रस और पारदभस्म या रससिन्दूर को समभाग लेकर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करते रहने से उन्माद और अपस्मार रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४ ॥

सर्वेश्वररसः—

रसं नारङ्गमूलं च दन्ती पाठा पृथक् पृथक् ।
पलमेकं फेनफलमर्कमूलं तथैव च ॥ १५ ॥
पलं मृगविषाणं च त्रिफला च पलत्रयम् ।
एतेषां क्वाथसंयुक्तं दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ १६ ॥
अम्लवेतससंयुक्तमर्कक्षीरसमन्वितम् ।
पञ्चपञ्चदिने तद्वदमरीरससंयुतम् ॥ १७ ॥
त्रिसप्तदिवसं तद्वन्मर्दयेत्सिद्धमौषधम् ।
पिष्टं चित्रकनिष्क्वाथे वल्लत्रयनिषेवितम् ।
उन्मादापस्मृती हन्यादेष सर्वेश्वरो रसः ॥ १८ ॥

रस अर्थात् पारदकी भस्म अथवा रससिंदूर १ पल, नारङ्गी की जड़का चूर्ण १ पल, दन्ती की जड़ का चूर्ण १ पल, पाठा का चूर्ण १ पल, फेनफल अर्थात् अफीम के डोड़े के बीजों का चूर्ण १ पल, आक की जड़ का चूर्ण १ पल, हिरन के शृंग की भस्म १ पल, त्रिफला अर्थात् हरड़ का चूर्ण १ पल, बहेड़े का चूर्ण १ पल तथा आंवलों का चूर्ण १ पल भर लेकर सबको खरल में महीन पीस कर चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को नारङ्गादि त्रिफलान्त द्रव्यों के क्वाथ के साथ तीन दिन तक खरल करके अम्ल वेतस के क्वाथ से तथा आक के शुद्ध दुग्ध से पांच २ दिन तक भावित करके घोटें, फिर इसी प्रकार अमरी के स्वरस अर्थात् नील दूर्वा या तुलसी के क्वाथ से भी पांच दिन तक भावित करके घोटें, पश्चात् चित्रक के क्वाथ से २१ बार भावित करके घोट कर सुखा लेवें। इस को सर्वेश्वर रस कहते हैं। इस रस को १ वल्ल (३ रत्ती) से प्रारम्भ करके रोग तथा रोगी के बल के अनुसार विचार करके ३ वल्ल भर तक अपस्मार हर औषधियों के चूर्ण तथा मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह सर्वेश्वर रस उन्माद और अपस्मार को नष्ट कर देता है ॥ १५-१८ ॥

अथ धूस्तूरपञ्चाङ्गघृतम्—

कृष्णधुस्तूरपञ्चागं कृष्णगोनवनीतकम् ।
षड्गुणं नवनीतात्तु माषक्वाथं चतुर्गुणम् ॥ १९ ॥
क्षिप्त्वा पचेद् घृतं तत्तु पथ्यं शाकोदनादिषु ।
शाकेषु काकमाची स्याद् भोजने कृष्णगोपयः ॥ २० ॥

काले धत्तूरे के पञ्चाङ्ग का कल्क एक पल तथा काली गाय का ताजा घृत ६ पल तथा काले उड़दों (माष) का क्वाथ घृत से चौगुना (२४ पल) लेकर सब को कलई दार लोह की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर कड़ाई को चढ़ा कर मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब समग्र जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् घृत सिद्ध हो जाय तब चूल्हे से कड़ाई को उतार कर स्वाङ्गशीतल होने पर घृत को छान के चौड़े मुख वाली शीशी या मृत बाण में भर कर रख देवें। यह घृत शाक तथा ओदन (भात) आदि भोज्य पदार्थों के साथ सेवन करने से उन्माद और अपस्मार को नष्ट करने के लिये श्रेष्ठ है। उन्माद तथा अपस्मार रोग में शाकों में मकोय का शाक तथा काली गाय का दुग्ध श्रेष्ठ माना गया है ॥ १९-२० ॥

अथ चूर्णाञ्जनम्—

शतधा मारिचं चूर्णं कूष्माण्डीपुष्पभावितम् ।
कुर्यात्तेनैव चूर्णेन रात्रावञ्जनमाचरेत् ॥ २१ ॥
एवं नित्यं कृते याति तृतीयदिवसे ध्रुवम् ।
अपस्मारस्तथा मासं सेव्यमेतन्महौषधम् ॥ २२ ॥

चार पल या इस से अधिक (यथेष्ट) काली मरिचों का चूर्ण लेकर उस को खरल में डाल कर सफेद कोहड़े के पुष्पों के स्वरस या क्वाथ से सौ बार भावित कर के घोट कर चूर्ण बना के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को प्रतिदिन रात्रि में अञ्जन की तरह लगाना चाहिए। इस तरह तीन दिन तक अञ्जन लगाने से अपस्मार नष्ट हो जाता है। इस चूर्ण को एक मास तक शहद् के साथ सेवन करने तथा अञ्जन करने से निश्चय ही अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है॥२१-२२॥

अथ मसीयोगः—

उद्बध्यमानवगलव्यतिषक्तमग्नौ रज्जुं विदह्य निपुणेन कृता मषी या ।
सा शीतलेन सलिलेन समं निपीतापुंसामपस्मृतिविनाशकरी प्रसिद्धा २३

मरने के लिये गले में बंधी हुई मनुष्य की रज्जु (फांस) अथवा छोटे २ बालकों के गले में बंधाहुआ सूत का डोरा जब अत्यन्त मैला हो जाय तब उसको अग्नि में जलाकर मस्सी तैयार कर लेवें। इस मस्सी में से थोड़ी सी (१-३ माशे भर) मसी लेकर शीतल जलके साथ पीने से मनुष्यों के अपस्मार रोग को नष्ट कर देती है ॥ २३ ॥

अथ तिलजदीपाञ्जनम्—

कृष्णं श्वानं स्थितमनशनं स्थापयित्वा विरेकं
पश्चाद्दध्नासिततिलयुतं भोजनं भोजयित्वा।
तद्ग्रीवोत्थासिततिलजदीपाञ्जनं लोचनस्थं
चापस्मारं हरति विधृतं नैम्बसारे शरावे ॥ २४ ॥

काले कुत्ते को एकदिन तक भूखा रखकर दूसरे दिन विरेचन औषध सेवन करा के उसके कोष्ठ की शुद्धि कर लेनी चाहिए। पश्चात् तीसरे दिन दही के अन्दर काले तिल मिलाकर जितने वह खा सके उतने उसे खिला देवें। फिर सन्ध्या के समय उसे वामक औषधि खिलाकर सब तिलों को निकाल लें। फिर उन तिलों में तैल पकाकर या उन तिलों का तैल निकालकर दीपक जला के नीम की लकड़ी से बनाये हुए शराव (सकोरे) के भीतर अञ्जन एकत्रित करें या पाड़ें। इस अञ्जन को अपस्माररोगी की आंखों में रात्रि के समय आंजने से अपस्मार नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

अथ चण्डभैरवरसः—

हेम्ना शुद्धेन सम्पिष्टं दशमांशरसं विषम्।
स्रोतोजं मर्दितं तोयैः शूलिनीदेवदालिजैः ॥
गन्धकस्य पचेत्तैले वटिकोन्मादनाशिनी ॥ २५ ॥

शुद्ध स्वर्ण की भस्म १० माशे भर, शुद्ध पारद १ माशा, शुद्ध वत्सनाभविष का चूर्ण १ माशा तथा स्रोतोऽञ्जन १ माशे भर लेकर सब को खरल में डाल कर महीन चूर्ण करके चित्रक और वन्दाल के स्वरस या क्वाथ से सात २ वार भावित कर के घोट कर सुखा लेवें। फिर इस चूर्ण को गन्धक के तैल के साथ मन्द २ अग्नि से पका कर स्वाङ्गशीतल कर के दो २ रत्ती भर की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को एक २ वटी प्रतिदिन सेवन करने से उन्माद रोग को नष्ट करती है ॥ २५ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर में इस रस का निर्माण निम्न प्रकार से है। यथा-

हेमपादं मृतं सूतं निष्टखल्ले विमर्दयेत्।
शोभाञ्जनं विषं तुल्यं मर्द्यं त्रिशूलिनीद्रवैः॥
देवदाल्या द्रवैश्चाह्नि तद्गोलं पाचयेद्दिनम्।
गन्धकोत्थेन तैलेन तत उद्धृत्य चूर्णयेत्।
मासैकं भक्षयेन्नित्यं पिवेद्ब्राह्मीघृतं ह्यनु।
सर्वभूतग्रहं हन्ति रसोऽयं चण्डभैरवः॥ इति।

अथ पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ नाकुलीबीजपञ्चकम्।
गोघृतेन तु संयोज्य खादेदुन्मादशान्तये॥
सघृतं माषमण्डं च पाययेद्व घृतदुग्धकम्॥ २६॥

पूर्वोक्त पर्पटी रस ८ रत्ती भर तथा नाकुली कन्द के ५ बीज लेकर दोनों को छोटी खरल में महीन घोट कर गाय के १ तोले भर घृत में मिला कर उन्माद रोग की शान्ति के लिये प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। अनुपान के लिये उड़दों की दाल के मण्ड (यूष) में घृत मिला कर अथवा दुग्ध में घृत मिला कर पीना चाहिए॥ २६॥

अथ पर्पटीरसस्य प्रकारान्तरेण सेवनोपदेशः—

पर्पटीरसगुञ्जाष्टौ ब्राह्मीरससमन्वितम्।
खादयेद्रोगिणं वैद्यो ह्यपस्मारप्रशुत्तये॥ २७॥

पूर्वोक्त पर्पटी रस ८ रत्ती भर लेकर ब्राह्मी के स्वरस या क्वाथ के साथ अपस्मार रोग को नष्ट करने के लिए प्रतिदिन सेवन करना चाहिए॥ २७॥

अथ नेत्ररोगाणां संख्या—

कृष्णे पञ्च नवैवसन्धिषु दश त्रीण्येव शुक्लेऽखिले
जाताः षोडशवर्त्मजाः खलु चतुर्विंशो दृशोर्विंशतिः।
सप्तातङ्कयुताश्चतुर्नवतिरित्यक्ष्णोरशेषामयान्।
यो वेत्ति व्यपहर्तुमेष विदुषामग्र्यः समर्थो भवेत्॥ २८॥

आखों की काली पुतली में ५, नेत्र की सन्धियों में ९, नेत्र के समग्र श्वेत भाग में १३, नेत्र के वर्त्म प्रदेश में १६, दृष्टि मण्डल में २४ तथा नेत्र के शेष २७ रोग इस तरह ९४ प्रकार के आखों के रोग होते हैं। जो इन रोगों को

अच्छी तरह से जानता है वही वैद्य सब विद्वानों में अग्रणी हो कर नेत्रों के रोगों को नष्ट करने में समर्थ होता है ॥ २८ ॥

विमर्शः—सुश्रुत में नेत्रों के ७६ रोग माने गये हैं। यथा-

"तैस्त्रिभिस्त्रिंशदुक्तास्ते कफेनाभ्यधिकास्त्रयः।
रक्तजाः षोडश प्रोक्ताः सर्वजाः पञ्चविंशतिः ॥
बाह्यौ पुन द्वौंच तथा रोगाः षट् सप्ततिः स्मृताः।
नवसन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ॥
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः।
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ॥
द्वौ च बाह्याश्रयावन्त्यावनिमित्तनिमित्तजौ।
षट् सप्तति नेत्ररोगाः संक्षेपेण प्रकीर्तिताः ॥

यहां (रसरत्न में) वाग्भटाचार्य ने नेत्ररोगों की संख्या संक्षेपसे न लिख कर विस्तार सहित लिख दी है।

अथ नेत्ररोगचिकित्सा—

अथ ताम्रवर्तिः—

आर्द्रालकुचभृङ्गाणां रसपिष्टेन कस्यचित्।
गन्धकेन समांशेन प्रागवत्ताम्रं च मारितम् ॥ २९ ॥

एक तोले भर ताम्र भस्म लेकर अद्रक, लकुच (बड़हर) और भृङ्गराज इन तीनों में से किसी एक के रस के साथ घोट कर कल्क किये हुए एक तोले भर शुद्ध गन्धक (आर्द्रायन्यतमस्वरसकृतकल्कस्वरूपगन्धक) में मिला कर खरल कर के पूर्ववत् वर्तियां बना लेवें। इस प्रकार की वर्ति को जल में घिस कर नेत्रों में लगाने से नेत्र रोग में विशेष लाभ होता है ॥ २९ ॥

अथ ताम्रद्रुतिः—

ताम्राभ्रकं च तुल्यं च दशनिष्कं पृथक् पृथक्।
कन्दुकस्थमिदं त्रिंशत्कर्षचूर्णितगन्धकम् ॥ ३० ॥
दत्त्वाल्पशोऽग्निनाल्पेन रुद्ध्वा धूमं विसर्जयेत्।
प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रसादं निसृतं युतम् ॥ ३१ ॥
तुत्थनीरशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत्।
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिकात् ॥ ३२ ॥

काचार्मपिल्लाभिष्यन्द्व्रणशुक्रप्रणाशिनी।
तत्किट्टं दद्रुकिटिमं लेपात्पामादिकं जयेत्॥ ३३॥

ताम्र की भस्म १० निष्क (४० मा०), अभ्रक की भस्म १० निष्क, शुद्ध किया हुआ नील तुत्थक १० निष्क भर लेकर सब को एकत्र खरल में अच्छी तरह घोट कर चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को किसी कन्दुक के आकार के लोह पात्र या लोह की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि से पकावें। जब यह चूर्ण उष्ण हो जाय तब इस में एक कर्ष (१६ मा०) भर शुद्ध गन्धक डाल कर काष्ठदण्ड या कलच्छी से सब को एकत्र कर के घोट कर किसी सराव (सकोरे) से ढक देवें। जब कर्ष भर गन्धक का जारण हो जाय तथा शराव के अन्दर जारित गन्धक का धुआं एकत्रित हो जाय तब उस सकोरे को हटा कर धुआं निकाल देवें तथा फिर एक कर्ष भर शुद्ध गन्धक मिला के कलच्छी से घोट कर सकोरे से ढक देवें तथा गन्धक जीर्ण हो जाने पर धूएं को निकाल देवें। इस तरह थोड़ी २ देर में एक २ कर्ष भर गन्धक का जारण करें। इस तरह से ३० कर्ष भर गन्धक जारण कर के स्वाङ्गशीत होने पर कड़ाही से उस भस्मी भूत चूर्ण को लेकर १ प्रस्थ (६४ तो०) भर जल में मिला के घोल बना कर कुछ देर (समय) के लिये रख दें। जब सार भाग नीचे प्रासाद रूप में बैठ जाय या अवक्षिप्त हो जाय तब धीरे २ जल को नितार कर निकाल देवें। इस अवशिष्ट रहे अवक्षिप्त भाग में तूतिये का पानी १ कर्ष भर तथा शुद्ध शिलाजीत १ कर्ष भर डाल के खरल में दिन भर घोट कर सुखा लेवें। फिर इस में से ३ रत्ती भर चूर्ण लेकर घृत, स्त्री या गाय के दुग्ध अथवा शहद् में मिला कर आंखों में लगाने से काच रोग (मोतिया बिन्द), अर्म, पिल्ल, अभिष्यन्द, व्रण तथा नेत्र के शुक्र रोग को नष्ट करता है। ऊपरी जल के साथ निकले हुए किट्ट को शरीर पर लेपन करने से दद्रु, किटिम रोग तथा पामादिक को विनष्ट करता है॥ ३०-३३॥

विमर्शः—कुछ टीकाकारों ने उपर्युक्त ताम्रभस्मादिक-जारितौषध के नितरे हुए जल को प्रसाद भाग मान कर उसे अवक्षिप्त भाग से अलग करके उस में एक कर्ष भर तुत्थोदक तथा कर्ष भर शिलाजीत मिलाके घोट कर धूप में सुखा के घृतादिकों के साथ मिलाके आंखों में लगाने के लिए तथा अवशिष्ट हुई ताम्रादिभस्मों को किट्ट

मान कर उनका दद्रु पामादिक पर प्रलेप करने को लिखा है। इसे मानने में भी कोई हानि नहीं है तथा आगे को ताम्रद्रुति से भी सङ्गत होता है। एवं किसी २ ग्रन्थ में "अर्द्रालकुचादि" २९ वें श्लोक में कहे हुए ताम्रवर्ति नामक प्रयोग को पृथक् न मान कर ३० से ३३ तक की संख्या वाले योग हो में मिला दिया है तथा ताम्र अभ्रक की भस्मों में से ताम्र भस्म को २९ वें श्लोक के अनुसार बनाकर ग्रहण करने को लिखा है। अर्थात् ताम्रके शुद्ध पत्र लेकर उन पर आर्द्रालकुच भृङ्गादियों में से किसी एक के स्वरस में पिष्ट किये हुए समभाग गन्धक के कल्क का प्रलेप करके शराब सम्पुट में पत्रों को बन्द कर गजपुट द्वारा पत्तों की भस्म बनानी चाहिए। पश्चात् इस विधि से निर्मित ताम्र भस्म १० निष्क, अभ्रक भस्म १० निष्क तथा शुद्ध तुत्थ १० निष्क लेकर शेष कर्म करना चाहिए।

अथ ताम्रद्रुतिः—

शुल्वं गन्धकमभ्रकं च रसकं दिक्सङ्ख्यनिष्कं पृथक्
सर्वं रुद्रजटारसेन बहुशो भृङ्गस्य सारेण वा।
प्रायःश्लक्ष्णतरं सुमर्दितमिदं सम्यक्पुटं कारये-
त्स्थाल्यां तत्पुनरेव शीतलमिदं विन्यस्य तस्यान्तरे ॥ ३४ ॥
निष्कं निष्कमनन्तरं परिपचेज्जीर्णं यथा गन्धकं
स्यादेवं शतनिष्कमात्रमसकृत्तद्भस्म शीतं ततः।
प्रस्थेनोन्मितवारिणा विलुलितं कल्कं विना गालितं
सङ्गृह्याम्बु तदन्तरे शिखिनिभं तुत्थं सुचूर्णीकृतम् ॥ ३५ ॥
कर्षांशांशितमञ्जनं विनिहितं कांस्ये परं शाषये-
त्तां ताम्रद्रुतिमामनन्ति निखिलान्नेत्रामयान्नाशयेत् ॥ ३६ ॥

ताम्रभस्म १० निष्क, शुद्ध गन्धक १० निष्क, अभ्रकभस्म १० निष्क तथा खर्पर भस्म १० निष्क भर लेकर सब को खरल में अच्छी तरह घोट कर रुद्र जटा अथवा भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके अच्छी तरह खरल करके गोला बना कर सुखा लेवें। फिर इसे शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पकावें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट में से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि द्वारा प्रतप्त करके एक निष्क भर शुद्ध गन्धक डाल कर कलच्छी से घोट के सकोरे से ढक देवें। जब गन्धक का जारण हो जाय तब सकोरे (ढक्कन) को हटा कर फिर एक निष्क भर गन्धक

डाल कर जारण करें। इस तरह एक २ निष्क भर गन्धक डाल २ कर सौ निष्क भर गन्धक समाप्त होने तक जारण करता रहे। पश्चात् स्वाङ्गशीतल कड़ाही में से शीतल हुई ताम्रादिक की भस्म निकाल कर १ प्रस्थ भर जल में डाल के हाथों से मसल २ (रगड़ २) कर कुछ देर के लिये रख दें। जब ताम्रादिकों की भस्म नीचे बैठ जाय तब उसके जल को धीरे २ दूसरे पात्र में नितार कर ले लेवें। फिर उस नीचे शेष रहे ताम्रादिक भस्मों के चूर्ण में अथवा नितारे हुए पानी में एक कर्ष भर शुद्ध किया हुआ मयूर के कण्ठ की आभा के सदृश नील वर्ण का तुत्थचूर्ण और शुद्ध किया हुआ १ कर्ष भर ही असित अञ्जन (नीलाञ्जन) मिला कर सब को घोट कर कांस्य पात्र में भरके सूखने के लिये धूप में रख देवें। इस प्रकार से बनी हुई औषध को रसायन शास्त्र के आचार्य ताम्रद्रुति कहते हैं। इस ताम्रद्रुति को घृत, दुग्ध या शहद् के साथ मिला के नेत्रों में लगाने से सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को नष्ट करती है॥ ३४–३६॥

अथ गन्धकद्रुतिः—

आर्द्रकस्य रसे पिष्टं गन्धकेन विमिश्रितम्।
तुत्थं तु निष्कदशकं तन्मानं चाभ्रकं क्षिपेत्॥ ३७॥
दशनिष्केण तन्मानं ताम्रं च शकलीकृतम्।
भर्जयेत्खर्परे क्षिप्त्वा दहेत्तदनु चूर्णयेत्॥ ३८॥
तन्मिश्रं कन्दुकस्थेन चूर्णमेतेन भर्जयेत्।
गन्धकं चूर्णितं कृत्वा कर्षं तु विधिना शनैः॥ ३९॥
भर्जितं तज्जलप्रस्थे नीलं चापि शिलाजतु।
कर्षप्रमाणं निक्षिप्य मर्दयेद्द्रावयेत्पुनः॥ ४०॥
प्रसादं स्रावयेत्पश्चादातपे परिशोषयेत्।
गन्धकद्रुतिरित्येषा सर्वनेत्रामयापहा॥ ४१॥
विशेषाद् व्रणकुष्ठं च पिल्लं काचं कुकूणकम्॥
जयेत्तस्य घृतक्षौद्रैः सर्वं तत्परिकल्पयेत्॥ ४२॥
व्रणान्कृच्छ्रान्सुसूक्ष्मांश्चानपि शीघ्रं निवर्तयेत्।
तत्किट्टं दद्रुकिटिभपामादीन् लेपनाज्जयेत्॥ ४३॥

शुद्ध तुत्थक दश (१०) निष्क भर लेकर उतने ही (१० निष्क भर)

शुद्ध गन्धक के साथ मिला के आर्द्रक का स्वरस डालकर दिन भर तक घोटकर फिर उसमें १० निष्क भर अभ्रकभस्म तथा शुद्ध ताम्र का चूर्ण १० निष्क भर मिलाकर मिट्टी के खर्पर में डाल के भून लेवें। स्वाङ्गशीतल होने पर खरल में डाल के अदरख के स्वरस के साथ घोटकर गोला बना के शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पका लेवें। पश्चात् स्वाङ्गशीतल सम्पुट में से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके कन्दुकयन्त्र में अथवा लोहे की कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि जला के उष्ण होने पर उस में पूर्ववत् १ कर्ष भर शुद्ध गन्धक डाल कर उस का जारण करें। इस तरह ३० कर्ष भर गन्धक का जारण करके स्वाङ्गशीतल होने पर इस भस्म को १ प्रस्थ भर जल में घोल कर कुछ समय के लिये छोड़ देवें। फिर उसमें १ कर्ष भर नीलाञ्जन तथा १ कर्ष भर ही शुद्ध शिला. जीत मिला के हाथों से अच्छी तरह विलोडित करके घोल बनाकर कुछ देर तक इसी तरह छोड़ दें पश्चात् समस्त जल को धीरे२ नितार कर अलग कर लेवें और शेष (अवक्षिप्त) औषध को खरल में डालकर अच्छी तरह घोट के तीव्र धूप में रख देवें। इस प्रकार से बनाई हुई यह गन्धक की द्रुति सर्व प्रकार के नेत्र रोगों को नष्ट करती है। इस गन्धक द्रुति को शहद, घृत वा दुग्ध में मिलाकर नेत्रों में लगाने से नेत्रव्रण, कुष्ठ विकार, पिल्ल, काचरोग तथा कुकूणकरोग को नष्ट करती है। इनके अतिरिक्त यह गन्धक द्रुति बड़े २ कठिन तथा सूक्ष्म अग्रभाग वाले नेत्रों के व्रणों को शीघ्र ही नष्ट करती है। इस द्रुति के किट्ट भाग का शरीर पर लेप करने से दद्रु, किटिम और पामादिक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७-४३ ॥

अथ गरुडाञ्जनम्—

कतकसैन्धवतुत्थरसाञ्जनं त्रिकटुकस्फटिकाब्दवराटकम्।
त्रिकटुताम्रमयोहिमरोहिणी जलधिफेनवचानृकरोटिका ॥४४॥
उरगपारदटङ्कणमञ्जनं त्रिफलया मधुकेन च संयुतम्।
करजवल्करसेन सुपेषितं गरुडदृष्टिसमां कुरुते दृशम् ॥ ४५ ॥

कतक (निर्मली), सैन्धव लवण, तुत्थक, रसाञ्जन, सोंठ, मरिच, पीपल, फिटकरी, नागरमोथा, वराट (कौड़ी) की भस्म, सोंठ, मरिच, पीपल, ताम्रभस्म, लोहभस्म, हिम अर्थात् कर्पूर, रोहिणी, समुद्रफेन, वचा, मनुष्य की खोपड़ी की अस्थियों की भस्म, उरग अर्थात् सीसे की भस्म, शुद्ध पारद, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध

नीलाञ्जन, हरड़, बहेड़े, आंवले और मुलेठी इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को करञ्ज की छाल के क्वाथ के साथ सात वार भावित करके घोट कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को मधु, गोघृत या दुग्ध के साथ मिलाकर प्रतिदिन नेत्रों में अञ्जन करने से मनुष्य की दर्शन शक्ति गरुड़ के समान हो जाती है ॥ ४४–४५ ॥

अथ तिमिरहराञ्जनम्—

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमञ्जनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ४६ ॥

रसेन्द्र अर्थात् शुद्ध पारद और सीसे की भस्म दोनों समभाग (अर्थात् एक २ तोले) और इन दोनों से द्विगुण (४ तो०) शुद्ध नीलाञ्जन तथा थोड़ी सी (३ मा०) भीमसेनी कर्पूर लेकर सबको एकत्र खरल में डालकर एक दिन तक घोटकर चूर्ण बना के शीशी में भर देवें। यह अञ्जन शहद् या गोघृत के साथ प्रतिदिन आखों में लगाते रहने से तिमिर रोग (आंखों के सामने अंधेरे का छा जाना) नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

अथ पटलहरांजनम्—

कारवेल्लद्रवैः सार्धं सम्यग् भर्ज्या कपर्दिका ।
सूतकं टङ्कणं लाक्षा तुल्यं जम्बीरजद्रवैः ॥ ४७ ॥
मर्दयेत्ताम्रपात्रे तु तस्मिन् रुद्ध्वा विनिक्षिपेत् ।
धान्यराशौ स्थितं मासमञ्जनं पटलं हरेत् ॥ ४८ ॥

एक तोले भर कौडी की भस्म या शुद्ध कौड़ी के चूर्ण को ताम्र के पात्र में डालकर करेले के स्वरस से अच्छी प्रकार से भून लेवें। फिर उस कौड़ी के चूर्ण में शुद्ध पारद १ तोला, शुद्ध सुहागा १ तोला तथा लाक्षा का चूर्ण १ तोला डाल कर जम्बीरी निम्बू के रस के साथ खूब घोटकर उस ताम्र पात्र को समानाकार वाले दूसरे ताम्रपात्र साथ सन्धिबन्धन करके एक मास तक धान के ढेर (राशि) में गाड़ देवें पश्चात् ताम्र सम्पुट से औषध को निकाल कर खरल में महीन घोट के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण के प्रतिदिन आंखो में लगाते रहने से नेत्र पटलों के रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४७–४८ ॥

अथ रक्ताञ्जनम्—

भृङ्गराजरसैर्घृष्टं पलैकं रक्तचन्दनम्।
ताम्रपात्रे स्थितं भाव्यं तद्रसेन पुनः पुनः॥ ४९॥
शतधा भावयेद्यत्नात्पेष्य पेष्य पुनः पुनः।
मधुनाऽप्यञ्जनं हन्ति षड्विधं तिमिरामयम्॥ ५०॥

लालचन्दन के १ पलभर चूर्ण को ताम्रपात्र या ताम्र की खरल में डालकर भृङ्गराज के स्वरस से रातभर तक भींगो कर दूसरे दिन ८ घण्टे तक उसी रसके साथ खरल करें। इस तरह बार २ भृङ्गराज का रस डाल २ कर सौ बार भावित करके बार २ घोट कर चूर्ण बना लेवें। इस अञ्जन को शहद् के साथ नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से ६ प्रकार का तिमिर रोग नष्ट हो जाता है॥ ४९–५०॥

अथ शम्बूकादिवर्तिः—

शम्बूकं पारदं नागं कांस्यचूर्णं रसोञ्जनम्।
समं सर्वमिदं चिञ्चादलद्रावेण मर्दयेत्॥ ५१॥
ताम्रपात्रगतां वर्तिं छायाशुष्कां तु कारयेत्।
शुक्लार्मं तिमिरं पिल्लं हन्ति सा मधुनाऽञ्जिता॥ ५२॥

शम्बूक अर्थात् छोटे शङ्खों या जल शुक्तियों की भस्म, शुद्ध पारद, नाग (सीसे) की भस्म, कांसे की भस्म और रसाञ्जन इन सबको सम भाग लेकर ताम्बे की खरल में डाल के अच्छी तरह मर्दन करके महीन चूर्ण बनाकर इमली के पत्तों के स्वरस के साथ सातवार घोटकर छोटी २ (यव सदृश) वर्तियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें। इस वर्ति को मधु के साथ घिस कर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से शुक्ल अर्म, तिमिर, पिल्ल आदि नेत्रों के विकार नष्ट हो जाते हैं॥ ५१–५२॥

अथ नक्तान्ध्ये पञ्चाङ्गगुटिका—

ताम्राग्र्यलवणशङ्खैस्तुल्या मगधोद्भवाऽथ वै धात्री।
जलपिष्टा गुटिकेयं सायंसमयान्ध्यमपहरति॥ ५३॥

नेपाली ताम्रकी भस्म, समुद्रलवण और शंखभस्म ये प्रत्येक एक २ तोलेभर तथा पीपल का चूर्ण ३ तोले भर और आंवलों का चूर्ण तीन तोले भर लेकर सब को खरल में जल के साथ दिनभर घोंटकर वर्तियां बना के सुखा कर शीशी में

भर देवें। इस वर्तिको मधु या जल के साथ घिसकर नेत्रों में लगाने से सायङ्काल के समय होनेवाली अन्धता नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

अथ नवनेत्रदात्रीवर्तिः—

द्विरष्टौ ताम्ररजसो मधुकस्य चतुर्दश।
कुष्ठस्य द्वादशांशाः स्युर्वचायास्तु दशैव हि ॥ ५४ ॥
रजतस्य तु चत्वारो द्वौ भागौ कनकस्य च।
सैन्धवस्याष्टमो भागः पिप्पल्याश्च षडेव तु ॥ ५५ ॥
अजाक्षीरेण सम्पेष्य ताम्रपात्रे निधापयेत्।
अभिष्यन्दमधीमन्थं व्रणशुक्लं कुकूणकम् ॥
तिमिरं पटलं काचं कण्डूं हन्ति विशेषतः ॥ ५६ ॥

ताम्रकी भस्म १६ तोला, मुलेठी का चूर्ण १४ तोला, कूठ का चूर्ण १२ तोला, वचा का चूर्ण १० तोला, चांदी की भस्म ४ तोला, सुवर्ण की भस्म २ तोला, सैन्धव लवण ८ तोला और पिप्पली का चूर्ण ६ तोला भर लेकर सबको ताम्र की खरल में एकत्रित कर के अच्छी तरह घोटकर बकरी के दुग्ध के साथ खरल करके सुखाकर ताम्र की डिब्बी में ही बन्द करके सुरक्षित रख देवें। इस अञ्जन को मधु या गोघृत के साथ प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से अभिष्यन्द, अधिमन्थ नेत्र व्रण, कुकूणक, तिमिर, पटलरोग, काचरोग और नेत्रों की खुजली आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४-५६ ॥

अथ नयनरोगहरा वर्तिः—

कणलवणवचायुग्यष्टिताम्रैः क्रमेण
द्विगुणधरणवृद्धैश्छागदुग्धेन पिष्टैः।
निखिलनयनरोगान् हन्ति वर्तिर्विशिष्टा
रज इव निशि सर्पिः क्षौद्रयुक्तं वरायाः ॥ ५७ ॥

पिप्पली का चूर्ण १ धरण(१) ४ मा० सैंधा नीमक २ धरण, वचा का चूर्ण ३ धरण, जलज और स्थलज दोनों तरह की मुलेठी का चूर्ण ४ धरण और ताम्र की भस्म ५ धरण भर लेकर सबको खरल में घोटकर बकरी के दुग्ध के साथ खरल करके छोटी २ (यवप्रमाण) वर्तियां बनाकर छाया में सुखा लेवें। जिस प्रकार त्रिफला

(१) माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणं तन्निगद्यते।

के चूर्ण को शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन रात्रि में सेवन करने से समस्त नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार इस वर्ति को शहद् या गोघृत के साथ घिस कर नेत्रों में लगाने से नेत्रों के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथ शिग्रुतैलम्—

चिञ्चादलस्वरसपेषितशिग्रुबीजं
कांस्ये निघृष्य परिशोष्य खरातपेन।
तैलं ततः श्रुतमिदं शशिपादयुक्तं
युञ्ज्यात् व्रणार्मतिमिरे तिलमात्रमक्षिण ॥ ५८ ॥

शिग्रु के बीजों के चूर्ण को इमली के पत्तों के स्वरस के साथ कांसे के पात्र में दिन भर घोटकर दूसरे दिन तेज धूप में सुखा लेवें। इस प्रकार धूप के संयोग से चूर्ण में से तैल निकलकर एकत्रित हो जाय तब उसमें तैल की अपेक्षा चौथाई शुद्ध भीमसेनी कर्पूर मिलाकर घोट के शीशी में भर देवें। इस तैल को तिल की मात्रा के बराबर लेकर व्रण, अर्म और तिमिर रोग युक्त आंख में लगाना चाहिए॥५८॥

अथ नागादिवर्तिः—

शिलया निहतं नागं रसराजप्रपेषितम्।
द्विगुणं तुत्थमीषच्च कर्पूरं द्रोणपुष्पजैः।
रसैर्विमर्दयेद्वर्तिरेषाऽभिष्यन्दनाशिनी ॥ ५९ ॥

शुद्ध मनःशिला के द्वारा की हुई सीसे की भस्म १ तोला, एक तोले भर शुद्ध पारद के साथ घोटा हुआ नील तुत्थक दो तोले भर तथा तीन माशे भर भीमसेनी कर्पूर इन सबको खरल में महीन घोटकर द्रोणपुष्पी (गूम्मे) के स्वरस या क्वाथ के साथ खरल करके छोटी२ वर्तियां बनाकर छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। इस वर्ति को शहद् या घृत के साथ घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५९ ॥

अथ वाताभिष्यन्दे इन्द्रादिवर्तिः—

कार्पासरसपिष्टेन्दुमधुशुल्वरसाञ्जनम्।
वाताभिष्यन्दजे ताम्रे तिलपर्ण्यम्बुमर्दितम् ॥ ६० ॥

कपास की जड़ का स्वरस या क्वाथ १ तोला, पिष्ट अर्थात् सीसक भस्म १ तोला, भीमसेनी कपूर ३ माशे भर, मुलेठी का चूर्ण १ तोला, ताम्रभस्म १ तोला,

दार्व्यादिक्वाथकृतरसाञ्जन १ तोले भर लेकर सबको ताम्र की खरल में घोटकर तिलपर्णी (लाल चन्दन) के क्वाथ के साथ सातवार खरल करके छोटी२ वर्तियां बनाकर छायाशुष्क करके शीशी में भर देवें। अथवा कर्पूर, मुलेठी का चूर्ण, ताम्रभस्म और रसाञ्जन इनको समभाग लेकर कपास के पत्र के स्वरस से ताम्रपात्र में घोटकर वर्तियां बना के सुखालेवें। इन वर्तियों को चन्दन के क्वाथ के साथ ताम्रपात्र में घिसकर नेत्रों में प्रतिदिन लगाते रहने से वातिक अभिष्यन्द में अत्यन्त लाभ होता है ॥ ६० ॥

अथ श्लेष्माभिष्यन्दे शुल्वादिवर्तिः—

शुल्वजीमूतलोहं च सीसं च समभागिकम् ।
द्विगुणं नाञ्जनं जातीतिलपर्णीमयूरजैः ॥
पिष्टं निघृष्टदध्न्यर्के श्लेष्माभिष्यन्दनाशनम् ॥ ६१ ॥

ताम्र की भस्म १ तोला, जीमूत अर्थात् अभ्रक की भस्म १ तोला, लोहे की भस्म १ तोला, सीसे की भस्म १ तोला तथा शुद्ध नीलाञ्जन २ तोला लेकर सबको खरल में डालकर महीन घोट के चमेली के पञ्चाङ्ग के स्वरस, चन्दन के क्वाथ और अपामार्ग के क्वाथ के साथ पृथक्२ सात२ वार क्रमशः खरल कर के सुखा लेवें। फिर इस चूर्ण को ताम्र की कटोरी में दही के साथ घोटकर आंखों में लगाने से श्लेष्मविकृति जन्य अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

अथ त्रिदोषाभिष्यन्दे रसेन्द्रवर्तिः—

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमञ्जनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तं दशमांशं च सर्जकम् ॥ ६२ ॥
बलानागबलाजाजीरसैस्ताम्रे दिनत्रयम् ।
मर्दितं स्यादभिष्यन्दे सन्निपातात्मके हितम् ॥ ६३ ॥

शुद्ध पारद १ तोला, सीसे की भस्म १ तोला, दोनों से द्विगुण (२ तो०) शुद्ध नीलाञ्जन तथा ३ माशे भर भीमसेनी कर्पूर तथा सबकी अपेक्षा दशमांश राल का चूर्ण लेकर सबको पत्थर की खरल में डालकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् इस चूर्ण को ताम्बे की बड़ी कटोरी या खरल में डालकर बला (खरेटी), नागबला (गङ्गेरन) और जीरा इन तीनों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से

तीन २ दिन तक खरल करके चूर्ण बनाकर सुखा लेवें। यह चूर्ण सन्निपात जन्य अभिष्यन्द को नष्ट करता है ॥ ६२-६३ ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दे तीक्ष्णादिवर्तिः—

चूर्णं तीक्ष्णस्य ताम्रस्य रसेन्द्रसमचारितम्।
रसाञ्जनं च द्विगुणं वर्षाभूरसमर्दितम् ॥
शर्करामाक्षिकोपेतं पित्ताभिष्यन्दसूदनम् ॥ ६४ ॥

तीक्ष्ण लौह की भस्म १ तोला, ताम्र की भस्म १ तोला तथा दोनों के बराबर (२ तो०) शुद्ध पारद और रसाञ्जन २ तोले भर लेकर सबको खरल में अच्छी तरह घोटकर महीन चूर्ण करके पुनर्नवा के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके छोटी वर्तियां बनाकर सुखालेवें। इनमें से एक२ वर्ति लेकर चीनी और शहद् के साथ घिस के नेत्रों में लगाने से पित्त के विकार से उत्पन्न हुआ अभिष्यन्द नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

अथ पित्ताभिष्यन्दे नागादिवर्तिः—

नागपारदधात्रीन्दुरत्नाज्यकणसैन्धवम्।
रसाञ्जनं कणाक्षौद्रं ताम्बूलीपत्रवारिणा ॥
ताम्रेण मर्दितं कांस्ये पित्ताभिष्यन्दमन्थनुत् ॥ ६५ ॥

नाग (सीस) की भस्म, शुद्धपारद, आवलों का चूर्ण, शुद्ध कर्पूर, मोती की भस्म, गाय का घृत, पिप्पली का चूर्ण, सैन्धवलवण, रसाञ्जन, जीरे का चूर्ण और शहद् इन सबको समभाग लेकर महीन घोटकर कांसे की खरल या मजबूत कटोरी में डालकर ताम्बे के मर्दन (मुसली) से पान के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके छोटी२ वर्तियां बनाकर छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस वर्तिको चीनी, शहद् या पानी के साथ घिसकर आंखों में लगाने से पैत्तिक अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

अथ ताम्रादिवर्तिः—

ताम्राऽहितारसपीतकरोहिणीन्दु-
शौण्डीरसाञ्जननदीजपुराणकांस्यैः।
वर्तिः कृता सकलसम्मितहंसपादी-
मूलैर्निहन्ति नयनामयजालमाशु ॥ ६६ ॥

ताम्र की भस्म, सीसे की भस्म, तार अर्थात् चांदी की भस्म, शुद्ध पारद, पीतक अर्थात् स्वर्णभस्म या पीली लोध का चूर्ण, कटुरोहिणी का चूर्ण (अथवा पीतक रोहिणी शब्द से केवल गम्भारी की छाल का चूर्ण लेवें), शुद्ध कर्पूर, शौण्डी अर्थात् पिप्पली का चूर्ण, रसौंत, नदीज अर्थात् क्षुद्र शङ्खभस्म या समुद्र फेन तथा कांसे की पुरानी भस्म इन सबको समभाग लेकर खरल में घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर सबके बराबर हंसपादी की जड़ लेकर उसका क्वाथ बना के उससे उपर्युक्त चूर्ण को खरल करके छोटी २ वर्तियां बनाकर छाया में सुखा लेवें। यह वर्ति घृत, शहद् या जल में घिस कर प्रतिदिन आंखों में लगाने से नेत्रों के समस्त विकार को नष्ट कर देती है ॥ ६६ ॥

अथ पारदादिवर्तिः—

पारदनागरसाञ्जनसमानदृढशिंबिमूलकं सरजम् ।
सप्तदिनं चिञ्चालरसपिष्टं ताम्रपात्रपर्युषितम् ॥ ६७ ॥
वर्तिरनातपशुष्काऽधिमन्थतिरार्मपिल्लशुक्लघ्नी ॥ ६८ ॥

शुद्ध पारद, सीसे की भस्म, रसौंत, लौहभस्म, शिम्बीधान्य (हरे मूंग) की जड़ का चूर्ण और राल इन सबको समभाग लेकर पत्थर की खरल में दिन भर घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें। पश्चात् इस चूर्ण को ताम्बे की दृढ कटोरी या खरल में इमली के पत्तों के स्वरस के साथ सात दिन तक घोट २ कर रात्रि भर पड़ा रख के आठवें दिन सुबह छोटी वर्तियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर कर रख देवें। यह वर्ति गोघृत, मधु या जल के साथ घिस कर नेत्रों में प्रति दिन लगाते रहने से अधिमंथ, तिमिर, अर्मरोग, पिल्ल और नेत्रों की सफेदी को नष्ट कर देती है ॥ ६७-६८ ॥

अथ एकत्रिंशाङ्गवर्तिः—

पारदनागरसाञ्जनविद्रुमकासीसलोध्रताम्राणि ।
वृत्तत्रिकटुकगैरिकसिन्धूद्भवतुत्थफेनवराः ॥ ६९ ॥
मौक्तिकगन्धिन्याभागिरिकर्णीपुत्रजीवकनकशिफाः ॥७०॥
चिञ्चाषड्विधमौर्वलवणं पिचुमर्दपत्ररसैः ।
पिष्ट्वा ताम्रलिप्ता वर्तिः स्यादधिमन्थपिल्लघ्नी ॥ ७१ ॥

शुद्ध पारद, नागभस्म, रसौंत, प्रवालभस्म, शुद्ध कासीस का चूर्ण, लोध का

चूर्ण, ताम्रभस्म, वृत्त अर्थात् सप्तपर्ण या मांसरोहिणी का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली चूर्ण, शुद्ध गैरिक, सैन्धवलवण, शुद्ध तुत्थक चूर्ण, समुद्र फेन, वरा अर्थात् हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण और आंवलों का चूर्ण, मोतियों की भस्म, गन्धिनी अर्थात् कपूरकाचरी का चूर्ण या सुरामांसी का चूर्ण, आभा अर्थात् बबूल के पञ्चाङ्ग या केवल छाल का चूर्ण, गिरिकर्णी अर्थात् श्वेतापराजिता के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, जियापोता, धत्तूरे की शुद्ध जड़ का चूर्ण, इमली के बीजों की गिरि का चूर्ण, पांशुलवण, समुद्रलवण, सैन्धव लवण, काला नमक, विडनमक और कचिया (सौवर्चल) नीमक इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके ताम्बे की मजबूत कटोरी या खरल में नीम के पत्तों के स्वरस के साथ घोट कर छोटी २ वर्तियां बना के छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। यह वर्ति मधु या जल के साथ घिस कर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से अधिमन्थ और पिल्ल को नष्ट करती है ॥ ६९-७१ ॥

अथ षडङ्गवर्तिः—

कर्पूराञ्जनसीसपारदकणातीक्ष्णानि पिष्ट्वा सकृ-
न्नन्द्यावर्त्तरसैर्विशोष्य मधुना पिष्ट्वा पुनर्भाजने ।
शार्ङ्गे स्फाटिक एव वा विनिहितं शुक्लार्मकाचापहं
तैमिर्यं च निराकरोति सहसा नेत्रेऽञ्जनं सर्वदा ॥ ७२ ॥

शुद्ध कर्पूर, शुद्ध सुरमा, सीसे की भस्म, शुद्ध पारद, पिप्पली का चूर्ण और तीक्ष्ण लौह की भस्म इन सबको समभाग लेकर पत्थर की खरल में डाल के महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को पिण्डतगर या नीम के पत्तों के स्वरस के साथ एक बार खरल करके सुखावें। पश्चात् शहद के साथ घोट कर महीन अञ्जन बना के मृगशृङ्ग या स्फटिक (श्वेत पत्थर) के पात्र अथवा काच की शीशी में भर कर रख देवें। यह अञ्जन प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों की सफेदी (शुक्ल), अर्म, काच तथा तिमिर आदि समस्त रोगों को विनष्ट कर देता है ॥ ७२ ॥

अथ द्वादशाङ्गवर्तिः—

नेपालतुत्थटङ्कणतार्क्ष्यवरात्रिकटुफेनजलजं च ।
जम्बीरनीरपिष्टं काचार्मस्रावतिमिरशुक्लपिल्लघ्नम् ॥ ७३ ॥

नेपाली ताम्र की भस्म, शुद्ध नील तुत्थक का चूर्ण, शुद्ध टङ्कण, तार्क्ष्य अर्थात्

रसाञ्जन, हरड़ का चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण, आंवलों का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, समुद्रफेन और जलशुक्ति या क्षुद्रशङ्खभस्म इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके जम्बीरी निम्बू के रस के साथ दिन भर घोट कर छोटी २ वर्तियां बना के छाया में सुखा के काच की शीशी में भर देवें। यह वर्ति जलादिक के साथ घिस कर नेत्रों में प्रति दिन लगाते रहने से काच, अर्म, नेत्रस्राव, तिमिर, शुक्र और पिल्ल आदि रोगों को नष्ट करती है ॥७३॥

अथ पटलहरेन्द्ररसः—

रुद्रः कपर्दटङ्कणंलाक्षाजम्बीरयोर्द्रवैः।
मासं धान्ये क्षितः सूतः पटलादिरोगहरः ॥ ७४ ॥

पारद की भस्म अथवा रस सिन्दूर को लाक्षा के क्वाथ और जम्बीरी निम्बू के रस में खरल कर के सुखा कर शुद्ध की हुई कोडियों में भर दें। पश्चात् कौड़ियों के मुख को बकरी के दुग्ध में पीसे हुए सुहागे के कल्क से बन्द कर के सुखा कर उन्हें एक मास तक धान के ढेर (समूह) में बन्द कर के रख देवें। महीने बाद कोड़ियों को निकाल कर औषध सहित खरल में महीन चूर्ण कर के छान कर शीशी में भर देवें। इस अञ्जन को गोघृत, मधु या जल के साथ मिला कर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से नेत्र पटल के रोग दूर हो जाते हैं ॥ ७४ ॥

अथ स्वर्णादिवर्तिः—

स्वर्णं वराटिकासूतः सारः पूतिकपत्रजः।
नवनीतेन संयुक्ता वर्तिः पुष्पं चिरन्तनम् ॥ ७५ ॥

स्वर्ण की भस्म, कौड़ियों की भस्म तथा शुद्ध पारद इन तीनों को सम भाग लेकर खरल में महीन कज्जली के समान चूर्ण बना कर पूतिकरञ्ज के पत्तों के स्वरस के साथ तीन दिन तक घोट कर छोटी २ वर्तियां बना लेवें। इस वर्ति को गाय के नवनीत (मक्खन) के साथ घिस कर नेत्रों में लगाने से बहुत पुराना नेत्रों का पुष्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७५ ॥

अथ विषाद्यञ्जनम्—

विषं धात्रीफलरसैर्दिनैकं परिभावितम्।
अञ्जनं शङ्खसहितं प्रगाढतिमिरप्रणुत् ॥ ७६ ॥

शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण तथा शङ्ख भस्म इन दोनों को सम भाग लेकर

आंवले के फलों के स्वरस या क्वाथ के साथ रात भर आप्लावित कर के (भींगो कर) दूसरे दिन दिनभर घोट कर शुष्क अञ्जन बना के शीशी में भर देवें। यह अञ्जन गो घृत या शहद के साथ प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से दीर्घ कालीन तिमिर रोग को नष्ट कर देता है ॥ ७६ ॥

अथ पुष्पहराञ्जनम्—

शम्बूकं वा वराटं वा दग्धं सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ।
अञ्जनं नवनीतेन हन्ति पुष्पं चिरन्तनम् ॥ ७७ ॥

शम्बूक (क्षुद्रशङ्खया जलशुक्ति) की भस्म, अथवा कौड़ियों की भस्म गाय के ताजे घृत या मक्खन के साथ मिला कर प्रतिदिन नत्रों में लगाते रहने से चिर कालीन पुष्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

अथ शिग्रुमूलाद्याश्च्योतनम्—

शिग्रुमूलं वचां क्षौद्रैर्घृष्ट्वा नेत्रं प्रपूरयेत् ॥ ७८ ॥

सहजन की जड़ का चूर्ण और वचा का चूर्ण इन दोनों को सम भाग लेकर शहद् में मिला के प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों के विकार दूर हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अथ नेत्रशूलघ्नमाश्च्योतनम्—

निष्पिष्याऽऽर्द्रां निशां वाथ सद्यः शूले सुखावहम् ॥ ७९ ॥

गीली हल्दी की गांठ (कन्द) को पत्थर पर महीन पीस कर नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों का शूल नष्ट हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ पौनर्नवाञ्जनम्—

श्वेतं पुनर्नवामूलं जलेनाञ्ज्यं च शूलनुत् ॥ ८० ॥

सफेद गदपूर्णा (साठेड़ी) की जड़ को जल के साथ पत्थर अथवा सील पर महीन पीस कर कल्क बना लेवें। इस प्रकार का कल्क प्रतिदिन बना कर नेत्रों में लगाने से नेत्रशूल दूर हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ नेत्रजलस्रावहरोयोगः—

वक्ररोमहराञ्च—

श्वेतं पुनर्नवामूलं घृतघृष्टं समञ्जयेत् ।
जलस्रावं निहन्त्याशु, तन्मूलं च निशायुतम् ॥ ८१ ॥

अञ्जयेद्वक्ररोमाणि न भवन्ति कदाचन ॥ ८२ ॥

सफेद पुनर्नवा (गद पूर्णा) की जड़ को गाय के घृत में घिस कर प्रतिदिन नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों से जल का गिरना बन्द हो जाता है तथा उसी की जड़ और हल्दी की गांठ इन दोनों को जल या गोघृत के साथ घिस कर नेत्रों में तथा भोओं पर लगाने से वहां पर टेढे मेढे उगने वाले बाल सीधे हो जाते हैं ॥ ८१-८२ ॥

अथ नृकपालाञ्जनम्—

निर्घृष्टं नृकपालं तु नारीस्तन्येन चाञ्जयेत् ।
शूलं सतिमिरं हन्ति पुष्पं सर्पाक्षिदुग्धतः ॥ ८३ ॥

मनुष्य के शिर की अस्थि को स्त्री के दुग्ध में घिसकर नेत्रोंमें प्रतिदिन लगाते रहने से अन्धकार (आंखों के सामने दिन में सहसा अन्धेरे का सा छा जाना) और नेत्र शूल ये दोनों नष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य के शिरकी अस्थि को सर्पाक्षि के दुग्ध में घिसकर नेत्रों में लगाते रहने से नेत्रों की फूली कट कर धीरे २ निकल जाती है ॥ ८३ ॥

अथ काचान्ध्यहराञ्जनम्—

बीजपूररसैर्घृष्टं विषतुत्थसितायुतम् ।
अञ्जनं कारयेद्रात्रौ काचमा(१)न्ध्यं च नाशयेत् ॥ ८४ ॥

शुद्ध वत्सनाभ विषका चूर्ण, शुद्धनीलतुत्थक चूर्ण और चीनी अथवा शुद्ध मनःशिला इन तीनों को समभाग लेकर बिजौरे निम्बू के रस में घोंट कर सुखाके शीशी में भर देवें । यह अञ्जन गोघृत या जल के साथ प्रतिदिन रात्रि के समय आंखों में लगाते रहने से काचरोग और आन्ध्य (दृष्टिमान्द्य या नक्तान्ध्य) रोग को नष्ट कर देता है ॥ ८४ ॥

अथ रात्र्यन्धहराञ्जनम्—

अजस्य कृष्णमांसान्तः पिप्पलीमरिचं क्षिपेत् ।
सीवयित्वा घृतैः पच्याद्घटिकान्ते समुद्धरेत् ॥
मध्वाज्यस्तन्यसम्पिष्टं रात्र्यन्धस्याञ्जनं हितम् ॥ ८५ ॥

(१) "शिला" इति पाठान्तरम् ।

बकरे के कृष्णमांस अर्थात् यकृत् (Liver) को निकाल कर उसमें चीर कर गाढा कर के पिप्पली चूर्ण तथा मरिच चूर्ण इन दोनों को समभाग लेकर भर के अच्छी तरह सीं (सोवनकर) देवें। पश्चात् उसका उबलते हुए गोघृत में डालकर एक घड़ी तक पकाकर निकाल लेवें। प्रायः पकाने से मांस के जलांश का नाश होकर वह ठीक तरह से कर्कश (कड़ा) हो जाय तब निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को शहद्, घृत, अथवा दुग्धमें पीसकर नेत्रों में लगाते रहने से रात्र्यन्धरोग नष्ट हो जाता है ॥ ८५ ॥

अथाभिष्यन्दहरो योगः—

असकृच्छीततोयेन सिञ्चेन्नेत्राभिष्यन्दजित् ॥ ८६ ॥

बार२ आंखों पर शीतल जल को छिड़कते रहने से नेत्राभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है। प्रायः प्रातःकाल उठते ही ताम्रपात्र में रखे हुए बासी जल से मुखको भरकर फिर आंखो पर भी जल छिड़कें। इस तरह पांच या ६ वार करें, मुख में भरे हुए शीतल जल को नेत्रों पर जल छिड़कने के पश्चात् निकाल देवें। तथा फिर भरकर फिर पानी छिड़कें ॥ ८६ ॥

अथ रात्र्यन्धे व्योषाञ्जनम्—

अजापित्तगतं व्योषं धूमस्थाने विशोष्य च।
चिरबिल्वरसैर्घृष्टं रात्र्यन्धस्याञ्जनं हितम् ॥ ८७ ॥

बकरी के पित्त में त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली) के महीन चूर्ण को डालकर अच्छी तरह खरल करके धूम्रस्थान अर्थात् रसोई घरके धूएं की उष्णता से उसे सुखाकर शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण को करञ्ज की जड़ या पत्तों के स्वरस में घोटकर आंखों में प्रतिदिन लगाते रहने से रात्र्यन्ध रोग में विशेष लाभ होता है ॥ ८७ ॥

अथ रात्र्यन्धे मरिचाञ्जनम्—

मरिचं मत्कुणे रक्ते रात्र्यन्धहरमञ्जनम् ॥ ८८ ॥

मरिचों को खरल में महीन पीसकर वस्त्र से छान लेवें। पश्चात् उस चूर्ण को मत्कुण (खट्मल) के रक्त में दिन भर घोटकर अञ्जन बना लेवें। यह अञ्जन नक्तान्ध्यरोग में विशेष लाभ करता है ॥ ८८ ॥

अथ तिमिरहराञ्जनम्—

गन्धकाद्द्विगुणः सूतः सौवीरं चाष्टमांशतः ।
कपित्थरससम्पिष्टमञ्जनं तिमिरप्रणुत् ॥ ८९ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये उन्माद-वातापस्मारनेत्ररोगाणामुपचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

शुद्ध गन्धक १ तोला, शुद्ध पारद दो तोला तथा दोनों की अपेक्षा अष्टमांश शुद्ध सौवीराञ्जन लेकर सब की खरल में महीन कज्जली बनाकर कपित्थ (कैथ) के पत्रों के स्वरस या छाल के क्वाथ से दिनभर घोटकर सुखा के अञ्जन बना लेवें। यह अञ्जन प्रतिदिन आंखों में लगाते रहने से तिमिर रोग को नष्ट कर देता है। इस अञ्जन को घृत या मधु के अन्दर मिलाकर लगाना चाहिए ॥ ८९ ॥

अथ नेत्ररोगे पथ्यापथ्यविमर्शः—

वार्ताककर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकञ्च ।
पुनर्नवा मार्कवकाकमाची पत्तूरशाकानि कुमारिका च ॥ १ ॥
सेको मनोवृत्तिरथांघ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च ।
लावो मयूरो वनकुक्कुटश्च कूर्मः कुलिङ्गोऽथ कपिञ्जलश्च ॥ २ ॥
विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं दोषचयं निहन्ति ।
आश्चोतनं लङ्घनमञ्जनञ्च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणञ्च ॥
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ ३ ॥
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थो लोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहञ्च ।
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥ ४ ॥
शालितण्डुलगोधूममुद्गसैन्धवगोघृतम् । गोपयश्च सिताक्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे स्मृतम् ॥ ५ ॥

इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रुवायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधान् ।
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणञ्च स्नानं निशाभोजनमातपञ्च ॥ १ ॥
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ।
कालिङ्गपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरा मांसमजाङ्गलञ्च ॥ २ ॥
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम् ।
नरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु दृगाश्रयेषु ॥ ३ ॥

सर्वशाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् । जीवन्ती वास्तुमत्स्याक्षी मेघनादः पुनर्नवा ॥४॥
मापारनालकटुतैलजलावगाहक्षुद्राक्षुधैश्च सुरतै र्निशि जागरैश्च ।
शाकाम्लमत्स्यदधिफाणितवेसवारैश्चक्षुः क्षयं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च ॥५॥

इत्यपथ्यानि ।

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायामुन्मादवातापस्मार-नेत्ररोगचिकित्सनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथ कर्णरोगः—

तत्रादौकर्णरोगनामानि—

शूला दोषचयाभिभूतिजनिताः पञ्च प्रतीनाहरुक्
कण्डूविद्रधिपालिशोषपरिपोटोत्पातलेह्यर्बुदाः ।
शोफार्शः क्रिमिकूचिकर्णकविदार्य्युग्मन्थसत्तन्त्रिका·
नादः पिप्पलिदुःखवृद्धिबधिरास्ते पूतिकर्णेन च ॥ १ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त और सन्निपात इस प्रकार से इन पांच दोषों की दुष्टि हो जाने के कारण पांच प्रकार के कर्णशूल रोग होते हैं तथा प्रतिनाहरोग, कर्णकण्डू, कर्णविद्रधि (कर्णपाक), कर्णपालिशोष(१) कर्णपरिपोट, कर्णोत्पात, कर्णलेह्य, कर्णार्बुद, कर्णशोफ, कर्णार्श, कर्णक्रिमि, कूचिकर्णक(२) कर्णविदारिका, कर्णोन्मन्थ, कर्णसत्तन्त्रिका(३) कर्णनाद, कर्णपिप्पली(४) कर्णदुःखवृद्धि, कर्णबधिर और पूतिकर्ण ये २० प्रकार के कान के रोग उपर्युक्त पञ्चविधकर्णशूल के साथ मिला कर देने से २५ प्रकार के कर्णरोग होते हैं ॥ १ ॥

---

(१) वाग्भटे "शिरास्थः कुरुते वायुः पालिशोषं तदाह्वयम् ।
(२) गर्भेऽनिलात् सङ्कुचिता शष्कुली कूचिकर्णकः इति वा० ।
(३) "कृशा दृढा च तन्त्रीवत् पाली वातेन तन्त्रिका इति वा० ।
(४) पिप्पलीसमानकर्णमांसाङ्कुरः तथा चोक्तम्, "एको नीरुगनेको वा गर्भे मांसाङ्कुरः स्थिरः" इति ।

अथ कर्णरोगचिकित्सा—

तत्रादौ कर्णरोगहरीवज्रादिवटिका—

वज्रवैक्रान्तविमलतुत्थनागविषान्वितैः।
तुल्यपारदगन्धाश्ममाक्षिकैः कज्जलीकृता ॥ २ ॥
रसोनार्द्रकशिग्रूणामरण्या मूलकस्य च।
पृथग्रसैः कदल्याश्च सप्तधा परिभावयेत् ॥
एवं सुपिष्ट्वा वल्लेन सेवितः कर्णरोगनुत् ॥ ३ ॥

हीरे की भस्म, वैक्रान्तमणि की भस्म, विमल (रौप्यमाक्षिक) की भस्म, शुद्धनील तुत्थक का चूर्ण, नाग (सीस) की भस्म, शुद्धवत्सनाभ विष का चूर्ण, शुद्धपारद, शुद्धगन्धक और स्वर्णमाक्षिक की भस्म इन सब को सम भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बनाकर उस में शेष द्रव्य मिला के सब को दिन भर एकत्र घोट कर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को रसोन (लहसुन की गांठ), अद्रक, शिग्रु (सहजन) की जड़ अरणी की जड़, मूली, और केले की जड़ या खम्भ इन में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार क्रम से खरल कर के तीन २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें। यह वज्रादि वटिका प्रतिदिन सेवन करते रहने से सब प्रकार के कर्णरोगों को नष्ट कर देती है ॥ २–३ ॥

अथ कर्णामयघ्नतैलम्—

कुष्ठशुण्ठीवचाहिङ्गुशताह्वाशिग्रुसैन्धवैः।
बस्तमूत्रैः शृतं तैलं सर्वकर्णामयापहम् ॥ ४ ॥

कूठ, सोंठ, बचा, हींग, सौंफ, सहजने की छाल का चूर्ण और सैन्धव लवण इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल से चतुर्गुण बकरे का मूत्र लेकर सब को लोहे की कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि द्वारा पाक करें। जब समस्त कल्क का और मूत्र का जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् तैल मात्र शेष रह जाय तब चूल्हे से कड़ाही को उतार कर स्वाङ्गशीतल कर के तैल को छान कर शीशी में भर देवें। इस तैल को कानों में टपकाने से सर्व प्रकार के कर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ क्रिमिकर्णारितैलम्—

अब्धिफेनो वचा शुण्ठी सैन्धवं च समं समम्।
समतैलार्द्रकद्रावैः पक्वे तस्मिन्पलद्वये ॥ ५ ॥
पूर्वोक्तचूर्णं कर्षांशं क्षिप्त्वोत्तार्य सुशीतलम्।
तत्तैलं प्रक्षिपेत्कर्णे ध्रुवं गोमक्षिका व्रजेत् ॥ ६ ॥

समुद्र फेन, वचा का चूर्ण, सोंठ का चूर्ण और सैन्धव लवण इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर कल्क बना लेवें। पश्चात् कल्क से चतुर्गुण तैल और तैल के बराबर ही आदी का स्वरस लेकर सब को लोहे की कड़ाही में डाल कर अच्छी तरह से तैल को सिद्ध कर लेवें। सिद्ध हुए तैल को वस्त्र से छान कर उस में से दो पल भर लेकर उस में उपर्युक्त चारों द्रव्यों का एक २ कर्ष भर महीन चूर्ण मिला कर शीशी में भर देवें। इस तैल की तीन या चार बून्दे प्रतिदिन कान में डालते रहने से समस्त प्रकार के कर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं तथा कान में यदि गाय, बैल, कुत्ते आदि की मक्षिका या अन्य जन्तु विशेष घुस जांय तो वे भी इस तैल के डालने से शीघ्र बाहर निकल जाते हैं ॥ ५-६ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कर्णशूले लवणार्द्रकप्रयोगः—

कर्णशूलहरः क्षेप्यो लवणार्द्रकयो रसः ॥ ७ ॥

अद्रक के स्वरस में थोड़ा सा नीमक मिला कर कान में टपकाने से कान का शूल नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

कर्णशूले तिलपर्णीप्रयोगः—

तिलपर्णीद्रवं तैलं कोष्णं कर्णे प्रपूरयेत् ॥ ८ ॥

तिलपर्णी (तिलोनी या लाल चन्दन) के क्वाथ में तिलतैल को पकाकर शीशी में भर देवें। इस तैल को कुछ गरम करके कान में टपकाने से कर्णशूल आदि कान के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

अर्कपत्रप्रयोगः—

अर्कपत्रद्रवं तैलं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ॥ ९ ॥

आक के पत्तों के स्वरस में तैल पकाकर कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट हो

जाता है, अथवा केवल आक के पत्तों के रस को गरम करके कान में टपकाने से कर्णशूल नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

लशुनरसप्रयोगः—

लशुनस्य रसं कोष्णं पूरयेत्कर्णशूलनुत् ॥ १० ॥

अथवा लहसून की गांठ का स्वरस निकाल कर उसे कुछ गरम करके प्रतिदिन कानों में टपकाने से कर्ण शूल नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

पूयहरो मेघनादस्वरसः—

मेघनादद्रवैः पूर्णे कर्णे पूयः प्रशाम्यति ॥ ११ ॥

मेघनाद अर्थात् चोलाई की जड़ या पत्तों के स्वरस को कानों में टपकाने से कान का पूय (मवाद) बहकर निकल जाता है तथा पूय बनना बन्द हो जाता है॥११॥

बाधिर्यहरं मुषल्यादिचूर्णम्—

मुषलीबाकुचीचूर्णं खादेद्वाधिर्यशान्तये ॥ १२ ॥

मुषलीकन्द और वाकुची के समभाग चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करते रहने से बाधिर्यरोग नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

कर्णमूलस्फोटहरः केतकादिलेपः—

केतकं शिग्रुलवणमारनालेन पेषयेत् ।
कर्णमूलस्थितं स्फोटं सोष्णलेपाद्विनाशयेत् ॥ १३ ॥

केवड़े की जड़, सहजन की छाल और सैन्धव लवण इन तीनों को समभाग लेकर ओखली में कूटकर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को आरनाल (काञ्जी) से पीस कर कल्क बनाके उष्णकर कर्णमूल पर उत्पन्न हुए शोथ पर लगाने से वह नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कर्णगलादिस्फोटहरः पुत्रजीवलेपः—

पुत्रजीवफलस्यैव मज्जा जलनिपेषिता ।
लेपात्कर्णे गले कक्षे स्फोटं हन्त्युरुमूलकम् ॥ १४ ॥

पुत्रजीव (जीयापोता) के फल की मज्जा को जल में पीसकर कान, गले कक्षा और उरुप्रान्त की उठी हुई गांठो पर लगाने से वे बैठ जाती हैं ॥ १४ ॥

गोमक्षिकानिःसारणार्थं तगरचर्वणादिकम्—

तगरब्रह्मवृक्षस्य दन्तैर्मूलानि चर्वयेत् ।

रसेन श्रवणं तस्य पूरयेदतियत्नतः ॥
गोमक्षिका विनिर्याति पूरणस्य विधानतः ॥ १५ ॥

तगर और ढाक की जड़ को दांतो से चबा कर स्वरस निकाल के कर्ण में टपकाने से गाय वैल आदि जानवरों की मक्षिकाएं कान से निकल जाती हैं। उपर्युक्त तगरादिक की जड़ को कूटकर स्वरस निकाल के कान में टपकाना चाहिए तथा दांतों से जड़ को चबा२ कर थूक देना चाहिए ॥ १५ ॥

कर्णपालीवर्धको मुषलीप्रयोगः—

मुशलिकन्दचूर्णं हि महिषीनवनीततः।
लोलयेद्रोधयेद्भाण्डे धान्यराशौ निधापयेत् ॥
सप्ताहादुद्धृतं लेपः कर्णपालीं विवर्धयेत् ॥ १६ ॥

मुषलीकन्द का महीन चूर्ण लेकर उसमें समभाग या अर्धभाग नवनीत (ताजा घृत या मक्खन) मिलाकर खरल में अच्छी प्रकार घोटकर किसी पात्र में भर के उसका मुख बन्दकर १ सप्ताह तक धान के ढेर में रख देवें। एक सप्ताह के पश्चात् इसको निकाल लेवें। इस कल्क के प्रतिदिन कर्ण पाली पर प्रलेप करने से नष्ट हुई कर्णपाली बढने लगती है ॥ १६ ॥

कर्णवर्धकचर्मचेटप्रयोगः—

चर्मचेटस्य रक्तेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥ १७ ॥

चीमगादड़ के रक्त (खून) का लेप करने से नष्ट हुआ कान फिर से बढने लगता है। प्रायः फोड़े आदि के कारण कान का बाहरी भाग गल कर गिर जाता है ऐसी दशा में उसके बढाने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १७ ॥

कर्णवृद्धिकरो वराहतैलप्रलेपः—

वराहोत्थेन तैलेन लेपात्कर्णौ विवर्धते ॥ १८ ॥

वराह की चर्वी को नष्ट हुए कर्णपर लेप करने से कर्ण की वृद्धि होती है॥१८॥

अथान्ययोगाः—

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः। सुखोष्णैः पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥१॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां स्वरसो मूलकस्य च। कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥२॥
अष्टानामपि मूत्राणां मूत्रेणान्यतमेन वै। कोष्णेन पूरयेत् कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥३॥
अर्कपत्रपुटे दग्धः स्नुहीपत्रोद्भवो रसः। कदुष्णः पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥४॥
बिल्वगर्भं पचेत्तैलं गोमूत्राजपयोन्वितम्। बाधिर्यं पूरयेत्तेन कर्णौ सकृत्शतजित् ॥५॥

हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित् । पञ्चवल्कलचूर्णञ्च कपित्थस्वरसान्वितम् ॥
मधुना योजितं हन्यात् कर्णस्रावं प्रपूरयेत् ॥ ६ ॥
कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः । पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥७॥

अथ कर्णरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः । गोधूमः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥१॥
लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः । पटोलं शिग्रु वार्ताकुं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥२॥
रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम् । उपयुक्तं यथा दोषमिदं कर्णामये हितम् ॥३॥

इति पथ्यानि—

अथापथ्यानि—

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु । कण्डूयनं तुषारश्च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥१॥

अथ नासारोगाः—

षट् पीनसाश्च मलसञ्चयरक्तदुष्टैः
पूयास्रदीप्तिपिटिकार्बुदपूतिनासाः ॥
आस्रावनाहपरिशोषभृशक्षवार्शः
पाकस्त्वपीनसयुतैश्च गदा नसि स्युः ॥ १९ ॥

इति कर्णरोगः—

दूषित हुए वात, पित्त, कफ और इनके सन्निपात तथा मल के सञ्चय और रक्त की दुष्टि से पीनस रोग के ६ भेद होते हैं। इनके अन्दर नाक से पूय (मवाद) और रक्त निकलता है। नासिका के बाहर तथा भीतर चमकती हुई लालवर्ण की पिटिकाएं (फुन्सियां) पैदा हो जाती हैं। नासिका में अर्बुद उत्पन्न होता है तथा दुर्गन्ध निकलती है। नाक से पानी का स्राव होता है तथा नाह (प्रतिनाह) शोष, भृशक्षव (क्षवथु), अर्श और पाक ये रोग तथा अपीनस आदि नासिका में होते हैं ॥ १९ ॥

अथ मणिपर्पटीरसः—

वज्रं मरकतं पुष्पमिन्द्रनीलं सुचूर्णितम् ।
रसहिङ्गुलगन्धं च कज्जलीं कारयेद्भिषक् ॥ २० ॥
भावयेत्तां लोहपात्रे पर्पट्याकारतां नयेत् ।
निर्गुण्डीतुलसीशिग्रुधुस्तूररविवह्निजैः ॥ २१ ॥
रसैर्व्योषवरारम्भासुरसैश्चापि भावयेत् ।

आर्द्रकस्य रसेनापि सप्तधा परिभावयेत् ॥ २२ ॥
एवं सिद्धो रसो नाम्ना विख्याता मणिपर्पटी ।
सेविता गुञ्जया तुल्या निहन्यान्नासिकागदान् ।
पथ्योपचारादवशात्सर्वव्याधीन्विशेषतः ॥ २३ ॥

हीरे की भस्म, मरतकमणि (पन्ना) की भस्म, पुष्परागमणि की भस्म, इन्द्रनीलमणि की भस्म, शुद्धपारद, शुद्धहिङ्गुल और शुद्ध गन्धक इन सब को समभाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक और हिङ्गुल आदि की महीन कज्जली बनाकर उसमें शेष हीरकादिक भस्में मिलाकर अच्छी तरह सबको घोटकर कलईदार लोहे की घृतलिप्त कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि वाले चूल्हे पर चढा कर घृतलिप्त कलच्छी से चलाते रहें । जब समस्त चूर्ण द्रुत हो (पिघल) जाय तब उसको गीले गोबर के चबूतरे के ऊपर विछाये हुए हरे केले के पत्ते पर गिराकर केले के हरे पत्ते से ही ढककर चपटी कर के पर्पटी बना लेवें । पश्चात् स्वाङ्गशीतल पर्पटी को खरल करके महीन चूर्ण कर लेना चाहिए पश्चात् निर्गुण्डी, तुलसी, शिग्रु (सहजन) की छाल, धत्तूरे की जड़, आक की जड़, चित्रक् की जड़, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली), त्रिफला (हरड़, बहेड़े, आंवले), केले की जड़ या खम्भ और सफेद तुलसी तथा अद्रक इन प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार भावित करके घोट कर सुखा के चूर्ण बना कर शीशी में भर देवें । इस प्रकार से सिद्ध हुआ यह रस मणिपर्पटी नाम से विख्यात है । यह मणिपर्पटी एक रत्ती भर प्रति दिन मधु के साथ सेवन करते रहने से सर्व प्रकार के नासिका के रोगों को नष्ट कर देती है । यह मणिपर्पटी यथाव्याधिहर पथ्य और भोजन पानादि उपचारों के साथ सेवन करने से सर्व प्रकार की व्याधियों को नष्ट कर देती है ॥ २०–२३ ॥

अथ पूयास्रलक्षणम्—

पूयास्रमतिदुर्गन्धि नासायामतितापकृत् ॥ २४ ॥

पूयास्र के होने पर नासा से अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त स्राव निकलता है तथा नासा पटल और नासारन्ध्रों में अत्यन्त जलन भी रहती है ॥ २४ ॥

अथ सामान्योपायः—

कृतं नस्येन हन्यात्तच्छ्वेतजीरं सितायुतम् ॥ २५ ॥

सफेद जीरे को अच्छी तरह महीन कूट पीस कर कपड़े से छान लेवें। पश्चात् इसमें से थोड़े से चूर्ण को पानी में घोल कर उसमें थोड़ी सी मिश्री मिला कर नाक में टपकाने से या नस्यविधि से सूंघने से नासा के सर्वविकार तथा विशेष कर पूयास्र आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २५ ॥

कुङ्कुमादिनस्यम्—

घृताक्तं कुङ्कुमं घृष्टं नस्यं पीनसजिद्भवेत् ॥ २६ ॥

केशर को पत्थर पर गोघृत के साथ पीस कर उसका प्रतिदिन नस्य लेने से पीनसरोग नष्ट हो जाता है ॥ २६ ॥

अथ नासारोगे पथ्यापथ्यम्—

स्नेहः स्वेदःशिरोऽभ्यङ्गः पुराणायवशालयः। कुलित्थमुद्गयोर्यूषःग्राम्याजाङ्गलजारसाः॥१॥
वार्ताकं कुलकं शिग्रुःकर्कोटं बालमूलकम् । लशुनं दधि तप्ताम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥२॥
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णञ्च लघुभोजनम्।नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथाबलम् ॥३॥

इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगान् शुचं द्रवम्।भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत्॥१॥

अथ कामलाहराञ्जनम्—

जलेन पेषयेद्धिङ्गुमञ्जनात्कामलां जयेत् ॥ २७ ॥

हींग को पत्थर पर जल से घिस कर नस्य लेने से पीनसरोग दूर हो जाता है तथा चिरकालीन पीनसरोग के कारण उत्पन्न हुए कामलारोग को भी अञ्जन करने से हींग नष्ट कर देती है ॥ २७ ॥

अथ कामलाहरमञ्जनान्तरम्

तद्वत्तण्डुलतोयेन ह्याकुलीमूलमञ्जयेत् ।
कामलां हन्ति नो चित्रं नासारोगप्रसङ्गतः ॥ २८ ॥

आकुली (नकुलकन्द या अङ्कोल) की जड़ को चांवलों के धोवन के साथ पत्थर (सील) पर पीस लर आंखों में अञ्जन करने से चिरकालीन नासारोग के प्रसङ्ग या कारण से उत्पन्न हुआ कामलारोग नष्ट हो जाता है ॥ २८ ॥

अथ मुखरोगाः—

एको गण्डभवो गदः षडुदिता जिह्वोद्भवास्तालुजा-
श्चाष्टावष्ट च मस्तजाश्च दशनोद्भूता दशौष्ठोद्भवाः
सन्त्येकादश च त्रयोदश गदा दन्तस्य मूलोद्भवाः

कण्ठेऽष्टादश चोदिता वदनजाः पञ्चाधिका सप्ततिः ॥२६॥

गण्ड (कपोल) प्रदेश में १ प्रकार का रोग, जिह्वा के भिन्न भागों में उत्पन्न होने वाले छ रोग, तालुप्रदेश के ८ रोग, मस्तिष्क सम्बन्धी ८ रोग, दांतों के मसूढ़ों में होने वाले १० रोग, ओष्ठों के ११ रोग, दांतों की जड़ों में होने वाले १३ रोग तथा गले (कण्ठ) के अन्दर होने वाले १८ रोग इस तरह मुख के भिन्न २ भागों में ७५ प्रकार के रोग होते हैं ॥ २९ ॥

विमर्शः—सुश्रुत में गण्डरोग का वर्णन नहीं अपि तु उसको हनुमोक्षरोग माना गया है तथैव सुश्रुते "वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धौ विघट्टिते । हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः" इति ।

यहां पर जो ८ प्रकार के मस्तिष्करोग बताये गये है उन्हें शिरोरोग से भिन्न समझना चाहिए। कहीं २ शास्त्रों में मुखरोगों की संख्या में भेद भी मिलता है। भोज ने ६९ प्रकार के मुख रोगों की गणना लिखी है यथा—दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पञ्च च । नव तालुनि जिह्वायां पञ्च सप्तदशामयाः । कण्ठे त्रयः सर्वसराः एकः षष्टिश्चतुःपराः ॥ इति । एवं भावमिश्रने ६७ प्रकार के मुखरोग लिखे हैं, यथा—स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्त मूलेषु दश षट् तथा । दन्तेऽष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नवतालुनी । कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्ता त्रयः सर्वसराःस्मृताः । एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥इति।

अथ मुखरोगचिकित्सा—

तत्रादौ ताप्यादिवटी

ताप्याभ्रतुत्थकुनटीराजावर्तशिलाजतु ।
गुग्गुलुर्हरवीर्यं च मुखरोगनिबर्हणम् ॥ ३० ॥

स्वर्णमाक्षिक की भस्म, अभ्रक की भस्म, शुद्ध किया हुआ नीला थोथा या उसकी भस्म, शुद्ध मनःशिला, शुद्ध राजावर्त की भस्म, शुद्धशिलाजीत, शुद्ध गूगल और पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर इन सब को समभाग लेकर खरल में जल के साथ एकत्र घोट कर तीन २ रत्ती भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ वटी प्रनिदिन सेवन करते रहने से मुख रोग को नष्ट कर देती है ॥ ३० ॥

अथ धातुबद्धरसगुटिका—

रूप्यादिचूर्णमादाय पिष्टीं साधय यत्नतः ।
निम्बुमध्ये विनिक्षिप्य दिनानां पञ्च धारय ॥ ३१ ॥
तालचूर्णं समादाय भानुदुग्धेन भावयेत् ।

तन्मध्ये गुलिकां क्षिप्त्वा पचस्व तिलतैलके ॥ ३२ ॥
दोलायन्त्रे निबध्यैनां यत्नेन दिवसत्रयम् ।
मलापकर्षणं कृत्वा मधुभाण्डे निधापयेत् ॥
मुखे धारय दन्तानां दार्ढ्याय गुटिकामिमाम् ॥ ३३ ॥

चांदी, वङ्ग, नाग यशद आदि धातुओं में से किसी एक या अनेक की भस्म लेकर उसको समभाग पारद के साथ घोट कर कज्जली बना लेवें। पश्चात् इस कज्जली को लकुच (बड़हर) के स्वरस या क्वाथ के साथ घोट कर पिष्टी (लकुचद्रवसूताभ्यां तारपिष्टीं प्रकल्पयेत्) बना लेवें। पश्चात् इस पिष्टी को पके हुए बड़े २ निम्बू के अर्द्ध भाग में भर कर शेष अर्द्ध भाग के साथ जोड़ कर सन्धिबन्धन कर देना चाहिए। इस तरह समग्र पिष्टी को निम्बुओं में भर कर पांच दिन तक इसी तरह रहने देवें। छठे दिन निम्बुओं में से समस्त पिष्टी को निकाल कर खरल में एकत्र कर के घोट कर दो माशे भर की गोलियां बना लेनी चाहिए। पश्चात् शुद्ध हरताल लेकर आक के दुग्ध में खरल कर के कल्क बना लेना चाहिए। फिर इस कल्क से उन गोलियों को अच्छी तरह से लिप्त (लपेट) कर के तिल के तैल में एक प्रहर तक पाक करना चाहिए। पश्चात् तिल तैल से स्वाङ्गशीतल हुई गोलियों को निकाल कर दोलायन्त्र की विधि से अर्थात् इन गोलियों को एक शुद्ध (स्वच्छ) और दृढ श्वेत वस्त्र में पोट्टली के रूप में बांध कर एक हण्डिका में काञ्जी भर के हण्डिका की ग्रीवा में आमने सामने बने हुए छिद्रों में एक पतली तथा दृढ लकड़ी डाल कर उस के मध्य में पोट्टली को बांध कर हण्डिका की काञ्जी में लटका देवें। हण्डिका की पेन्दी में पोट्टली का स्पर्श न हो वैसी बांधनी चाहिए। पश्चात् हण्डिका को मन्दाग्नि वाले चूल्हे पर चढ़ाकर तीन दिन तक मलापकर्षण करने के लिये स्वेदन करना चाहिए। काञ्जी की कमी होने पर फिर हण्डिका में काञ्जी भरते रहना चाहिए। इस तरह गोलियों के मल के अपकर्षण (नाश) हो जाने के पश्चात् चौथे दिन पोट्टली से उन्हें निकाल कर मृतबाण या काच के पात्र में भरे हुए शहद में डाल कर मुख बन्द कर के रख देवें। जब किसी मनुष्य के दांत कमजोरी अथवा अन्य विकृति के कारण हिलते हों ऐसी दशा में उन्हें दृढ करने के लिए शहद में से एक गोली निकाल कर उस को हिलते हुए दांत के नीचे या

आस पास रख कर चूसने के लिए देवें । इस तरह इस गुटिका को दन्तों के दृढ़ करने के लिये कुछ देर तक मुख में धारण करते रहना चाहिए ॥ ३१-३३ ॥

अथ महासरस्वतीचूर्णम्—

अश्वगन्धाऽजमोदा च वचा कुष्ठं कटुत्रयम् ।
शतपुष्पा ब्रह्मबीजं सैन्धवं च समं समम् ॥ ३४ ॥
एतदर्धं वचार्धं च चूर्णितं मधुसर्पिषा ।
भक्षयेत्कर्षमात्रं तु जीर्णान्ते क्षीरभोजनः ॥ ३५ ॥
सहस्रग्रन्थधारी स्यान्मूको वा वाक्पतिर्भवेत् ।
महासरस्वतीचूर्णं बुद्धिजाड्ये परं हितम् ॥ ३६ ॥

असगन्ध, अजमोद, वचा, कूठ, सोंठ, मरिच, पीपल, शतपुष्पा (सौंफ), पलाश (ढाक) के बीज और सैन्धव लवण इन सबको सम भाग अर्थात् प्रत्येक को एक २ तोले भर लेकर लोहे की ओखली में कूट कर महीन चूर्ण कर लेवें । पश्चात् इन सबके चूर्ण के बराबर वचा का चूर्ण बनाकर दोनों चूर्णों को परस्पर मिलाकर शीशी में भर देवें । कुछ टीकाकारों ने वचा को छोड़ कर असगन्ध से सैन्धव पर्यन्त द्रव्यों को समभाग तथा इनके बराबर वचा चूर्ण लेकर दोनों को मिला के योग बनाने को लिखा है । इस प्रकार इस चूर्ण में से एक कर्ष (१६ मा०) भर चूर्ण लेकर विषमभाग गृहीत घृतमधु के साथ मिलाकर प्रति दिन सेवन करते रहना चाहिए तथा औषध जीर्ण होने (भूख लगने) पर दुग्ध के साथ भात आदि सौम्य पदार्थों का भोजन करना चाहिए । अथवा केवल दुग्ध ही का ग्रहण करना चाहिए । इस प्रकार प्रायः ४० दिन तक इस योग के ब्रह्म-चर्यादि नियम पूर्वक सेवन करने से सहस्र ग्रन्थों के विषय को कण्ठस्थ करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है तथा मूक पुरुष भी बृहस्पति के समान शास्त्रादि में चतुर हो जाता है । यह महासरस्वती नामक चूर्ण बुद्धिजाड्य रोग में अर्थात जड़बुद्धि को नष्ट करने में अत्यन्त गुणकर एवं श्रेष्ठ है ॥ ३४-३६ ॥

अथ मुखरोगादिगलगण्डमालारोगाणां
सामान्योपायाः—
तत्रादौ गलकीलके आमलकप्रयोगः—
विषतिन्दुकादि वटी च—

चूर्णं त्वामलकस्यैव गवां क्षीरेण पाययेत् ॥

गलकीलकनुत्यर्थं विषतिन्दुं सनागरम् ॥ ३७ ॥
हरीतक्या च संयुक्तं मुखे धारय सन्ततम् ॥ ३८ ॥

आंवले का महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से ६ माशे भर चूर्ण लेकर प्रतिदिन दुग्ध के साथ गलकीलक को नष्ट करने के लिये सेवन करते रहना चाहिए। अथवा सोंठ का चूर्ण, शुद्ध कुचले का चूर्ण और हरड़ का चूर्ण इन सबको लेकर खरल में जल के साथ घोट के एक २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें। इन गोलियों में से एक २ गोली को प्रति दिन मुख में रखकर चूसने से मुखपाक और गलकोलक नष्ट होजाते हैं ॥ ३७-३८ ॥

अथ गलकीलके सैन्धवप्रयोगः—

बहुशो भानुदुग्धेन सैन्धवेन प्रलेपनम् ॥ ३९ ॥

सैन्धव लवण और आक के दुग्ध इन दोनों को खरल में घोटकर कल्क बना लेवें। इस कल्क के प्रलेप करने से गलकीलक नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

अथ गलकीलके भल्लातकप्रयोगः—

भल्लातकरसं दत्त्वा चूर्णं चोपरि बन्धयेत् ॥ ४० ॥

शुद्ध भिलावों का खरल में अच्छी तरह महीन चूर्ण कर के भिलावों के स्वरस से ही पीस कर गले के बाहर प्रलेप करके पट्टी बन्धन कर देना चाहिए इस प्रयोग के करने से गले के भीतरी और बाहरी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४० ॥

अथ दन्तदाढर्यकरो जिह्वापूतिगन्धहरश्च जयाप्रयोगः—

यः प्रातरुत्तेजयति द्विजाञ्जयाकाष्ठेन वज्राद्विज एव जायते।
तेनैव तैलोपहितेन मार्जनाज्जिह्वा जहात्युद्धतपूतिगन्धिताम् ॥ ४१ ॥

जो मनुष्य प्रातः काल उठकर शौच करके अपने दांतो को जयन्ती (जैताक) के काष्ठ से साफ (दन्तधावन) करता रहता है उसके हिलते हुए दांत वज्र के समान दृढ हो जाते हैं। इसी तरह जयन्ती के दत्तूअन को जयन्ती कल्क से सिद्ध हुए तैल से लिप्त करके उसकी जिह्वा लेखिनी (जिह्वी) बनाकर जिह्वा को घर्षित करने से अत्यन्त बदबू देने वाली दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ ४१ ॥

अथ मुखपाके पर्पटीरसः—

मुखपाकापनुत्यर्थं मधुना पर्पटीरसम्।

खादयेत्कृतगण्डूषो वटिकां चानुधारयेत् ॥ ४२ ॥

मुखपाक अर्थात् कण्ठ, जिह्वा, मसूड़े और तालु आदि स्थानों में छोटी २ लाल रङ्ग की फुन्सियां (छाल) होकर पाक हो जाने पर उसे दूर करने के लिए शहद् युक्त त्रिफला क्वाथ, या शहद् युक्त पञ्च पल्लव क्वाथ से कुरले (गण्डूष) करके पूर्वोक्त पर्पटी रस को शहद् के साथ सेवन करना चाहिए। पर्पटी रस सेवन करने के पश्चात् खदिरादि वटिका को चूसनी चाहिए। प्रायः दो तीन दिन इस प्रकार का उपचार करने से मुखपाक रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४२ ॥

अथ मुखशोषे महाराष्ट्री गुटिका—

महाराष्ट्रीकचूर्णं च चतुष्कृत्वा विभावयेत्।
निम्बार्द्रकरसाभ्यां च गुटिका मुखशोषनुत् ॥ ४३ ॥

महाराष्ट्री (जल पीपल) के चूर्ण को निम्बू के रस के साथ चार वार भावित कर खरल कर के सुखालेवें। इसी तरह आदी के स्वरस के साथ चार वार भावित कर खरल करके वेर की गुठली के बराबर गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर देवें। इन गोलियों में से एक२ गोली प्रतिदिन चूसते रहने से मुख शोष नष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ मुखवैवर्ण्ये पुनर्नवाद्युद्वर्तनम्—

श्वेतं पुनर्नवामूलं सर्पाक्षीमूलसंयुतम्।
उद्वर्तनं हरेत्स्त्रीणां मुखच्छायां सुदुःसहाम् ॥ ४४ ॥

सफेद पुनर्नवा (गदपुर्णा) की जड़ और सर्पाक्षी की जड़ इन दोनों को जल के साथ पत्थर (सील) पर पीस कर कल्क बना लेवें। इस कल्क का प्रतिदिन उद्वर्तन (उबटन) करते रहने से स्त्रियों के मुख पर अत्यन्त फैली हुई कलुषित छाया (झाईं) नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

अथ नीलिकायां रजन्यादिलेपः—

महिषीक्षीरसम्पिष्टं रजनीरक्तचन्दनम्।
कृतलेपं निहन्त्याशु श्यामिकां गण्डयोः स्थिताम् ॥ ४५ ॥

हलदी और लाल चन्दन का समभाग चूर्ण लेकर भैंस के दुग्ध से पीस कर

कल्क बना के प्रतिदिन उद्वर्तन (उबटन) करते रहने से गालों (कपोल) की श्यामता (नीलिमा) शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ ४५ ॥

अथ मुखवैवर्ण्ये वङ्गभस्मप्रयोगः—

मुखच्छायाहरं वङ्गभस्म स्यान्महिषीजलैः ॥ ४६ ॥

वङ्गभस्म को भैंस के मूत्र या दुग्ध के साथ पीस कर प्रलेप करने से मुख की विकृत छाया (झाईं) नष्ट हो जाती है ॥ ४६ ॥

अथ मुखवैवर्ण्यादौ मातुलुङ्गादिप्रलेपः—

गोमयस्य रसं सर्पिर्मातुलुङ्गं मनःशिला ।
मुखवर्णकरं श्रेष्ठं तिलकानां च नाशनम् ॥ ४७ ॥

गाय के गोबर का रस, गाय का ताजा घृत, बिजोरे निम्बू की जड़ का चूर्ण और शुद्ध मनःशिला इन सब को सम भाग लेकर पत्थर पर महीन पीस के कल्क बना लेवें। इस कल्क का प्रतिदिन मुख पर प्रलेप करने से या उबटन करने से मुख का वर्ण अत्यन्त उज्ज्वल (तेजोयुक्त) हो जाता है तथा काले २ दाग, तिल आदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

मञ्जिष्ठादिप्रलेपः—

उभे हरिद्रे मञ्जिष्ठां घृतं गौराश्च सर्षपाः ।
पेष्या गैरिकसंयुक्ता ह्यजाक्षीरेण पाचिताः ॥
एतेनैव भवेद्वक्त्रमुदयादित्यसन्निभम् ॥ ४८ ॥

हलदी का चूर्ण, दारु हलदी का चूर्ण मजीठ का चूर्ण, गाय का घी, सफेद सरसों और शुद्धस्वर्ण गैरिक (गेरू) इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन पीस लेवें। फिर इस चूर्ण को बकरी के दुग्ध के साथ पत्थर पर पीस कर मुख पर प्रलेप या उबटन करें। अथवा बकरी के दुग्ध के साथ चूर्ण को कटोरी में पकाकर शीतल कर के मुख पर प्रलेप करना चाहिए। इस प्रलेप के प्रतिदिन लगाते रहने से मुख की कान्ति उदयकालीन सूर्य के समान चमकने लगती है ॥४८॥

अथ मुखदौर्गन्ध्यनाशिनी कुष्ठादि वटी—

गोमूत्रैः क्वाथयेत्कुष्ठं बालकं सहरीतकम् ।
पिष्ट्वा सर्वं वटीं कुर्यान्मुखदौर्गन्ध्यनाशिनीम् ॥ ४९ ॥

कुष्ठ का चूर्ण, नेत्रवाला का चूर्ण और हरड़ का चूर्ण इन तीनों को सम

भाग लेकर जल के साथ खरल में पीस के वेर की गुठली के बराबर की गोलियां बना के सुखा लेवें। इन गोलियों को चूसने से मुख की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ ४९ ॥

अथ मुखदौर्गन्ध्ये गृहधूमक्वाथः—

गृहधूमारनालेन क्वाथं समधुसैन्धवम् ॥ ५० ॥

रसोई घर में इकट्ठे हुए धुएं के चूर्ण को लेकर अठ गुनी काञ्जी के साथ क्वाथ बना के चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें। फिर उस क्वाथ में शहद और सैन्धव लवण मिला कर उस से कुरले (गण्डूष) करने से मुख की दुर्गन्धि नष्ट हो जाती है ॥ ५० ॥

अथ मुखदौर्गन्ध्ये पथ्यादिवटिका—

गोमयैः क्वाथिता पथ्यामिषीकृष्णान्विताकणा।
वदनस्य दुरामोदं निहन्ति परिशीलिता ॥ ५१ ॥

गोबर के रस में हरड़ों को डाल कर पकावें। जब वे पक कर फूल जांय तब उतार कर उन की गुठली निकाल के सुखा लेवें। फिर उन को औखली में खाण्ड कूट कर चूर्ण कर लेना चाहिए। इस प्रकार का हरड़ का चूर्ण १ पल, सौंफ का चूर्ण १ पल, पीपल का चूर्ण १ पल तथा काले जीरे का चूर्ण १ पल भर लेकर सब को खरल में जल से घोट कर दो २ मासे भर की गोलियां बना के सुखा लेवें। ये गोलियां प्रतिदिन चूसते रहने से मुख की दुर्गन्ध को नष्ट कर देती हैं ॥ ५१ ॥

अथ मुखवैरस्ये लाजादिचूर्णम्—

लाजा जातीफलं पूगं तुल्यं भक्ष्यं पिबेदनु।
शीततोयं पलार्धं च आस्यवैरस्य शान्तये ॥ ५२ ॥

लाजों (खीलों) का चूर्ण, जायफल का चूर्ण और सुपारी का चूर्ण इन तीनों को समभाग लेकर एकत्र मिला के शीशी में भर देवें। आधे पल भर इस चूर्ण को शीतल जल के साथ प्रतिदिन मुख की दुर्गन्धि नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए ॥ ५२ ॥

अथ उपजिह्वायां निर्गुण्ड्यादियोगः—

निर्गुण्डामुत्पलं कन्दं चर्वयेदुपजिह्वके ॥ ५३ ॥

उपजिह्वा (काग) की पीड़ा को दूर करने के लिये निर्गुण्डी की जड़ और नीलकमलकन्द इन दोनों को मुख में रख कर चबानी चाहिए ॥ ५३ ॥

अथ क्रिमिदन्ते अभयादिगुटिका—

ताम्रपात्रे क्षणं पाच्यमभयाचूर्णकं मधु ।
करेण गुटिका कार्या दन्तैर्धार्या कृमीन् हरेत् ॥ ५४ ॥

ताम्र की कड़ाही या कटोरी में हरड़ का चूर्ण डाल कर उस में थोड़ा सा शहद् मिला कर पका लेवें । स्वाङ्गशीतल होने पर दो २ माशे भर की गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर देवें । इन गोलियों को दांतों के नीचे रख कर चूसने से दांतों के कीड़े नष्ट हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

अथ कृमिदन्ते कासीसादिगुटिका—

कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदारु समं जलैः ।
गुटिकां धारयेद्दन्तैः कृमिशूलहरं परम् ॥ ५५ ॥

शुद्ध काशीश, शुद्ध हींङ्ग, फिटकरी और देवदारू का चूर्ण इन सब को समान भाग लेकर खरल में डाल के जल के साथ महीन पीस कर गोलियां बना कर सुखा लेवें । इन गोलियों को मुख में धारण करने से दांतों के कीड़े तथा शूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ५५ ॥

अथ क्रिमिदन्ते विशालाधूमः—

विशालायाः फलं चूर्ण्यं तप्तलोहोपरि क्षिपेत् ।
तद्धूमाद्भ्रष्टदन्तानां कीटपातो भवत्यलम् ॥ ५६ ॥

इन्द्रायण के फल का चूर्ण बनाकर अग्नि से प्रतप्त हुए लोहे के टुकड़े या तवे के ऊपर डाल कर कीडा लगे हुए दांतो तथा डाढों में धूनी लगाने से उनके कीडे निकल पडते हैं ॥ ५६ ॥

अथ चलदन्ते जात्यादिदन्तधावनम्—

जातीकोरण्टपत्रं च चर्वयेत्प्रातरुत्थितः ।
स्थिराः स्युश्चलिता दन्तास्तत्काष्ठैर्दन्तधावनात् ॥ ५७ ॥

चमेली और पीली कटसरैया के पत्तों को प्रातःकाल उठ कर चबाने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं । अथवा चमेली की जड या पीली कटसरैया की

जड का प्रतिदिन दन्तधावन (दत्तूअन) करते रहने से हिलते हुए दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

अथ चलदन्ते मूलकबीजप्रयोगः—

मूलबीजं मुखे धार्यं दन्तदार्ढ्यकरं परम् ॥ ५८ ॥

मूली के बीजों को मुख में रख कर चबाने से हिलते हुए दांत मजबूत हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

अथ मुखवैरस्ये आरनालगण्डूषः—

किञ्चिल्लवणसंयुक्तमारनालं विपाचयेत् ।
तेन गण्डूषमात्रेण मुखवैरस्यनाशनम् ॥ ५९ ॥

काञ्जी के अन्दर थोड़ा सा सैंधवलवण मिला कर कुछ देर तक चूल्हे पर गरम कर के उतार देवें। इस काञ्जी से गण्डूष (कुरले) करने से मुख की विरसता नष्ट हो जाती है ॥ ५९ ॥

सुखदो गण्डूषः—

ताम्बूलचूर्णदग्धस्य गण्डूषस्तिलतैलतः ।
काञ्जिकैर्लवणाक्तैर्वा गण्डूषः सुखदायकः ॥ ६० ॥

तिलों के तैल में जले हुए पान के पत्तों का चूर्ण मिला कर कुल्ले करने से अथवा काञ्जी में लवण मिला कर कुल्ले करने से मुख की दुर्गन्धि आदि दूर हो जाते हैं॥ ६०॥

अथ मुखरोगे पथ्यापथ्यविवेकः ।

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषःप्रतिसारणम् । कवलोऽस्त्रकस्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्म च॥१॥
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः । बहुपत्रो कारवेल्लं पटोलं बालमूलकम् ॥२॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं तप्ताम्बु खदिरो घृतम् । कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मित्रं स्यान्मुखरोगिणाम्॥३॥

इतिपथ्यानि ।

अथापथ्यानि—

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम् । दधिक्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम्॥१॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दिकारि च । मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां विवर्जयेत् ॥२॥

इत्यपथ्यानि ।

अथ कण्ठशालूकादौ पारदादिप्रलेपः—

पारदं विमलं तार्क्ष्यं त्रिकटु ताम्रसैन्धवम् ।
तुल्यं गवां जलैः पिष्टं सुखोष्णं लेपयेन्मुहुः ।
त्र्यहेण कण्ठशालूकं गलग्रन्थिं च नाशयेत् ॥ ६१ ॥

पारद की भस्म (या रससिन्दूर), रौप्यमाक्षिक की भस्म, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, ताम्रभस्म और सैन्धव लवण इन सब को समानभाग लेकर खरल में महीन पीस कर चूर्ण बना लेना चाहिए। पश्चात् इस चूर्ण को गाय के मूत्र के साथ एक दिन तक खरल कर के अग्नि से पका कर मलहम के समान बना लेवें। इस का गले के बाहर तीन दिन तक सुहाता २ (मन्दोष्ण) प्रलेप करने से कण्ठशालूक तथा गले की उभरी हुई गांठे आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

अथ गलकीले सैन्धवप्रयोगः—

लेपयेद्भानुदुग्धेन सैन्धवं गलकीलनुत् ॥ ६२ ॥

थोड़ा सा सैन्धव लवण लेकर उसे आक के शुद्ध दुग्ध के साथ पीस कर गले के बाहर प्रलेप करने से गलकीलक नष्ट हो जाता है ॥ ६२ ॥

अथ गलरोगे मण्डूरलेपः—

महिषीमूत्रसम्पिष्टं लोहकिट्टं क्षणं पचेत् ।
तेन लेपो निहन्त्याशु गलरोगं मुहुःसहम् ॥ ६३ ॥

लोहे के किट्ट को खरल में महीन पीसकर भैंस के मूत्र से भावित कर के घोंट कर थोड़ा सा पका लेना चाहिए। इस तरह इस मन्दोष्ण लौहकिट्ट का प्रलेप करने से गले के समग्र रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

अथ अपचीगण्डमालाचिकित्सा—

जलेन पेषयेत्तुल्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् ।
सप्ताहं लेपयेत्तेन ह्यपच्या गण्डमालिकाः ।
स्फुटन्ति नात्र सन्देहःस्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ६४ ॥
निजद्रावेण सम्पिष्टं मुण्डीमूलप्रलेपनात् ।
गण्डमालाः क्षयं यान्ति तद्द्रवं च पिबेज्जलम् ॥ ६५ ॥

हलदी या कचनार की छालका चूर्ण, चीते की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण इन तीनों को समान भाग लेकर खरल में जल के साथ पीस कर १ सप्ताह तक लेप करने से अपची और गण्डमाला की गांठे पककर फूट जाती हैं। उनके फूट जाने पर निम्नलिखित औषधियों का लेप करना चाहिए। गोरखमुण्डी की जड़ को गोरखमुण्डी के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर लेप

करना चाहिए तथा गोरखमुण्डी के स्वरस में शहद मिलाकर पान करना चाहिए। इस तरह १ सप्ताह तक प्रतिदिन उपचार करते रहने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६४-६५ ॥

अथ गण्डमालायां ब्रह्मदण्डीयमूलप्रयोगः—

ब्रह्मदण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा।
स्फुटितां हन्ति लेपेन गण्डमालां न संशयः ॥ ६६ ॥

ब्रह्मदण्डी की जड़ को चावलों के धोवन के साथ पीसकर प्रलेप करने से उपर्युक्त विधि से पककर फूटी हुई गण्डमाला ठीक हो जाती है ॥ ६६ ॥

अथ गण्डमालायां गन्धकादिप्रयोगः—

गन्धकं सूतकं तुल्यमर्कक्षीरेण सैन्धवम्।
पिष्ट्वा च काञ्चनीमूलं लेपोऽयं गण्डमालिकाम् ॥ ६७ ॥
अदृश्यां स्फोटयत्याशु मुण्डीद्रावेण पेषितम्।
तन्मूलं लेपयेत्तत्र त्रिःसप्ताहं प्रशान्तये ॥ ६८ ॥

शुद्धगन्धक, शुद्धपारद, सैन्धव लवण तथा कचनार की जड़ अथवा हलदी की गांठ का चूर्ण इन सबको समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली बना के उसमें शेष द्रव्य मिलाकर सबको बारीक पीस लेवें। फिर आक के शुद्ध दुग्ध से इस चूर्ण को खरल करके मलहम बनाकर शीशी में भर देवें। इस मलहम के लेप करने से गले के भीतर की अदृश्य गण्डमाला फूट जाती है। फिर गोरखमुण्डी के स्वरस या क्वाथ से गोरखमुण्डी की जड़ को पीसकर ३ सप्ताह तक गले पर लेप करने से गण्डमाला का स्फुटित व्रण अच्छा हो जाता है ॥६७-६८॥

अथ गण्डमालायां जैपालप्रयोगः—

पिष्ट्वा जैपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटी।
छायाशुष्का तथा लेपात् गण्डमालां विनाशयेत् ॥ ६९ ॥

जैपाल के पत्तों के चूर्ण को जैपाल पत्र के स्वरस ही से पीसकर दो२ माशे भर की गोलियां बना के छाया में सुखाकर शीशी में भर देवें। इस वटी को जल के साथ पत्थर पर पीसकर गले के बाहर लेप करते रहने से गण्डमाला दूर हो जाती है ॥ ६९ ॥

अथ चलदन्ते हेमतारादिगुटिका—

हेमतारयुतं सूतं तालकं क्षीरमर्दितम् ।
क्षौद्रे तिलानां तैलेन प्रस्विन्नं दन्तदार्ढ्यकृत् ॥ ७० ॥

स्वर्णभस्म, चांदी की भस्म, शुद्ध पारद और शुद्ध हरताल इन चारों को समान भाग लेकर खरल में दिनभर घोटकर महीन चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को गाय के दुग्ध के साथ पीसकर चने के बराबर की गोलियां बनाकर सुखालेवें। फिर इन गोलियों को वस्त्र में बांध कर तिलों के तेल से भरे पात्र में लटका के दोलायन्त्र की विधि से एक प्रहर तक स्वेदनकर्म करना चाहिए। स्वेदन होने के पश्चात् गोलियों को शहद् से भरे हुए अमृतबान में डाल कर मुख बन्द कर के रख देवें। इन गोलियों में से प्रतिदिन एक २ गोली दांतों के नीचे रख कर चूसने से हिलते हुए दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ चलदन्ते धातुबद्धरसगुटिकोपदेशः—

दन्तदार्ढ्यप्रसिद्ध्यर्थं गुटिकां देहि सर्वदा ।
रसस्य धातुबद्धस्य चालनं घर्षणं तथा ॥ ७१ ॥

हिलते हुए दांतों को दृढ करने के लिये सुवर्ण ताम्र आदि धातु के साथ बद्ध किये हुए पारद की गुटिका को मुख में धारण करना चाहिए तथा उसी को मुख में इधर से उधर चलाते रहना चाहिए। अथवा उस गुटिका से हिलते हुए दांतों को घिसना चाहिए ॥ ७१ ॥

दन्तरोगे वर्जनीयम्—

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्न दन्तधावनम् ।
तथाति कठिनान् भक्ष्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत्

अथ शिरोरोगाणां नामानि—

शिरस्तोदाश्चतुर्द्धोक्ता दोषैः सर्वास्त्रजन्तुभिः ।
कम्पश्चार्द्धावभेदश्च सूर्यावर्तोऽपि शङ्खकः ॥ ७२ ॥

वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक दोष भेद से शिर में चार प्रकार के शूल कहे गये हैं, तथा दोषों के अतिरिक्त रक्त की विकृति से, कृमियों के संसर्ग से शिर में शूल रोग होता है, इस प्रकार ६ प्रकार के शिरःशूल और शिरःकम्प, अर्द्धावभेदक, सूर्यावर्त और शङ्खक से चार प्रकार के रोगों को मिला देने से शिर में १० प्रकार के मुख्य रोग होते हैं ॥ ७२ ॥

अथ शिरोरोगचिकित्सा—

तत्रादौ शिरोरोग रिरसः—

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं कान्तं ताम्रं मृतं समम्।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं पिण्डं तन्माषमात्रकम्॥
सप्ताहात्सूर्यवर्तादीन् शिरोरोगान्विनाशयेत्॥ ७३॥

पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर, अभ्रक की भस्म, तीक्ष्ण लौह की भस्म, कान्तलौह की भस्म और ताम्र की भस्म इन पांचों को बराबर १ लेकर थूहर के शुद्ध दुग्ध से दिन भर खरल कर के एक २ माशे भर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस की एक २ गोली प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनी चाहिए। इस तरह एक सप्ताह तक यह रस सेवन करते रहने से सूर्यावर्त्त आदि शिर के समस्त रोगों को नष्ट कर देता है॥ ७३॥

अथ मस्तकरोगाणां सामान्योपायाः—

तत्रादौ अर्द्धावभेदके गिरिकर्णीप्रयोगः—

गिरिकर्णीफलं मूलं सजलं नस्यमाचरेत।
मूलं वा बन्धयेत्कर्णे निहन्त्यर्धशिरोव्यथाम्॥ ७४॥

गिरिकर्णी अर्थात् सफेद अपराजिता के फल और जड़ का चूर्ण बनाकर पानी के साथ पत्थर पर पीस कर प्रतिदिन नस्य लेने से अथवा केवल अपराजिता की जड़ को उखाड़ कर कर्णमूल में बांधे रहने से आधे शिर का दर्द (अधा शीशी) दूर हो जाता है॥ ७४॥

अथ गुडादिकस्यम्—

गुडं करञ्जबीजं च नस्यमुष्णजलैर्हितम्॥ ७५॥

गुड़ की डली और करञ्ज के शुद्ध बीजों की गिरी इन दोनों को समान भाग लेकर खरल में महीन पीस लेवें। इस चूर्ण को मन्दोष्ण जल में घोल कर नस्य लेने से शिरोरोग में विशेष लाभ होता है॥ ७५॥

अथ मरिचप्रयोगः—

मरिचं भृङ्गजैर्द्रावैर्लेपोऽयं हन्ति तां रुजम्॥ ७६॥

काली मरिचों का चूर्ण बनाकर भृङ्गराज के स्वरस से भावित कर के घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस में पीस कर शिर पर लेप करने से आधे शिर की पीड़ा दूर हो जाती है॥ ७६॥

अथ शिरःशूले कुङ्कुमादिनस्यम्—

कुङ्कुमं मधुयष्टी च सिताघृतगुणोत्तरम् ।
सप्ताहेन कृते नस्ये दाहं हन्ति शिरोरुजाम् ॥ ७७ ॥

केशर १ भाग, मुलेठी का चूर्ण २ भाग, चीनी ३ भाग और गाय का घी ४ भाग लेकर सब को खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें । इस योग का १ सप्ताह तक नस्य करते रहने से शिर की गर्मी और पीड़ा आदि सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथार्धशूले मरिचप्रयोगः—

शिग्रुपत्ररसैर्मर्द्यं मरिचं चार्धशूलनुत् ॥ ७८ ॥
कुङ्कुमं घृतसंयुक्तं नस्याद्धन्ति शिरोरुजम् ॥ ७९ ॥

मरिचों को कूट खांड कर चूर्ण बना के सहजने के पत्तों के स्वरस से भावित करके घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण का नस्य लेने से आधा शीशी की पीड़ा दूर हो जाती है ॥ ७८–७९ ॥

अथ यूकालिक्षायां पारदप्रयोगः—

पारदं मर्दयेन्निष्कं कृष्णधुस्तूरजैर्द्रवैः ।
नागवल्लीदलैर्वाऽथ वस्त्रखण्डं प्रलेपयेत् ॥ ८० ॥
तद्वस्त्रं मस्तके वेष्ट्य धार्यं यामत्रयं बुधैः ।
यूकाः पतन्ति निःशेषाः सलिक्षा नात्र संशयः ॥ ८१ ॥

एक निष्क (४ मा०) भर पारद को पत्थर की खरल में काले धत्तूरे की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ घोटकर अथवा नागरवेल के पत्ते के स्वरस के साथ घोटकर सफेद वस्त्र की पट्टी पर लेप करके उस वस्त्रपट्टी को तीन प्रहर तक शिर में बांधे रहने से समस्त शिर की यूका और लिक्षाएं गिर पड़ती हैं ॥८०–८१॥

अथ दारुणतैलम्—

कण्टकारीफलरसैस्तैलं तुल्यं विपाचयेत् ।
जयापुष्पद्रवैर्वाऽथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ ८२ ॥

कण्टकारी के फलों का स्वरस और तिल के तैल को समभाग लेकर कड़ाही में डाल के चूल्हे पर चढाकर मन्द मन्द अग्नि से पकावें । जब तैलमात्र

शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवें। अथवा जयन्ती के पुष्पों के स्वरस और तिलतैल को समभाग लेकर तैलपाक कर लेवें। इस तैल का शिर पर प्रलेप करने से दारुण रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥

अथ केशपाते हरिद्रादिलेपः—

द्विनिशा नवनीतेन लेपाद्वा खण्डकेशनुत् ॥ ८३ ॥

दोनों प्रकार की हलदी को समान लेकर लोहे की ओंखली में कूट कर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को नवनीत अर्थात् मक्खन या तुरन्त के घी में मिला कर शिर पर लेप करने (लगाने) से खण्डकेश अर्थात् बालों का टूटना दूर हो जाता है ॥ ८३ ॥

अथ दृढकेशकरो जातिपुष्पादिप्रलेपः—

जातीपुष्पदलं मूलं कृष्णगोमूत्रपेषितम्।
लेपोऽयं सप्तरात्रेण दृढकेशकरः परम् ॥ ८४ ॥

चमेली के पुष्प, पत्ते और जड़ इन तीनों को सम भाग लेकर ओंखली में कूट के चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को काली गाय के मूत्र के साथ पीस कर सात दिन तक माथे के बालों पर लेप करने से शिर के बाल मजबूत हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

अथ केशपाते शृङ्गाटादितैलम्—

शृङ्गाटत्रिफलाभृङ्गीनीलोत्पलमयोरजः।
सूक्ष्मचूर्णं समं कृत्वा पचेत्तैले चतुर्गुणे ॥
तल्लेपेन दृढाः केशाः कुटिलाः सरला अपि ॥ ८५ ॥

सिघाड़े, हरड़, बहेड़े, आंवले, भृङ्गराज, नीलकमल और लोहे की भस्म इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर जल के साथ पीस के कल्क बना लेवें। पश्चात् कल्क से चौगुना तिलों का तैल और तैल से चौगुना जल लेकर सब को कलईदार लोहे की कड़ाही में डाल कर मन्द २ अग्नि से पाक करें। जब समस्त जल नष्ट होकर तैल का ठीक पाक हो जाय तब शीतल कर के छान कर शीशी में भर देवें। इस तैल को प्रतिदिन शिर में लगाते रहने से टेढ़े मेढ़े तथा कमजोर केश सीधे और दृढ़ हो जाते हैं ॥ ८५ ॥

अथ इन्द्रलुप्ते भल्लातादिलेपः—

कीटभक्षितकेशान्तःस्थानं स्वर्णेन घर्षयेत्।

यावत् सुतप्ततां याति ततो लेपमिमं शृणु ॥ ८६ ॥
भल्लातकं च बृहती गुञ्जामूलं फलं तथा ।
मधुना सह लेपेन चाम्पारोगचयप्रणुत् ॥ ८७ ॥

शिर में जुओं अथवा कीड़ों के काटने से बालों की जड़ों में क्षत (गढे) बन गये हों तथा बाल न जमते हों ऐसी दशा में उस स्थान को शुद्ध स्वर्ण से खूब रगड़ना (घिसना) चाहिए । घिसते २ जब वह गरम हो जाय तब शुद्ध भिलावें, बड़ी कटेरी की जड़, घुंघची (गुञ्जा) की जड़ और फल इन को सम भाग लेकर चूर्ण बना के शहद् में मिला कर उस स्वर्णघृष्ट स्थान पर लेप करना चाहिए । इस तरह प्रतिदिन उस स्थान को स्वर्ण से घिस कर उपर्युक्त लेप के लगाते रहने से सर्व प्रकार का चाम्पा रोग (इन्द्रलुप्त) नष्ट हो जाता है ॥८६–८७॥

अथ इन्द्रलुप्ते गुञ्जाप्रयोगः—

गुञ्जामूलं फलं चूर्णं कण्टकार्याः फलद्रवैः ।
तेन लेपेन हन्त्याशु चाम्पारोगं सुदुःसहम् ॥ ८८ ॥

गुञ्जा (घुंघची) की जड़ का या फल का चूर्ण बनाकर बड़ी कटेरी के पञ्चाङ्ग के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर चटनी के समान महीन कल्क बना लेना चाहिए । इस कल्क के प्रतिदिन शिर में लेप करने से दुःसाध्य चाम्पारोग नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

विमर्शः—वाग्भट में इन्द्रलुप्त रोग का "चाचा" यह पर्याय मिलता है यथा—तदिन्द्रलुप्तं रुढ्याञ्च प्राहुश्चाचेति चापरे" इस लिये चाम्पा के स्थान पर चाचा ऐसा पाठान्तर मानना श्रेष्ठ है तथा चाचा का अर्थ इन्द्रलुप्त है ।

अथ सूर्यावर्तादौ अभ्रादिवटिका—

अभ्रजीर्णरसस्तीक्ष्णं स्नुहीक्षीरं सुरायसम् ।
शुल्वं च सूर्यावर्तादीञ्छिरोरोगान्निवर्तयेत् ॥ ८९ ॥

अभ्रक के द्वारा जारण किया हुआ पारद अथवा अभ्रक की भस्म और पारद की भस्म (या रससिन्दूर), तीक्ष्ण लोहे की भस्म और ताम्रभस्म इनको समभाग लेकर थूहर के शुद्ध किये हुए दुग्ध के साथ खरल कर के चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को १–२ रत्ती भर लेकर सुरायस अर्थात् एक तोले भर लोहासव के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सूर्यावर्त्त आदि समस्त प्रकार के शिर के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

अथ पलितादौ कटुतैलनस्यम्—

कटुतैलकृतं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ ९० ॥

प्रतिदिन सरसों के तैल का नस्य लेने से अथवा सरसों के तैल की दो या तीन बूंद नाक में डाल देने से पलित और अरुंषिका (शिर में सफेद रूसी का जमना) ये दोनों शिर के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ९० ॥

अथ खालित्ये स्नुह्यादितैलं विषतैलञ्च—

स्नुह्यर्कक्षीरभृङ्गाम्बुगोमूत्रहलिनीविषैः ।
गुञ्जाविशालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥
खलतिं शमयत्यम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ॥ ९१ ॥

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, भृङ्गराज का स्वरस और गोमूत्र ये चारों सम भाग मिलाकर तैल से चौगुने लेवें तथा कलिहारी की जड़ का चूर्ण, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण, गुञ्जा (घुंघुची) की जड़ या फल का चूर्ण, इन्द्रायण के फल का चूर्ण और मरिचों का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर पत्थर पर जल से पीस कर कल्क बना लेवें । पश्चात् कल्क से चतुर्गुण कडुआ तैल तथा तैल से चौगुना उपर्युक्त द्रवद्रव्य लेकर सब को कलईदार कड़ाही में डाल कर मन्द मन्द अग्नि से पकावें । जब समस्त जलीयांश नष्ट होकर तैल सिद्ध हो जाय तब उतार कर वस्त्र से छान के शीशी में भर देवें । इस तैल को शिर में लगाने से खालित्य (गञ्ज रोग) नष्ट हो जाता है अथवा शुद्ध वत्सनाभ चूर्ण का कल्क १ पल तथा अठगुनी (आठ पल) खट्टी काञ्जी और कल्क से चतुर्गुण कटुतैल लेकर सब को कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि से तैल पाक कर लेवें । इस तैल को शिर में लगाने से खालित्य (खल्वाट या गञ्ज) रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

अथ शिरोरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाल्यादयोऽपिच ।
मुद्गान् माषान् कुलत्थांश्च खादेद्वै निशि केवलान् ॥ १ ॥
कटुकोष्णान् ससर्पिष्कानुष्णं क्षीरं पिबेत्तथा ।
स्वेदो नस्यं धूमपानं विरेको लेपःसेको लङ्घनं शीर्षवस्तिः ॥ २ ॥
रक्तोन्मुक्तिर्वह्निकर्मोपनाहो जीर्णः सर्पिः शालयः षष्टिकाश्च ।
यूषो दुग्धं धन्वमांसं पटोलं शिग्रुर्द्राक्षावास्तुकं कारवेल्लम् ॥ ३ ॥
आम्रं धात्री दाडिमं मातुलुङ्गं तैलं तक्रं काञ्जिकं नारिकेलम् ।

पथ्या कुष्ठं भृङ्गराजः कुमारी मुस्तोशीरं चन्द्रिकागन्धसारः ॥ ४ ॥
कर्पूरश्च ख्यातिमानेषवर्गः सेव्यो मर्त्यैः शीर्षरोगे यथास्वम् ॥ ५ ॥
इति पथ्यानि ।

अथापथ्यानि ।

क्षवजृम्भामूत्रवाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् । दुग्धं नीरं विरुद्धान्नं विरुद्धजलमज्जनम् ।
दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् । इत्यपथ्यानि ।

व्रणस्य भेदनिर्देशः—

दोषैर्द्वन्द्वैः समस्तैश्च सास्रैस्तैरसृजाऽपि च ।
व्रणभेदा इति प्रोक्ता वैद्यशास्त्रविशारदैः ॥ ९२ ॥

प्रकुपित वात, पित्त और कफ के कारण तीन तथा प्रकुपित वातपित्त, पित्त-कफ और कफवात के कारण तीन तथा सन्निपात के कारण एक और दूषित रक्त युक्त वात, रक्तयुक्त पित्त और रक्तयुक्त कफ के कारण तीन इसी तरह दूषित रक्तयुक्त वातपित्त, रक्तयुक्त पित्तकफ और रक्तयुक्त कफवात के कारण तीन और दूषित रक्तयुक्त सन्निपात के कारण एक तथा केवल दूषित हुए रक्त के कारण एक इस तरह दोष भेद से व्रण के पन्द्रह प्रकार शास्त्र में माने गये हैं ॥ ९२ ॥

अथ जात्यादिघृतम्—

जातीपत्रं पटोलं च निम्बोशीरकरञ्जकम् ।
मञ्जिष्ठा मधुयष्टी च तुत्थपत्रकसारिवाः ॥ ९३ ॥
प्रत्येकं चूर्णयेत्कर्षं गव्याज्यं द्वादशं पलम् ।
घृताच्चतुर्गुणं तोयं पाचयेदाज्यावशेषितम् ॥ ९४ ॥
तेनाभ्यङ्गो मर्मजातान्व्रणान्नाडीव्रणानपि ।
स्रवन्ति सूक्ष्मरन्ध्राणि पूरयेन्नात्र संशयः ॥ ९५ ॥

चमेली के पत्ते, परवल के पत्ते, नीम के पत्ते, खस, करञ्ज के पत्ते, मंजीठ, मुलेठी, शुद्ध किया हुआ नीला तुत्थ, पत्रक अर्थात् तेजपत्र या तालीसपत्र और सारिवा (अनन्त मूल) ये प्रत्येक ओषधि एक२ कर्ष (१६ मा०) लेकर सब को एकत्र कूट पीस कर चूर्णकर लेवें। फिर इस चूर्ण को १२ पल गाय के घी और घी से चौगुने (४८ पल) जल में मिलाकर कलईदार लोह की कडाही में सबको डाल के चूल्हे पर चढाकर मन्द२ अग्नि के द्वारा घृतशेषपर्यन्त पाक करना चाहिए। यथाविधि सिद्ध हुए घृत का उतार कर वस्त्र से छान के चौड़े मुख

वाली शीशी या मृतबान में भर देवें। यह घृत अभ्यङ्ग करने से या लेप करने से मर्मस्थलों में उत्पन्न हुए व्रण, नाडीव्रण तथा पूय आदि के कारण बढ़ते हुए छोटे छिद्र वाले व्रणों को शुद्ध करके भर देता है ॥ ९३-९५ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ व्रणशोधनरोपणार्थं शुल्वादिप्रयोगः—

शुल्वचूर्णं रसे जीर्णं मदयन्तीपुनर्नवे ।
मेषश्रृङ्गीरसश्चैतद्व्रणशोधनरोपणम् ॥ ९६ ॥

जीर्ण हुए शुल्वचूर्ण (ताम्रभस्म) को मदयन्ती अर्थात् नवमल्लिका और पुनर्नवा के रस में घोट कर अथवा केवल मेढासींगी के स्वरस में घोट कर व्रण पर प्रलेप करने से वह शुद्ध होकर भर जाता है ॥ ९६ ॥

अथ व्रणरोपणार्थं पटोलादिलेपः—

पटोलनिम्बपत्रं च मधुयष्टीनिशातिलाः ।
त्रिवृद्दन्तीरसैः पिष्ट्वा पूरयेद्व्रणरोपणम् ॥ ९७ ॥

पटोल (परवल) के पत्ते, नीम के पत्ते, मुलेठी, हलदी और तिल इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण कर के त्रिवृत् और दन्ती की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ पृथक् २ सात २ वार भावित कर के घोट कर मलहम बना लेवें। इस मलहम का व्रण पर लेप करके पट्टीबन्धन करने से वह भर जाता है ॥ ९७ ॥

अथ व्रणरोपणार्थं निम्बपत्रादि प्रयोगः—

निम्बपत्रं तिलं पिष्ट्वा पूरयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९८ ॥

नीम के पत्ते और तिल इन दोनों को समभाग लेकर औंखली में कूट खोड कर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को शहद् और घृत में मिला कर प्रलेप करने से व्रण भर कर ठीक हो जाता है ॥ ९८ ॥

अथ व्रणरोपणे अपामार्गप्रयोगः—

अपामार्गस्य पत्रोत्थरसेनाऽऽपूरयेद् व्रणम् ।
किम्वा तद्बीजचूर्णेन व्रणं दुष्टं प्ररोहयेत् ॥ ९९ ॥

अपामार्ग के पत्तों के स्वरस को निकालकर व्रण में भरने से अर्थात् अपामार्ग के पत्तों के रस में शुद्ध गोज या रुई भींगों कर व्रण पर बांधने से, अथवा उसके

बीजों के चूर्ण को व्रण पर छिडक कर पट्टबन्धन करते रहने से दुष्ट व्रण भी भर जाता है ॥ ९९ ॥

अथ व्रणरोपणे गुड़टङ्कणवर्त्तिः—

पुरातनगुडैस्तुल्यं टङ्कणं सूक्ष्मचूर्णितम् ।
तद्वर्त्या पूरयेद्गूढं व्रणं शीघ्रतरं महत् ॥ १०० ॥

अच्छी तरह महीन चूर्ण किये हुए शुद्ध टङ्कण के चूर्ण को समभाग गृहीत पुराने गुड़ के साथ खरल में घोट कर वर्ति (वत्ती) बना लेवें । इस वत्ती को बहुत पुराने तथा गहरे व्रण में भरने से व्रण बहुत जल्दी भर कर सूख जाता है ॥ १०० ॥

अथ दूषितव्रणलेखनार्थं पारदादिप्रयोगः—

पारदस्य त्रयो भागाः कमलस्यैकविंशतिः ।
जम्बीराम्लेन तत्पिष्टं माणिमन्थस्य सप्ततिः ॥ १०१ ॥
नवभिर्गन्धकस्यांशैर्भृंगसारेण मर्दयेत् ।
सप्ताहमातपे तीव्रे धारितं शस्त्रवल्लिखेत् ॥ १०२ ॥

शुद्ध पारद तीन भाग, कमल के पत्तों का या कमलकन्द का चूर्ण २१ भाग (अथवा कमल से ताम्र भस्म लेना चाहिए), सैन्धव लवण ७ भाग और शुद्ध गन्धक के ९ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर जम्बीरी निम्बू के रस में खरल कर लेवें । फिर उस में शेष द्रव्य मिला कर भृङ्ग राज के स्वरस से प्रातःकाल (६ बजे) से दो पहर (१२ बजे) तक घोट कर भृङ्गराज का रस भर के तेज धूप में रख देवें । फिर दूसरे दिन दो पहर तक घोट कर भृङ्गराज का रस भर के तेज धूप में रख देवें । इस तरह सात दिन तक घोट २ कर तीव्र धूप में रख कर सुखा के शीशी में भर देवें । इस चूर्ण को दुष्ट व्रण पर छिड़क कर पट्टबन्धन करते रहने से व्रण के अशुद्ध भाग नष्ट हो कर गिर जाते हैं । इस प्रकार अशुद्ध भाग के गिर जाने से व्रण शुद्ध हो जाता है । फिर उस पर रोपण घृत लगा देना चाहिए ॥ १०१-१०२ ॥

अथ भग्नस्य भेदनिर्देशः—

भग्नो द्विधा निजागन्तुबाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ १०३ ॥

भग्नरोग (फ्रेक्चर) दो प्रकार का होता है । एक स्वाभाविक भग्न होता

है जो कि बालक के जन्म होने के पूर्व ही विद्यमान रहता है और दूसरा आगन्तुक होता है। यह किसी लाठी, शस्त्र या अन्य प्रकार की चोट आदि लग जाने से उत्पन्न होता है। प्रायः दोनों प्रकार के भग्न बाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो २ प्रकार के होते हैं। अर्थात् बाहरी अङ्गों का भग्न दृष्टिगोचर होता है तथा शरीर के भीतरी अस्थि आदि का भग्न चर्म और मांस पेशियों से ढके होने के कारण जल्दी से दृष्टिगोचर नहीं होता है अपि तु अङ्ग को इधर उधर करने तथा टोलने से प्रतीत होता है ॥ १०३ ॥

अथ भग्ने पर्पटीरसप्रयोगविधिः—

भग्नेष्वैरण्डतैलेन प्रयुञ्ज्यात्पर्पटीरसम् ॥ १०४ ॥

पूर्वोक्त पर्पटी रस को एरण्ड के तैल के साथ मिलाकर भग्न रोग में सेवन करना चाहिए ॥ १०४ ॥

अथ भग्ने वज्रीलेपः कान्तपाषाणलेपश्च—

वज्रीं पिष्ट्वा बालकस्य प्रणुत्यै मेषीदुग्धं कान्तपाषाणतुल्यैः ।
युक्तं लेपादस्थिभङ्गं निहन्ति बाह्याभ्यन्तः संस्थितं तत्क्षणेन ॥ १०५ ॥

नेत्र बाला के चूर्ण और थूहर के दुग्ध या हड़जोड़ के चूर्ण को समभाग लेकर पत्थर पर पीसकर टूटे हुए अङ्ग पर प्रलेप करने से भग्न हुआ अङ्ग जुड़ जाता है। अथवा कान्तपाषाण (राजपट्ट) के चूर्ण को भेड़ी के दुग्ध के साथ पत्थर पर पीस कर प्रलेप करने से बाह्य या भीतरी अस्थिभंग शीघ्र ही ठीक हो जाता है ॥१०५॥

अथ भगन्दरलक्षणम्—

गुदस्य पार्श्वे पिटिकार्तिकारी ।
शोफादियुक्तः स भगन्दरः स्यात् ॥ १०६ ॥

गुदा के आस पास या समीपवर्ति प्रदेश में सूजन आदि होकर अत्यन्त कष्ट देने वाली पिडिका उत्पन्न होती है इसी को भगन्दर कहते हैं ॥ १०६ ॥

विमर्शः—भगन्दर को पाश्चात्य वैद्यक में फिश्चुला कहते हैं। इसके स्थानानुसार कई भेद भी होते हैं। वाग्भट में इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है यथा-प्रायेण पिटिकापूर्वोयोऽङ्गुले द्व्यङ्गुलेऽपिवा । पायोर्व्रणोऽन्तर्बाह्यो वा दुष्टा सृग्मांसगो भवेत् । वस्तिमूत्राशयाभ्यासगतत्वात् स्यन्दनात्मकः । भगन्दरः स सर्वश्च दारुणत्वक्रियावतः॥इति।

अथ भगन्दरस्य निरुक्तिः—

वृषणासनयोर्मध्ये प्रदेशो भग उच्यते ।

तमेव दारयत्यस्माद्भगन्दर इति स्मृतः ॥ १०७॥

वृषण और आसन (अस्यते उपविश्यते अनेनेति व्युपत्या गुदस्य ग्रहणम्) अर्थात् गुदा के मध्य के भाग को भग कहते हैं। एवं इस प्रदेश (भग) में व्रण आदि बन कर पूय पड़ जाने के कारण कष्ट होता है, इस कारण इस रोग को भगन्दर कहते हैं ॥ १०७ ॥

अथ रवितण्डवरसः—

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम् ।
त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा हण्डिकान्ते निरोधयेत् ॥ १०८ ॥
शुद्धेन ताम्रपात्रेण तयोस्तुल्येन यत्नतः ।
तद्भाण्डं भस्मनाऽऽपूर्य चुल्ल्यां तिव्राग्निना पचेत् ॥ १०९ ॥
द्वियामान्ते तदुद्धृत्य चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ।
जम्बीरस्य द्रवैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटैः पचेत् ॥ ११० ॥
गुञ्जैकं मधुराहारं दिवा स्वापं च मैथुनम् ।
वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन् रवितण्डवे ॥ १११ ॥

शुद्ध पारद १ पल तथा शुद्ध गन्धक दो पल भर लेकर दोनों की खरल में कज्जली बना कर घृत कुमारी के स्वरस (गूदे) के साथ तीन दिन तक खरल करके गोला बना लेना चाहिए। फिर इस गोले को एक हण्डिका में रख कर पारद और गन्धक की कज्जली के बराबर शुद्ध ताम्रपत्र की कटोरिका से ढक कर हण्ढिका की पेंदी और कटोरी के किनारों की सन्धि को अच्छी तरह बन्द करके कपड़ मिट्टी द्वारा सुखा देवें। पश्चात् इस हण्डिका को राखी से भर कर मुख बन्द करके तीव्र आंच वाले चूल्हे पर चढा कर दो प्रहर तक पाक करना चाहिए। दो प्रहर के पश्चात् हण्डिका को चूल्हे से उतार कर स्वाङ्गशीतल होने के बाद राखो हटा कर कटेरी के सहित गोले को खरल में महीन पीस लेवें। फिर इस को जम्बीरी निम्बू के रस के साथ दिन भर खरल करके गोला बना कर सुखा के शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। इस तरह सात वार जम्वीरी निम्बू के रस के साथ खरल करके सात पुट देकर खरल में महीन घोट के शीशी में भर देवें। इस रस को एक रत्ती भर की मात्रा से शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस रस के सेवन करते

समय मधुर रस युक्त आहार का पथ्य लेना चाहिए तथा दिन में शयन, मैथुन और शीतल पदार्थों का आहार (भोजन) आदि वर्जित है। इस प्रकार सेवन करने से यह रस भगन्दर को नष्ट करता है ॥ १०८-१११ ॥

अथ सामान्योपायाः—

तत्रादौ कर्तव्यनिर्देशः—

आदौ सर्वप्रयत्नेन पाकं रक्षेद्भगन्दरे ।
स्राव्यं रक्तं व्रणे जाते जलूकां वा प्रयोजयेत् ॥ ११२ ॥

भगन्दर में जहां तक हो सके पाक होने का अवसर नहीं आने देना चाहिए। यदि प्रयत्न करने पर भी वह पक कर व्रण (अल्सर) के रूप में हो जाय तब उस स्थान का रक्त और पूय आदि का ठीक तरह से निकाल देना चाहिए। अथवा उस व्रण के समीप प्रदेश में झोंके लगवा कर दूषित रक्त को निकाल देना चाहिए॥११२॥

अथ लाङ्गल्यादिप्रलेपः—

लाङ्गलीकृष्णधत्तूरविषमुष्टीं प्रलेपयेत् ॥ ११३ ॥

उपर्युक्त विधि से अर्थात् झोंके लगवाने या पूय रक्त आदि का ठीक निर्हरण हो जाने के पश्चात् कलिहारी की जड़ का चूर्ण, काले धत्तूरे की जड़ का चूर्ण और विषमुष्टि अर्थात् शुद्ध कुचले का चूर्ण इन तीनों को समभाग लेकर जल के साथ पत्थर पर पीस के प्रलेप लगाकर पट्टी बन्धन कर देना चाहिए ॥ ११३ ॥

अथ कालाग्निरसः—

रसगन्धकसिन्धूत्थतुत्थनागाः सजीरकाः ।
तिक्तकोशातकीसारैः पिष्ट्वा घ्नन्ति भगन्दरम् ॥ ११४ ॥

अथवा शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, सैन्धवलवण, शुद्धतुत्थ, नागभस्म और जीरे का चूर्ण इन्हें सम भाग लेकर कड़वी तरोई की जड़ के क्वाथ के साथ पीस कर भगन्दर के ऊपर प्रलेप करना चाहिए। इस प्रकार यह योग भगन्दर को नष्ट कर देता है ॥ ११४ ॥

अथ चक्रिकाबद्धरसप्रयोगोपदेशः—

गुल्मोक्तचक्रिकाबद्धो भगन्दरहरः परम् ॥ ११५ ॥

गुल्मचिकित्सा में कहा हुआ चक्रिकाबद्ध नामक रस प्रतिदिन सेवन करते रहने से भगन्दर के नष्ट करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ११५ ॥

अथ स्फोटने चतुरङ्गलेपः—

ताम्रचूर्णं सप्तभागं भागमेकं तु पारदम् ।
सैन्धवं सप्तभागं च गन्धकं नवभागिकम् ॥ ११६ ॥
भृङ्गीद्रावैः सजम्बीरः सप्ताहं घर्ममर्दितम् ।
तेन लिप्तं स्फुटत्याशु यदि पक्वं भगन्दरम् ॥
न शस्त्रैश्छेदयेत्प्राज्ञः स्फोटयेल्लेपनादिभिः ॥ ११७ ॥

शुद्धताम्र का चूर्ण अथवा ताम्रभस्म ७ भाग, शुद्धपारद १ भाग, सैन्धवलवण ७ भाग और शुद्ध गन्धक ९ भाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बना कर उस में शेष द्रव्य मिला के दिन भर घोट कर महीन चूर्ण बना लेवें। फिर उस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस में घोट कर तीक्ष्ण धूप में रख देवें। इस तरह सात दिन तक भृङ्गराज के स्वरस में घोट २ कर तीक्ष्ण धूप में रखना चाहिए। पश्चात् इसी तरह निम्बू के रस में घोट २ कर सात दिन तक तेज धूप में सुखावें। फिर इस चूर्ण को शीशी में भर कर रख देवें। इस चूर्ण में से थोड़ा सा चूर्ण लेकर जल के साथ घोट के पके हुए भगन्दर पर लगा देने से वह फूट जाता है। बुद्धिमान् वैद्य भगन्दर को शस्त्र के द्वारा कभी नही चीरें, केवल औषधियों के प्रलेप की सहायता ही से पके हुए भगन्दर का फोड़ना (खोलना) श्रेष्ठ है ॥ ११६–११७ ॥

अथ स्फोटने हरिद्रादिप्रलेपः—

हरिद्रानिम्बसिन्धूत्थं पिष्ट्वा लिप्त्वा स्फुटत्यलम् ॥ ११८ ॥

अथवा केवल हलदी का चूर्ण, नीम के पञ्चाङ्ग का चूर्ण और सैन्धव लवण इन तीनों को सम भाग लेकर नीम की पत्ती के स्वरस में घोट कर भगन्दर की कच्ची फुन्सी पर लेप कर देने से वह फूट जाती है ॥ ११८ ॥

अथ शोषणे नरास्थितैलप्रयोगः—

नरास्थितैललेपेन स्फुटितं शुष्यति व्रणम् ॥ ११९ ॥

मनुष्य की अस्थि के कल्क के साथ तैल सिद्ध कर के अथवा अस्थि का चूर्ण और तैल या अस्थि में से निकले हुए तैल का भगन्दर के व्रण पर लगाने से वह सूख जाता है ॥ ११९ ॥

अथ शोधनरोपणे ताम्रभस्म प्रयोगः—

ताम्रभस्म दिनं मर्द्यं मदयन्तीपुनर्नवे।
मेषशृङ्गीद्रवैस्तेन व्रणशोधनरोपणम् ॥ १२० ॥

ताम्र की भस्म को मदयन्ती अर्थात् मेंहदी या नवमल्लिका और पुनर्नवा अथवा केवल मेषशृङ्गी (मेढासींगी) के स्वरस में घोटकर प्रलेप करने से भगन्दर के व्रण का शोधन हो कर रोपण हो जाता है ॥ १२० ॥

अथ रोपणे मार्जारास्थिप्रलेपः—

त्रिफलाक्वाथसंयुक्तमार्जारास्थिप्रलेपनात् ॥ १२१ ॥

मार्जार (बिलाव) की अस्थि को त्रिफला के क्वाथ में घिस कर अथवा मार्जारास्थि की भस्म को त्रिफला क्वाथ में घोट कर प्रलेप करने से भगन्दर का व्रण भर जाता है ॥ १२१ ॥

अथ भगन्दरव्रणक्षालने त्रिफलाक्वाथः—

क्षालयेत् त्रिफलाक्वाथैर्हन्याद् दुष्टभगन्दरम् ॥ १२२ ॥

दुष्ट हुए भगन्दर के व्रण को त्रिफला के क्वाथ से प्रतिदिन प्रक्षालित करते रहने से उसकी शुद्धि हो जाती है तथा वह अच्छी तरह से भर कर ठीक हो जाता है ॥ १२२ ॥

अथ भूतलोत्थचूर्णप्रयोगः—

भूतलोत्थं पिबेच्चूर्णं खररक्तेन संयुतम् ॥ १२३ ॥

भू (पृथ्वी) के तल (भीतरी) प्रदेश से उत्पन्न हुए अर्थात् केंचुए के चूर्ण को गदहे के रक्त के साथ घोट कर भगन्दर के व्रण पर लेप करने से वह ठीक हो जाता है ॥ १२३ ॥

अथ कुक्कुरास्थिलेपः—

श्वानास्थिलेपनं कार्यं शीघ्रं हन्याद्भगन्दरम् ॥ १२४ ॥

कुत्ते की हड्डी को या हड्डी की भस्म या चूर्ण को त्रिफला के क्वाथ के साथ पीस कर लेप करने से शीघ्र ही भगन्दर नष्ट हो जाता है ॥ १२४ ॥

अथ भगन्दरे पथ्यापथ्यविवेकः—

आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम्। पक्वे पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च॥१॥
सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गली रसः। पटोलं शिग्रुवेत्राग्रं धुस्तूरो बालमूलकम्॥२॥

तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु । एतत् पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगन्दरे ॥३॥

इति पथ्यानि—

अथापथ्यानि—

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेद्यावद्रूढव्रणो नरः ॥ १ ॥

इत्यपथ्यानि ।

अथ ग्रन्थिलक्षण व्युत्पत्तिश्च—

मेदोमांसास्त्रगाः कुर्युर्वृत्तं ग्रन्थितमुन्नतम् ।
दोषाःशोफादिकं तत्र ग्रथनात् ग्रन्थिमाह तम् ॥ १२५ ॥

प्रकुपित हुए वात, पित्त आदि दोष शरीर की मेद (चर्बी), मांस और रक्त में मिल कर या उन्हें भी दूषित कर के शरीर के किसी अङ्ग में गोल और ऊंची गांठ उत्पन्न कर देते हैं जिसके कारण शोफ (सूजन), दाह, पीड़ा आदि अनेक उपद्रव हो जाते हैं तथा वह गांठ सख्त होती है इसलिए उसको ग्रन्थिरोग कहा गया है ॥ १२५ ॥

अथ मेदोग्रन्थौ अरिमेदादिभस्मलेपः—

अरिमेदपलाशानां ग्रन्थिभस्म विमर्दयेत् ।
भस्मना तेन दत्तः सन्मेदोग्रन्थिविनाशनः ॥ १२६ ॥

विट् खदिर, पलाश (ढाक) की ग्रन्थि (छाल) इन की राख बना कर अथवा विट्खदिर की गांठ की भस्म और ढाक के बीजों का चूर्ण दोनों को पानी के साथ पीस कर लेप करने से मेदोग्रन्थि नष्ट हो जाती है ॥ १२६ ॥

अथ मेदोवृद्धौ गुडूच्यादिः—

गुडूची सूरणं निष्कत्रयमुष्णाम्बुमर्दितम् ।
मेदोवृद्धिरसाच्चेन हन्ति रोगं च पूर्वजम् ॥ १२७ ॥

गुडूची (गिलोय) का चूर्ण ३ निष्क और सूरणकन्द का शुष्क चूर्ण ३ निष्क भर लेकर दोनों को गरम पानी के साथ पीस कर प्रलेप करने से सर्व प्रकार की मेदोवृद्धि से उत्पन्न हुई गांठे तथा उसके द्वारा उत्पन्न हुए समस्त ग्रन्थिसम्बन्धी विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ १२७ ॥

अथ गण्डमालायामुदयभास्करः—

गण्डमालां जयत्याशु गुल्मोक्तोदयभास्करः ॥ १२८ ॥

शास्त्रान्तरों में गुल्म रोग में कहा हुआ उदयभास्कर रस अथवा इस ग्रन्थ

के शूलरोग में कहा हुआ उदयभास्कररस प्रतिदिन सेवन करने से गण्डमाला को नष्ट कर देता है ॥ १२८ ॥

अथ कालस्फोटादौ पुत्रजीवप्रयोगः—

पुत्रजीवस्य मज्जां तु जलैः पिष्ट्वा प्रलेपनात्।
कालस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्यात्सवेदनम् ॥
ग्रन्थ्यादिनिखिलान् रोगान्सर्वरोगाश्रयान्हरेत्(१) ॥१२९॥

पुत्रजीव अर्थात् जियापोता की गिरी को जल में पीसकर प्रलेप करने से कालस्फोट (कृष्णवर्ण के या मृत्युकारक फोड़े) तथा पीड़ा देने वाले विष जन्य स्फोट अच्छे हो जाते हैं। यह प्रलेप ग्रन्थि, अर्बुद आदि समस्त प्रकार की ग्रन्थियों को तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य समस्त रोगों को नष्ट करता है॥ १२९॥

अथ सन्धिग्रन्थौ रक्तस्रावविधिः—

सन्धिग्रन्थिस्तापयुक्तो यदि स्यात्क्षीरं रात्रावोदनं सन्निदध्यात्।
पादाङ्गुष्ठस्याग्रदेशेषु रक्तस्रावं कुर्यात्तेन शीघ्रं सुखी स्यात् ॥ १३० ॥

यदि रोगी की सन्धियों की या कक्षा, वंक्षण आदि स्थानों की ग्रन्थियां निकल आवें और पित्त की अधिकता के कारण अत्यन्त ताप और पीड़ा होती हो ऐसी दशा में रोगी को रात्रि में दुग्ध और भात का भोजन कराना चाहिए तथा दूसरे दिन पैर के अङ्गुठे के अग्रभाग की शिरा खोलकर अशुद्ध रक्त का स्राव करा देना चाहिए। इस रक्तमोक्षण की क्रिया से रोगी की ग्रन्थि सम्बन्धी पीड़ा और

---

(१) "ग्रन्थ्यादिनिखिलान् रोगान् सर्वदेहाश्रयान् हरेत्। तण्डुलीयकवर्षाभू-नागकन्यावरारसे ॥ गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित्। ब्राह्मोपलाशयोः क्वाथे रीतिपत्रं विनिक्षिपेत्। दिनत्रयं ततस्तानि पुनस्तेनैव मर्दयेत्। लघुभाण्डे समादाय चूर्णकुष्माण्डवारिणा। ततस्त्रिवारं कुर्वीत पुटं करभवारिणा ॥ मर्दयित्वा पुटं दद्यादजामूत्रेण भावयेत्। ततोऽप्येकपुटं दद्यात् तिस्रस्त्रिकटुभावनाः। आखुपर्णी विडङ्गाग्निजलैरथविभावितः। एवमेष सुसंसिद्धो रसो वल्मीकमृद्रसैः ॥ वल्लत्रयमितो देयो वल्मीके तस्य मृत्स्नया। वल्मीकं संविलिम्पेत्तु क्रिमिसंघप्रशान्तये। रसैरुत्तरवारुण्याः सभ्रमं हन्ति मारुतम् ॥ वासानीरानुपानेन जयेत्कफसमीरणौ" ॥ इति क्वचित्पुस्तकेऽधिकः पाठोऽत्रावसेयः ॥

जलन दूर हो जाती हैं तथा वह सुखी हो जाता है ॥ १३० ॥

अथ कक्षग्रन्थ्यादौ पुत्रजीवप्रयोगः—

कक्षग्रन्थिं गलग्रन्थिं कटिग्रन्थिं च नाशयेत् ।
अन्यं च स्फोटकं तीव्रं पुत्रजीवो विनाशयेत् ॥ १३१ ॥

केवल पुत्रजीव जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से कक्ष (खांक–एग्जिला) की निकली हुई गांठ, गले की गांठ, कटिप्रदेश की गांठ तथा अन्य प्रकार के तीव्र स्फोट आदि को नष्ट कर देता है ॥ १३१ ॥

अथ कालस्फोटे गुञ्जापत्रादिचूर्णम्—

गुञ्जापत्रं शिलां यष्टीं गवां क्षीरेण पाययेत् ।
कालस्फोटं निहन्त्याशु मज्जा वा पुत्रजीवजा ॥ १३२ ॥

पुत्र जीव की मज्जा अथवा गुञ्जा (रत्ती या घुंघची) की लता के पत्र, शुद्धमनःशिला और मुलेठी इनको समभाग लेकर गाय के दुग्ध के साथ घोटकर चीनी मिला के पिलाना चाहिए । इस प्रकार यह योग प्रति दिन सेवन करने से कालस्फोट को नष्ट कर देता है ॥ १३२ ॥

अथ कालस्फोटे विष्णुक्रान्तादिप्रलेपः—

विष्णुक्रान्ता च पेटारी काञ्जिकेन तु पेषिता ।
कालस्फोटं हरेल्लेपाद् दुष्टग्रन्थिषु का कथा ॥ १३३ ॥

समान भाग से ली हुई विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) की जड़ और पेटारी वृक्ष की छाल को काञ्जी या जल के साथ पीसकर प्रलेप करने से कालस्फोट को भी नष्ट करती है फिर अन्य साधारण दुष्ट ग्रन्थि आदियों की क्या कथा है अर्थात् उन्हें भी अवश्य नष्ट करती ॥ १३३ ॥

अथ ग्रन्थ्यादौ पुनर्नवादिप्रलेपः—

पुनर्नवाऽर्काभयशिग्रुमुष्टिकरञ्जसिन्धूत्थमहौषधं च ।
गोमूत्रपिष्टं च सुखोष्णलेपाद् ग्रन्थ्यर्बुदं हन्त्यपचीं च सद्यः ॥१३४॥

पुनर्नवा की जड़ या पञ्चाङ्ग का चूर्ण, आक की जड़ का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, सहजने की छाल का चूर्ण, शुद्ध कुचले का चूर्ण, करञ्ज की छाल या बीज का चूर्ण, सैन्धव लवण और सोंठ का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में गोमूत्र के साथ एकत्र खरल करके अग्नि में गर्म कर मन्दोष्ण होने पर प्रलेप करना चाहिए।

यह रस प्रतिदिन प्रयुक्त करते रहने से ग्रन्थि, अर्बुद और अपची इन्हें शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १३४ ॥

अथ अर्बुदभेदः—

मेदो हि दोषमांसोत्थग्रन्थिरूपं ततो महत् ।
अर्बुदं दुष्टरुधिरं स्रवेत्तच्छोणितार्बुदम् ॥ ॥ १३५ ॥

प्रकुपित हुए वात, पित्त आदि दोष तथा मांस के दूषित होने से जब शरीर की मेद (चरबी) धातु दूषित हो जाती है तब प्रथम छोटी सी गांठ उभर आती है तथा धीरे २ वह बढ कर बडी हो जाती है इसी को अर्बुद कहते हैं । जो अर्बुद अधिकतर रक्त के दूषित होने के कारण उत्पन्न होता है तथा उस में से रक्त और पूय आदि का स्राव भी होता रहता है तब उसे शोणितार्बुद कहते हैं ॥ १३५ ॥

अर्बुदहररसः—

तुण्डलीयकवर्षाभूनागकन्याबलारसे ।
गोमूत्रे च रसः पिष्टः पुटपक्वोऽर्बुदादिजित् ॥ १३६ ॥

शुद्ध पारद अथवा पारे की भस्म या रस सिन्दूर को कांटेदार चोळाई (मेघनाद), पुनर्नवा, ताम्बूल के पत्ते का स्वरस, घृतकुमारी, बला (बरियारा) और गोमूत्र में क्रम से एक २ बार एक २ दिन तक घोट २ कर गोला बना के शराव सम्पुट में वन्द करके पुट देकर भस्म बना लेवें। अथवा चोलाई आदि द्रव्यों के स्वरस में पृथक् २ एक २ दिन तक घोट के एक २ पुट देवें । इस तरह प्रत्येक के स्वरस में घोट कर एक २ वार पुट देकर सिद्ध भस्म ग्रहण करके शीशी में भर देवें । यह रस प्रतिदिन सेवन करते रहने से अर्बुद, ग्रन्थि आदि व्याधियों को नष्ट कर देता हैं ॥ १३६ ॥

अथ सामान्यपायोः—

लिप्तं यवक्षारविडङ्गबीजं गन्धोपलस्याप्यशनैः कृतैर्यत् ।
रक्तेन मिश्रैः सरसस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैव ॥ १३७ ॥

यवक्षार और वायविडङ्ग के चूर्ण को समभाग लेकर जल में पीस कर प्रलेप करने से तथा शुद्ध गन्धक के चूर्ण को 'मक्खन के साथ सेवन करने से अर्बुद रोग शान्त हो जाता है । अथवा शिरीष के बीजों के चूर्ण को किसी पक्षी या

सरठ के रुधिर के साथ घोटकर प्रलेप करने से अर्बुद नष्ट हो जाता है ॥१३७॥

अथार्बुदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

पुराणघृतपानञ्च जीर्णलोहितशालयः । यवा मुद्गाः पटोलञ्च रक्तशिग्रुः कठिल्लकम् ॥१॥
शालिञ्च-शाकं वेत्राग्रं रक्षाणि च कटूनि च । दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥२॥
गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे । यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत् प्रकीर्तितम् ॥३॥

इति पथ्यानि।

अथापथ्यानि—

दुग्धेक्षुविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम् । पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दिकारि च ॥
अर्बुदेऽपथ्यमेतद्धि वर्ज्यमर्बुदरोगिभिः ॥ १ ॥ इत्यपथ्यानि ।

विमर्शः—योगरत्नाकर में इस योग का वर्णन इस प्रकार आता है ।

यथा—लिप्तं यवक्षारविडङ्गबीजं गन्धोपलैः स्यान्मसृणीकृतैर्यत् । रक्तेन मिश्रैः सरटस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैतत् ॥ इति ।

अथ गण्डमालाऽपचीलक्षणम्—

मेदोस्था गलकक्षवङ्क्षणतले मन्याद्दृशोः कुर्वते
वार्ताकीफलकोपमान्सकठिनान्गण्डान्सकण्डून्मलाः ।
पच्यन्तेऽल्परुजः स्रवन्ति नितरां रुह्यन्ति नश्यन्त्यलं
दूर्वेव क्षयवृद्धिभाञ्जि नृणां सा गण्डमालापची ॥ १३८॥

दूषित हुए मल (अर्थात् वात, पित्त, कफ), मेदो धातु को दूषित कर के गला, कक्षा (खांक), वंक्षण, मन्या और नेत्र के समीपवर्ति प्रदेश में वार्ताकी (भोरिङ्गणी या क्षुद्रभण्टाकी) के फल के समान (गोल) तथा दबाने से कठोर प्रतीत होने वाली और जिन में खुजली चलती हो ऐसी ग्रन्थियां उत्पन्न कर देते हैं। ये ग्रन्थियां कुछ दिनों के पश्चात् पक कर फूट जाती हैं तथा इनमें से रक्त और पूय आदि निकल जाने से अपने आप ठीक भी हो जाती हैं। इन ग्रन्थियों को दबाने से या ऐसे ही थोड़ी २ पीड़ा भी होती है। इस प्रकार ये ग्रन्थियां कुछ दिनों में ठीक हो कर नष्ट हुई दूब (दूर्वा) के समान फिर उत्पन्न हो जाती हैं। इस तरह इनका क्षय और प्रादुर्भाव जब तक शरीर में दोष रहते हैं तब तक होता ही रहता है। इस प्रकार के लक्षण जिसमें हों उसे गण्डमालापची रोग कहते हैं ॥ १३८ ॥

विमर्शः—सुश्रुत में गण्डमाला और अपची को पृथक् २ माना है यथा—
कर्कन्धु कोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डः॥इति गण्डमालालक्षणम्
ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये।
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ इत्यपचालक्षणम्।

परन्तु इन दोनों में कोई विशेष भेद न होने के कारण इस (रसरत्नसमुच्चय) में "सा गण्डमालापची" इस तरह से मिलित लक्षण बता दिया गया है। भोज ने भी अपची और गण्डमाला का प्रायः सम्मिलित लक्षण बताया है। यथा—

वातपित्तकफावृद्धा मेदश्चापि समाचितम्।
जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मत्स्याण्डसदृशान् बहून्॥
कुर्वन्ति ग्रन्थींस्तांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः।
तान् दोषानूर्ध्वगो वक्षःकक्षामन्यागलाश्रितः॥
नानाप्रकारान् कुरुते ग्रन्थीन् सा त्वपची मता।
अपचीं कण्ठमन्यासु कक्षावंक्षणसन्धिषु।
गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम्॥ इति।

अथ गण्डमालायां सुरवारुण्यादियोगः—

सुरवारुण्या मूलं गोमूत्रयुतं महेन्द्रकन्या च।
अपकरोति गण्डमालां पित्तं श्लक्ष्णं च परिघृष्टम्॥ १३९॥

इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण और महेन्द्रकन्या अर्थात् श्वेतापराजिता का चूर्ण इन दोनों को समभाग लेकर अथवा पृथक् २ लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर प्रलेप करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है। अथवा गोरोचन को जल से पीस कर लेप करने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है। कहीं २ पर "पित्त" के स्थान पर "पीतम्" ऐसा पाठान्तर मिलता है, इस लिये इस योग को लेप तथा पीने के लिये प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है॥ १३९॥

अथ गण्डमालायामर्कक्षीरादिलेपः—

अर्कक्षीरजयापुष्पतैललाक्षारसैः समैः।
गण्डमाला शमं याति प्रलिप्ता सप्तभिर्दिनैः॥ १४०॥

आक का दुग्ध, जयन्ती के पुष्प, तिल का तैल और लाख (लाक्षा) का रस इन्हें सम भाग लेकर पत्थर पर पीस कर सात दिन तक प्रलेप करते रहने से गण्डमाला रोग अवश्य नष्ट हो जाता है॥ १४०॥

अथ अपच्यां गिरिकर्णिकाप्रयोगः—

पुष्ये गृहीतं गिरिकर्णिकाया मूलं सिताया गलके निबद्धम् ।
गव्येन लीढं यदि वा घृतेन निहन्ति घोरामपचीं तदेव ॥ १४१ ॥

पुष्य नक्षत्र में श्वेत अपराजिता की जड़ को उखाड़ कर गले में बांधे रहने से तथा उस के चूर्ण को गाय के घृत में मिला कर सेवन करते रहने से भयङ्कर अपची रोग दूर हो जाता है ॥ १४१ ॥

अथ गण्डमालायां छुछून्दरीतैलम्—

छुछुन्दरीसाधिततैललिप्ता त्रिभिर्दिनैर्नश्यति गण्डमाला ॥ १४२ ॥

छुछुन्दरी नामक प्राणी अथवा तन्नामक काष्ठौषधि विशेष का कल्क १ पल तथा तैल ४ पल और जल १६ पल लेकर सब को एकत्र कड़ाही में डाल कर चूल्हे पर चढा के मन्द २ अग्नि के द्वारा पाक करना चाहिए । फिर सिद्ध तैल को छान कर शीशी में भर देवें । इस तैल के तीन दिन तक लगाने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है ॥ १४२ ॥

अथ गण्डमालायां सहदेवीप्रयोगः—

मूलिका सहदेव्युत्था रवौ ग्राह्याऽथ धारिता ।
गण्डमालाहरा कर्णे महादेवेन भाषिता ॥ १४३ ॥

रविवार के दिन सहदेवी (पीतपुष्पवाली बला का भेद) की जड़ उखाड़ कर कान के मूल प्रदेश (कर्णमूल) में बांधने से गण्डमाला रोग नष्ट हो जाता है । यह योग अवश्य ही गण्डमाला को दूर करता है इस में सन्देह नहीं है । यह शङ्कर भगवान् का बताया हुआ योग है ॥ १४३ ॥

अथ अपच्यादौ गुञ्जादिलेपः—

गुञ्जाटङ्कणशिग्रुमूलरजनीशम्पाकभल्लातकैः
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाऽभयालाङ्गली ।
वर्षाभूशरभूशिरीषलवणव्योषाश्वमारा विषम्
गोमूत्रैः शमयेद्विलिप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदम् ॥ १४४ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये कर्णरोग-नासा-रोग-मुखरोग-गलरोग-मुखपाक-मुखच्छाया-जिह्वा-दन्त-कंठरोग-गंड-माला-शिरोरोग-यूका-दारुण-केशरोग-व्रणरोग-भग्नरोग-भगन्दरा-पची-ग्रन्थ्यर्बुद-कालस्फोटादि-चिकित्सतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

गुञ्जा (घुंघची) की जड़ का चूर्ण, शुद्ध सुहागा, सहजने की जड़ की छाल का चूर्ण, हरिद्रा की गांठ का चूर्ण, अमलतास की फली के सूखे हुए गूदे का चूर्ण, शुद्ध भिलावों का चूर्ण, थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, चित्रक की जड़ का चूर्ण, करञ्ज की जड़ या बीजों का चूर्ण, सैन्धव लवण, वचा का चूर्ण, कूठ का चूर्ण, हरड़ का चूर्ण, कलिहारी की जड़ का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, शरपुङ्खा की जड़ क चूर्ण, सिरस की छाल का चूर्ण, समुद्र लवण, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, कनेर की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनामविष का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर खरल में गोमूत्र के साथ एकत्र पीसकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण में से थोड़ा सा चूर्ण लेकर गोमूत्र में मिलाके प्रतिदिन प्रलेप करने से अपची, ग्रन्थि, अर्बुद और श्लीपद आदि रोग अवश्य ही नष्ट होजाते हैं॥ १४४॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां कर्णरोग-नासारोग-मुखरोग-गलरोग-मुखपाक-मुखच्छाया-जिह्वा-दन्त-कण्ठरोग-गण्डमाला-शिरोरोग-यूका-दारुण-व्रण-रोग-केशरोग-भग्नरोग-भगन्दरापची-ग्रन्थ्यर्बुद-कालस्फोटादिचिकित्सितं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।

पञ्चविंशोऽध्यायः।

अथ क्षुद्ररोगाणां नामानि

व्यङ्गः कच्छपनीलिकाकुनखविद्धोत्कोठकोठालसैः
कक्षारुद्धगुदप्रसुप्तिविवृताविस्फोटवल्मीकरुक्।
विस्फः स्यात्कदराऽजगल्लिजतुमण्यन्धालजीराजिकाः
क्षुद्रा लाञ्छनशर्करेति च यवप्रख्याऽग्निरोहिण्यपि॥ १॥
जालाश्मगर्दभविदारिमसूरिकाभिः
सत्पद्मकण्टकरुजा सहगर्दभी च।
स्याच्छर्करार्बुदमषाननदूषिकैश्च
गण्डाह्वया पनसिका त्विरिवेल्लिकेति॥ २॥

व्यङ्ग, कच्छप, नीलिका, कुनख, विद्ध, उत्कोठ, कोठ, अलस, कक्षा, रुद्धगुद

(सन्निरुद्ध गुद), प्रसुप्ति, विवृता, विस्फोटक, वल्मीक, विस्फ (चिप्प), कदर, अजगल्ली, जतुमणि, अन्धालजी, राजिका, क्षुद्रा, लाञ्छन (न्यच्छ), शर्करा, यवप्रख्या, अग्निरोहिणी, जालगर्दभ, अश्मगर्दभ (पाषाणगर्दभ), विदारी, मसूरिका, पद्मकण्टक, गर्दभी, शर्करार्बुद, मषक, आननदूषिका (मुखदूषिका), गण्डाह्वया (गन्धाह्वया गन्धनामा वा), पनसिका और इरिवेल्लिका ये क्षुद्ररोग हैं ॥ १–२ ॥

बिमर्शः—सुश्रुत में ४४ क्षुद्ररोग गिनाये गये हैं यथा—अजगल्लिका, यवप्रख्या, अन्धालजी, विवृता, कच्छपिका, वल्मीक, इन्द्रवृद्धा, पनसिका, पाषाणगर्दभ, जालगर्दभ, कक्षा, विस्फोटक, अग्निरोहिणी, चिप्प, कुनख, अनुशयी, विदारिका, शर्करार्बुद, पामा, विचर्चिका, रकसा, पाददारिका, कदर, अलस, इन्द्रलुप्त, दारुणक, अरुंषिका, पलित, मसूरिकाः, योवनपिड़िका, पद्मिनीकण्टक, जतुमणि, मशक, चर्मकील, तिलकालक, न्यच्छ, व्यङ्ग, परिवर्तिका, अवपाटिका, निरुद्धप्रकश, सन्निरुद्धगुद, अहिपूतन, वृषणकच्छू, गुदभ्रंश ।

अथैषां सलक्षणचिकित्स—

अथाजगल्लिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता (ग्रन्थिसन्निभा) नीरुजा मुद्गसन्निभा ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

चिकित्सा—

तत्राजगल्लिकमामां जलौकाभिरुपाचरेत्।शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः॥१॥
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् । नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः ॥
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यन्त्यजगल्लिकाः ॥ २ ॥
वृषमूलविषालाभ्यां लेपो हन्त्यजगल्लिकाम् ॥ ३ ॥
श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैरपि विलेपयेत् । पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥४॥

अथ यवप्रख्याया लक्षणं चिकित्सा च—

यवाकाराः सुकठिना ग्रन्थिता मांससंश्रिता। पिड़का श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते १॥

चिकित्सा—

पूर्वं पिडकास्थाने स्वेदनं कृत्वा मनःशिलादेवदारुकुष्टकल्कैः प्रलेपयेत् ।
परिपाकगतां भित्वा व्रणवत् समुपाचरेत् ॥ १ ॥

अथान्धालज्या लक्षणं चिकित्सा च—

घनामवक्त्रां पिड़कामुन्नतां परिमण्डलाम्। अन्धालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम्॥१॥

चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म ततोऽवशेषं कर्म यवप्रख्येव कुर्यात् ।

विवृताया लक्षणम्—

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्।
विवृतामिति तां विद्यात् पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥ १ ॥

चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म कृत्वा। पाके सति पूयं निष्काश्य व्रणं काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमाषपर्णीमुद्गपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटश्रृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकञ्चेति मधुरौषधसिद्धघृतेन रोपयेत्।

अथ कच्छप्या लक्षणम्—

ग्रन्थयः पञ्च वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः।
कफानिलाभ्यामुद्भूतां विद्यात्तां कच्छपीमिति ॥ १ ॥

चिकित्सा—

मनःशिलादिकल्केन पाकं कृत्वा विभिद्य च व्रणवदुपाचरेत् ॥

अथ वल्मीकस्य लक्षणम्—

पाणिपादतले सन्धौ ग्रीवायामूर्ध्वजत्रुणि। ग्रन्थिर्वल्मीकवद्यस्तु शनैः समुपचीयते ॥१॥
तोदक्लेदपरीदाहकण्डूमद्भिर्व्रणैर्वृतः। व्याधिर्वल्मीक इत्येषः कफपित्तानिलोद्भवः ॥२॥

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकंक्षाराग्निभ्यांप्रसाधयेत्। मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः १
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्। वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुछिद्रं बहुद्रवम् ॥२॥

पूर्वं शस्त्रेण वल्मीकमुत्पाट्य क्षाराग्निकर्मणा व्रणस्थं पूयं प्रसाधयेत्। ततश्चमनःशिलादीनां कल्कैर्निम्बबीजभवं तैलं यथाविधि साधयित्वा व्रणं रोपयेत्। अथ तैलसाधनविधि र्यथा—द्विप्रस्थमितं निम्बबीजतैलं, मनःशिलादीनां दृषदि पिष्टं कल्कं प्रस्थार्द्धमितं, पाकार्थं जलञ्चाष्टप्रस्थमितं सर्वं कटाहे निक्षिप्य यथाविधि पचेत्। अयं विधिः पक्ववल्मीके कर्त्तव्यो यथोक्तं हि—

पक्वं वा तद्धि विज्ञाय गतीः सर्वा यथाक्रमम्। अभिज्ञाय ततश्छित्वा प्रदहेन्मतिमान् भिषक् १

इत्यादि।

अपक्वस्य तु पूर्वं शोधनरक्तमोक्षणलेपैरुपचारः प्रकर्त्तव्यः।

यथा प्रोक्तं च—

वल्मीकन्तु भवेद्यस्य नातिवृद्धं नमर्मजम्। तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥१॥
कुलत्थिकाया मूलैश्चदन्तीमूलैस्तथैव च। आरेवतस्य मूलैश्च गुडूच्या लवणेन च ॥२॥
श्यामामूलैः सपललैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत्। सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक् तमुपनाहयेत् ३

अथेन्द्रवृद्धालक्षणम्—

पद्मपुष्करवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम्। इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् १

अथेन्द्रवृद्धायाश्चिकित्सा—

अत्र हि पक्वपिडिकानां शोधनं कृत्वा क्षारकाकोल्यादिगणसिद्धसर्पिषा रोपणं कार्यम् ॥१॥

अथ पनसिकालक्षणम्—

कर्णोपरि समन्ताद्वा पृष्ठे वा पिडकोग्ररुक्। शालूकवत् पनसिकां तां विद्याच्छ्लेष्मवातजाम्॥१॥

अथ पनसिकायाश्चिकित्सा—

पूर्वं स्वेदनकर्म पश्चान्मनःशिलादिकल्कलेपं, पक्वञ्च व्रणवदुपाचरेत् ॥

अथ पाषाणगर्दभलक्षणम्—

हनुसन्धौ समुद्भूतशोफमल्परुजं स्थिरम्। पाषाणगर्दभं विद्याद्बलासपवनात्मकम् ॥१॥

चिकित्सा—

सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्। कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ १ ॥

अथ जालगर्दभलक्षणमाह—

विसर्पवत् सर्पति यो दाहज्वरकरस्तनुः। अपाकः श्वयथुः पित्तात् स ज्ञेयो जालगर्दभः॥१॥

चिकित्सा—

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्। जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम्॥१॥

अथेरिवेल्लिकालक्षणम्—

पिटिकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम्॥१॥

अस्याश्चिकित्सा जालगर्दभवत्।

अथ कक्षालक्षणम्—

बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्। पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत्॥१॥

एकामेवं विधां दृष्ट्वा पिटिकां स्फोटसन्निभाम्। त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते॥२॥

चिकित्सा —

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः। पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया ॥१॥

अथ विस्फोटकलक्षणम्—

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्ततः।

क्वचित् सर्वत्र वा देहे स्मृता विस्फोटका इति ॥ चिकित्सा तु कक्षोक्तां तथा पूर्वोक्तांश्च कुर्यात्।

अग्निरोहिणीलक्षणमाह—

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः। अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः॥१॥

सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम्।

तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपातजाम् ॥ २ ॥

चिकित्सा—

रक्तविसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम्।रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरक्षणम् ॥

शरीरस्य च संशुद्धिं तान्तु वृद्धां परित्यजेत् ॥ १ ॥

अथ चिप्यकुनखयोर्लक्षणं चिकित्सा च—

नखमांसमधिष्ठाय पित्तं वातश्च वेदनाम्। करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत्॥१॥
तदेव क्षतरोगाख्यं तथोपनखमित्यपि। अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षोऽसितः खरः॥
भवेत्तं कुनखं विद्यात् कुलीरमिति संज्ञितम्॥२॥

अथैतयोश्चिकित्सा—

चिप्यं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत्। गतोष्माणमथैनन्तु सेचयेदुष्णवारिणा॥१॥
शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य स्रावयेत्ततः। व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तु विचक्षणः॥२॥
स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम्। घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं पुनः पुनः॥३॥
काश्मर्याः स्वरसैः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः। अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशाम्यति॥४॥
श्लेष्मविद्रधिकल्पेन कुनखं समुपाचरेत्। नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति॥५॥
कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च॥
दाडिमकुसुमयवासैरभया सुश्लक्ष्णचूर्णिता लेपात्।
नखकोटिपूतीभावं शमयति शूलञ्च तत्क्षणादेव॥६॥

अथानुशयीलक्षणं चिकित्सा च—

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम्। कफादन्तःप्रपाकां तां विद्यादनुशयीं भिषक्॥
उपाचरेदनुशयीं श्लेष्मविद्रधिवद्भिषक्॥१॥

अथ विदारिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

विदारीकन्दवद्वृत्तां कक्षावंक्षणसन्धिषु। रक्तां विदारिकां विद्यात् सर्वजां सर्वलक्षणाम्॥१॥

चिकित्सा—

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम्। पाटनञ्च विपक्वायां ततो व्रणविधिः स्मृतः॥१॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥२॥

अथ शर्कराबुर्दलक्षणं यथा—

प्राप्य मांसं सिरास्नायूः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः।
ग्रन्थिं कुर्वन्ति भिन्नोऽसौ मधुसर्पिर्वसानिभम्॥१॥
स्रवत्यास्रावमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः। मांसं विशोष्य ग्रन्थितां शर्करां जनयेत् पुनः॥२॥
दुर्गन्धं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः सिराः। स्रवन्ति सहसा रक्तं तद्विद्याच्छर्कराबुर्दम्॥३॥

अथास्य चिकित्सा—

मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्कराबुर्दम्।

पामाविचर्चिकारकसानां कुष्ठाधिकारचिकित्साव्याख्यायां व्याख्या कृतमतस्ततो ज्ञेयम्।

अथ पाददारिकाया लक्षणं चिकित्सा च—

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः। पादयोः कुरुते दारीं पाददारीं तमादिशेत्॥१॥

अथ चिकित्सा—

पाददार्यां शिरां प्राज्ञो वेधयेत्तलशोधिनीम्। स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥१॥
मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः। सर्जोत्थसिन्धूद्भवगोरचूर्णं मधुघृतप्लुतम्।
निरुध्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जने ॥ २ ॥

उपोदिकाद्यं तलम्—

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचकर्कारुकैर्वारुकभस्मतोयैः।
तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥

इत्युपोदिकाद्यं तैलम्।

सैन्धवं चन्दनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडः।
गैरिका स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पङ्कजोपमौ।
गुडलवणघृतं चेत्तिन्तिडीयुक्तमेतत् द्विगुणमिह विदध्यात् मूत्रमेकत्र कृत्वा।
कतिचिदथ दिनानि किञ्चिदाशोष्य लेपात्। स्फुटितपदतलं स्यात्पद्मपत्राभमाशु ॥

अथ कदरस्य लक्षणं चिकित्सा च

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः।
ग्रन्थिः कोलवदुत्सन्नो जायते कदरस्तु तत् ॥ १ ॥
मेदोरक्तानुगैश्चैव दोषैर्वा जायते नृणाम् ॥
सकीलकठिनो ग्रन्थिर्निम्नमध्योन्नतोऽपिवा। कोलमात्रः सरुक् स्रावो जायते कदरस्तु सः॥२

अथ कदरचिकित्सा—

दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा।
अर्थात् शस्त्रादिना कीलकमुत्पाट्य तप्ततैलेन वह्निना वा सोत्सेधं स्थानं दहेत्।

अथालसस्य लक्षणं चिकित्सा च—

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ। दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विनिर्दिशेत्॥१॥

चिकित्सा—

पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम्। पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः॥१॥
क्षुद्रस्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत। ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत ॥२॥
करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु। रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हितः ॥३॥
एतत् सर्वं समं सञ्चूर्ण्य मधुना संमिश्र्यालसे लेपनं हितम्।

अथेन्द्रलुप्तस्य लक्षणं यथा—

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम्। प्रच्यावयति रोमाणि ततःश्लेष्मा सशोणितः॥१॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः। तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते॥२॥

अथास्य चिकित्सा—

इन्द्रलुप्ते सिरां मूर्ध्नि स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत्। कल्कैः समरिचैर्दार्व्याश्छलाकासीसतुल्यकैः
कुटन्नटदारुकल्कैर्लेपनं वा प्रशस्यते। प्रच्छयित्वाऽवगाढं वा गुञ्जाकल्कैः मुहुर्मुहुः ॥२॥
लेपयेदुपशान्त्यर्थं कुर्याद्वापि रसायनम्। मालतीकरवीराग्निनक्तमालविराचितम्।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ॥ ३ ॥

क्षीरात् समार्कवरसात् द्विप्रस्थे मधुकात्पले। तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥४॥

अथ दारुणकस्य लक्षणम्—

दारुणा कण्डरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते। कफवातप्रकोपेण विद्याद्दारुणकन्तु तम् ॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं हरेत्। कण्टकारी फलरसैस्तुल्यं तैलं विराचयेत्॥
जपापुष्पद्रवैर्वाथ तल्लेपो दारुणप्रणुत् ॥ १ ॥

आम्रबीजस्य चूर्णन्तु शिवाचूर्णं समद्वयम्। दुग्धपिष्टप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम्॥२॥

अथारुंषिकाया लक्षणम्—

अरुंषि बहुवक्राणि बहुक्लेदीनि मूर्ध्नि तु। कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरुंषिकाम्॥१॥

अथास्याश्चिकित्सा—

अरुंषिकां हृते रक्ते सेचयेन्निम्बवारिणा। दिह्यात् सैन्धवयुक्तेन वाजिविट्तरसेन तु ॥१॥
हरितालनिशानिम्बकल्कैर्वा सापटोलजैः। यष्टीनीलोत्पलैरेरण्डमार्कवैर्वा प्रलेपयेत् ॥२॥
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कौ धात्रीफलसमन्वितः। यष्टीमधुकयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरुंषिकाम्॥३॥

अथ हरिद्राद्यं तैलम्—

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः। एतत्तैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥१॥
खदिरारिष्टजम्बूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः। कुटजत्वक्सैन्धवं वा लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥२॥

अथ पलितस्य लक्षणं यथा—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः। पित्तञ्च केशान् पचति पलितं तेन जायते॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका। स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात् पलितं जयेत्॥१॥
धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम्। पञ्चाम्रमज्जे लौहस्य कर्षैकं च प्रदीयते ॥२॥
पिष्ट्वा लौहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि। लेपोऽयं हन्ति ह्यचिरादकालपलितं महत्॥३॥

अथ मसूरिकाया लक्षणम्—

दाहज्वररुजावन्तस्ताम्राः स्फोटाः सपीतकाः। गात्रेषु वदने चान्तर्विज्ञेया स्तां मसूरिकाः॥१॥

मसूरिकाचिकित्सा पूर्वमुक्ता।

अथ यौवनपिड़काया लक्षणम्—

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः। यूवानपिड़का यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः॥१॥

अथास्याश्चिकित्सा—

प्रथमं शिरावेधं कृत्वा ततश्च लेपादिकमं कुर्यात् ।

जातीफलं चन्दनञ्च मरिचैः सह पेषितम् । मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥ १ ॥

अथ पद्मिनीकण्टकलक्षणमाह—

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डुमत्पाण्डुमण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ १ ॥

अथास्य चिकित्सा—

पद्मिनीकण्टके रोगेच्छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥ १ ॥

अथ जतुमणिलक्षणम्—

नीरुजं सममुत्सन्नं मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं रक्तमीषच्च श्लक्ष्णं जतुमणिं विदुः ॥ १ ॥

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य क्षाराग्निभ्यां दहेत् ।

अथ मषकलक्षणम्—

अवेदनं स्थिरं चैव यस्य गात्रेषु दृश्यते । माषवत् कृष्णमुत्सन्नमनिलात्मशकं वदेत् ॥ १ ॥

अथास्य चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य क्षाराग्निभ्यां दहेत् ।

अथ तिलकालकलक्षणम्—

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च । वातपित्तकफोद्रेकात्तान् विद्यात्तिलकालकान् १

चिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य मतिमान् क्षाराग्निभ्यां दहेत्ततः ।

अथ न्यच्छस्य लक्षणम्—

मण्डलं महदल्पं वा श्यावं वा यदि वा सितम् । सहजं नीरुजं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ १ ॥

अथ व्यङ्गस्य लक्षणम्—

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः । सहसा मुखमागत्य मण्डलं विसृजत्यतः ॥

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ॥ १ ॥

अथ तयोश्चिकित्सा—

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशपा चैभिः ।

उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यङ्गापहं सिद्धम् ॥ २ ॥

व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ।

वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनाः ॥ २ ॥

अथ परिवर्तिकालक्षणम्—

मर्दनात् पीडनाद्वापि तथैवात्यभिघाततः । मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ १ ॥

तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म प्रतिनिवर्तते । मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ २ ॥

सवेदनः सदाहश्च पाकं च व्रजति क्वचित्। मारुतागन्तुसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम्॥
सकण्डूः कठिनाचापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता॥ ३॥

अथास्याश्चिकित्सा—

स्वेदोपनाहौ परिवर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात्।
प्रवेशयेच्चर्मशनैः प्रविष्टे मांसैः सुपिष्टैरुपनाहयेत्तम्॥ १॥

अथवा—

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत्।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शाल्वणादिभिः॥ १॥
ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म वेशयेत् पीडयेन्मणीम्।
प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत्॥
दद्याद्वातहरान् वस्तीन् स्निग्धान्यन्नानि भोजयेत्॥ २॥

अथावपाटिकालक्षणम्—

अल्पीयः खां (अल्पीयस्यां) यदा हर्षाद् बालां गच्छेत् स्त्रियं नरः।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तितं बलात्॥ १॥
मर्दनात् पीडनाद्वापि शुक्रवेगविघाततः।
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम्॥ २॥

अथास्याश्चिकित्सा—

स्नेहस्वेदरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम्॥ १॥

अथ निरुद्धप्रकशस्य लक्षणम्—

वातोपसृष्टमेवन्तु चर्म संश्रयते मणिम्। मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥१॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम्। मूत्रं प्रवर्तते जन्तो र्मणि र्न च विदीर्यते॥
निरुद्धप्रकशं विद्यात् सरुजं वातसम्भवम्॥ २॥

अथास्य चिकित्सा—

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतो मुखीम्। दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत्॥१॥
परिषिञ्चेद्वसां मज्जां शिशुमारवराहयोः। चुक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम्॥२॥
त्र्यहात् त्र्यहात् स्थूलतरां सम्यक् नाडीं प्रवेशयेत्।
स्रोतो विवर्द्धयेदेवं स्निग्धमन्नञ्च भोजयेत्॥
भित्वा वा सीवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत्॥ ३॥

अथ सन्निरुद्धगुदलक्षणम्—

वेगसन्धारणाद्वायु र्विहतो गुदमाश्रितः। निरुणद्धि महत् स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च॥१॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति। सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात् सुदुस्तरम्॥२

अथास्य चिकित्सा—

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैः हितः। तथा निरुद्धप्रकशक्रिया कार्या सदा हिता ॥ १ ॥

अथाहिपूतनलक्षणम्—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्। स्विन्नस्याप्लाव्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवः॥१॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते। एकीभूतं व्रणै घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥२॥

अथास्य चिकित्सा—

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखदिरक्वाथै व्रणानां क्षालनं हितम्॥१॥
शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वलेपः कार्योऽहिपूतने। पटोलत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्।
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥

अथ वृषणकच्छूलक्षणम्—

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः। यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात् कण्डूं जनयते तदा ॥१॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते। प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम्॥२॥

चिकित्सा—

सर्जाम्बुकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः।
उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ १ ॥

भिषग् वृषणकच्छुं तु चिकित्सेत् पामरोगवत्। अहिपूतनानिर्दिष्टक्रियया पि च तां हरेत्॥२॥
कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्ड्वहिपूतने ॥ ३ ॥

अथ गुदभ्रंशस्य लक्षणमाह—

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं वहिः। रूक्षदुर्बलदेहस्य तां गुदभ्रंशमादिशेत ॥१॥

अथास्य चिकित्सा—

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्तं प्रवेशयेत्। प्रविष्टं रोधयेद्यत्नाद्गव्यसच्छिद्रचर्मणा ॥१॥
पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः॥२॥
मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्। स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥३॥
चाङ्गेरीकोलदध्याम्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४ ॥
वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्। तक्रेण शीलयेत् पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम्॥५॥

अथ मूषकतैलम्—

मूषकान् दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्। तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम्॥१॥
अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति। विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगन्दराः॥२॥
गुदं च गव्यपयसा वेशयेदविशङ्कितः। दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥३॥
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ४ ॥

अथ क्षुद्ररोगेषु पथ्यापथ्यविधिः—

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारागानुकारिषु। दोषान् दूष्यानवस्थाश्च निरीक्ष्य मतिमान् भिषक् ॥१॥

तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः। यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥२

इति सलक्षणपथ्यापथ्यक्षुद्ररोगचिकित्साप्रक्षिप्ता।

अथ क्षुद्ररोगे पर्पटीप्रयोगविधिः—

सर्पिषा निम्बचूर्णेन प्रयुक्ता पर्पटी हरेत्।
मसूरिकाःक्षुद्ररोगानन्यानपि च दुस्तरान् ॥ ३ ॥

पूर्व में कहे हुए पर्पटीरस को यथोचित मात्रा से निम्ब के पञ्चाङ्ग के चूर्ण और घृत के साथ सेवन करने से मसूरिका तथा अन्य प्रकार के समग्र दुःसाध्य क्षुद्ररोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

अथ व्यङ्गे शशरुधिरप्रयोगः; जातीफलप्रयोगश्च—

तत्कालशस्त्रप्रहतः शशो यस्तस्याऽसृजा नश्यति लिप्यमानम्।
व्यङ्गं मुखे जातिफलस्य बाह्यत्वचाऽथवा सन्ततमेव लिप्तम् ॥४॥

तुरन्त मारे हुए खरगोश के रक्त को लेकर मुख पर प्रलेप करने से या मर्दन करने से व्यङ्ग नष्ट हो जाता है अथवा जायफल के बाहरी या ऊपर के छिलकों को जल से पत्थर पर पीस कर प्रलेप करने से व्यङ्ग नष्ट हो जाता है ॥४॥

अथ व्यङ्गे इङ्गुदीमज्जप्रयोगः—

इङ्गुदीफलसमुद्भवमज्जा पेषिताऽतिशिशिरेण जलेन।
एकविंशतिदिनप्रविलिप्ता व्यङ्गमाननभवं परिमार्ष्टि ॥५॥

इङ्गुदी (हिङ्गोट) के फलों को गिरी को अत्यन्त शीतल जल के साथ पीस कर प्रतिदिन मुख पर प्रलेप या मर्दन करना चाहिए। इस प्रकार २१ दिन तक प्रलेप करने से मुख का व्यङ्ग (झांई) रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ कुनखे स्नुहीक्षीरादिप्रलेपः—

उद्धृत्य कुनखं क्षीरं स्नुकपर्णीटङ्कणं समम्।
सम्यङ्‌ निरुद्धदाहं च मूले कृत्वा नखी भवेत् ॥ ६ ॥

कुनख अर्थात् सड़े गले तथा काले नख को शस्त्र से उखाड़ कर वहां के स्थान को तथा नख की जड़ को अग्निकर्म की विधि से दग्ध करके थूहर का दुग्ध, सप्तपर्ण का दुग्ध और शुद्ध सुहागे को सम भाग लेकर पत्थर पर अच्छी तरह पीस के प्रलेप करना चाहिए। इस तरह ३ या ४ दिन प्रलेप करने से खराब नख के स्थान पर सुन्दर नख निकल आता है ॥ ६ ॥

अथ कुनखे अभयाप्रयोगः—

व्रणपूतिपूयजुष्टं नखविवरं मङ्क्षु रोपयत्यभया ।
नानाविधैः किमेतैरास्फोतारविकुरण्टकक्षीरैः ॥ ७ ॥

केवल हरड़ को पानी के साथ घिस कर व्रण के दुर्गन्धित पूय (मवाद) से युक्त नख के विवर में अर्थात् नाखून में व्रण होकर दुर्गन्धित पूय निकलता हो तथा छिद्र भी हो गया हो ऐसे रोग में लगाने से वह शीघ्र ही उसे भर देती है तथा अन्य प्रकार के आस्फोता, आक और कुरण्ट आदि के क्षीर से क्या प्रयोजन । अर्थात् इन सब की अपेक्षा दुर्गन्धित व्रण को शुद्ध कर के भरने में अभया का प्रलेप अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

अथ कुनखे कुष्ठादिप्रलेपप्रयोगः—

सकुष्ठं जीरकं तोयैः पिष्ट्वा लेपेन नाशयेत् ॥ ८ ॥

कूठ और जीरे को समभाग लेकर शीतल जल में पीस के कल्क बना लेवें । इस का प्रलेप करने से कुनखादिक नख का विकार नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

अथ कुनखे पुत्रजीवप्रयोगः

पुत्रजीवस्य वा मज्जां तोयैः पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ ९ ॥

अथवा जिया पोते की मज्जा के चूर्ण को जल में पीस कर प्रलेप करने से भी कुनखरोग में लाभ होता है ॥ ९ ॥

अथ कक्षाग्रन्थौ शिग्रुप्रयोगः—

शिग्रुमूलं निशातोयैः कक्षाग्रन्थिहरं लिपेत् ॥ १० ॥

शिग्रु (सहजन) की जड़ के चूर्ण को हल्दी के स्वरस या क्वाथ के साथ पीस कर प्रलेप करने से कक्षा और अन्य ग्रन्थि रोग नष्ट हो जाता है ॥ १० ॥

अथ कक्षाग्रन्थौ विषादिलेपः—

विषं पुनर्नवामूलं जललेपेन तं जयेत् ॥ ११ ॥

शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण और पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण दोनों को समभाग लेकर जल में पीस के प्रलेप करने से कक्षा की ग्रन्थि अथवा कक्षा और अन्यविध ग्रन्थिरोग नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

अथ स्तनविद्रधौ क्रियाक्रमः—

सर्वेषां स्तनरोगाणां रक्तमोक्षः प्रशस्यते ।

पूयपक्कः स्तनो यः स्याल्लेपस्तस्यावपाटने ॥ १२ ॥

सर्व प्रकार के सब रोगों में वहां के दूषित रक्त को जलौकावचारण या शिरामोक्ष के द्वारा निकाल देना श्रेष्ठ है। यदि स्तन में पाक हो कर पूय पड़ गया हो तो आगे कही हुई उष्ण औषधियों का प्रलेप करके पके हुए फोड़े को फोड़ देना चाहिए तथा मन्दोष्ण जलमें शुद्ध रुई को भींगो कर धीरे २ धोना चाहिए। इस तरह पूय निकाल कर व्रण को साफ कर देना चाहिए ॥ १२ ॥

अथ स्तनद्रिधिस्फोटने एकवीरप्रयोगः—

एकवीरस्य मूलं तु आजमूत्रेण लेपयेत् ।
तत्क्षणात्स्फुटते पक्कं शस्त्रैर्वा स्फोटयेद्भिषक् ॥ १३ ॥

एकवीर नामक वृक्षकी जड या बांझ ककोड़े को जड़ को बकरी केमूत्र में पीस कर प्रलेप करने से पका हुआ फोड़ा (विद्रधि) फूट जाता है। अथवा विद्रधि को शुद्धशस्त्र से खोल कर पूय को निकाल देनी चाहिए तथा उष्ण जल से धोकर शोधक औषधि (निम्बपत्र चूर्णकल्क) लगा देनी चाहिए ॥ १३ ॥

अथ स्तनविद्रधिरोपणे यष्ट्यादिचूर्णम्—

यष्टीनिम्बहरिद्रा च निर्गुण्डी धातकी समम् ।
चूर्णं स्तनव्रणे देयं रोपणं कुरुते हितम् ॥ १४ ॥

मुलेठी का चूर्ण, निम्ब के पञ्चाङ्ग का चूर्ण, हल्दी का चूर्ण, निर्गुण्डी को जड़ का चूर्ण और धाय के पुष्प का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर एकत्र खरल में पीस के शीशी में रख देवें। इस चूर्ण को पूय आदि निकल जाने पर शुद्ध हुए स्तन व्रण में भर कर पट्ट बन्धन कर देना चाहिए। यह योग स्तनव्रण को जल्दी ही भर देता है ॥ १४ ॥

अथ स्तनविद्रधिरोपणेदारुवर्तिः—

मध्वाज्यैर्देवदारुं च पिष्ट्वा वर्तिं प्रलेपयेत् ।
पूयपक्के स्नेत क्षिप्त्वा रोपणं कुरुते क्षणात् ॥ १५ ॥

देवदारु के चूर्ण को शहद् और घृत के साथ खरल में घोट कर वर्ति बना लेनी चाहिए। यह वर्ति पके हुए व्रण का फूट कर पूय निकल जाने के बाद व्रण में रखने से उसे अच्छी तरह भर देती है ॥ १५ ॥

अथ लिङ्गरोगचिकित्सा—

तत्रादौबोलप्रयोगः—

लिङ्गव्याधौ लोहितं स्रावयित्वा
पश्चाद्बोलं भक्षयेत्तस्य नुत्यै ॥ १६ ॥

मनुष्य के जननेन्द्रिय में शोथ हो कर पाक हो गया हो या उस में अन्य किसी प्रकार की उपदंश आदि व्याधि हो तब प्रथम वहां का रक्त मोक्षण करना चाहिए तथा त्रिफलादि क्वाथ से जननेन्द्रिय का प्रक्षालन करना चाहिए। तथा भीतरी सेवन के लिये बोल के चूर्ण का सेवन करने से लिङ्गव्याधि नष्ट हो जाती है॥१६॥

अथ लिङ्गपाके उडुम्बरादिक्षालनम्—

उदुम्बरवटाश्वत्थसाम्रजम्बूत्वचः शृतम्।
जलैः क्वाथं च तेनैव क्षालयेल्लिङ्गपाकनुत् ॥ १७ ॥

उदुम्बर (गूलर), बट (बरगद), अश्वत्थ (पीपल), आम और जामून इन सब की छाल का समभाग चूर्ण लेकर अठगुने जल में क्वाथ बनाकर चतुर्थांश शेष रख के छान लेवें। इस क्वाथ से जननेन्द्रिय को बार २ प्रक्षालित करते रहने से उसका पाक आदि रोग नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

अथ लिङ्गपाके जीरकप्रयोगः—

कुमारीरससम्पिष्टं जीरकं लेपयेद्भिषक्।
तेन दाहश्च पाकश्च शममाप्नोति निश्चितम् ॥ १८ ॥

जीरे के चूर्ण को घृतकुमारी के स्वरस के साथ पीस कर प्रलेप करने से लिङ्ग की जलन, पाक तथा पीड़ा निश्चय ही दूर हो जाती है ॥ १८ ॥

अथ लिङ्गपाके महाशङ्खप्रयोगः—

महाशङ्खं जलैर्घृष्ट्वा तेन लिङ्गं प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥

अथवा बड़े शङ्ख की नाभि या मनुष्य की शङ्खास्थि (टेम्पोरल बोन) को जलके साथ घिस कर लिङ्ग पर लेप करने से उसकी समस्त व्याधियां नष्ट होजाती हैं॥१९॥

अथ लिङ्गरोगे घोण्टादिलेपः—

घोण्टां(१)पूगं च वा तोयैः सारं वा खदिरोद्भवम्।
जलैः पिष्ट्वा प्रलेपोऽयं लिङ्गरोगहरः परम् ॥ २० ॥

---

(१) "घोण्टांपूगञ्च वा तोयैः" इत्यत्र "कुष्ठं पूगं वचा तोयैः" इति पाठान्तरम्।

वेर की गूद्दी और सुपारी को समभाग लेकर जल में पीस कर लेप करने से अथवा खैर के सार (कत्थे) को जल में पीस कर प्रलेप करने से लिङ्गरोग नष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

अथ लिङ्गपाके गन्धप्रयोगः—

सुगन्धजघृतैर्लेपः पक्वलिङ्गे सुखावहः ॥ २१ ॥

लिङ्ग के पाक में शुद्धगन्धक को गोघृत में पीस कर प्रलेप करना श्रेष्ठ है । अथवा शास्त्रान्तर में बने हुए सुगन्धनामक घृत का लेप लाभदायक होता है ॥२१॥

अथ लिङ्गपाकेनिम्बादिचूर्णम्—

निम्बखादीरमञ्जिष्ठाचूर्णं च पतनं जयेत् ॥ २२ ॥

निम्ब का पञ्चाङ्ग, खदिर का सार (कत्था) और मंजीठ इन को समभाग लेकर लोहे की ओखली में कूट पीस कर चूर्ण बना लेवें । इस चूर्ण को व्रण में भर कर पट्टबन्धन करने से लिङ्ग के मांसपेशी का पतन (अर्थात् सडा हुआ लिङ्गपेशी का मांस) दूर हो जाता है ॥ २२ ॥

अथ लिङ्गव्रणरोपणे सैन्धवप्रयोगः—

यवचिञ्चारसैर्घृष्टं सैन्धवं रोपयेद्व्रणम् ।
ग्रन्थिः कट्यां च जघने शममाप्नोति नान्यथा ॥ २३ ॥

यव (जौ) और चिञ्चा (इमली) अथवा यवचिञ्चा (खिरनी) के स्वरस में सैन्धव लवण को पीस कर प्रलेप करने से उपदंश आदि के व्रण भर जाते हैं । तथा कटिप्रदेश और जघनप्रदेश की ग्रन्थि भी बैठ जाती है अथवा उसका पूय निकल जाने से ठीक हो जाती है ॥ २३ ॥

अथ लिङ्गव्रणादौ शिग्रुप्रयोगः—

शिग्रुमूलं त्वचस्तोयैः पिष्ट्वा लेपेन तं जयेत् ॥ २४ ॥

सहजन की जड़ के चूर्ण को दालचीनी के क्वाथ में पीसकर प्रलेप करने से लिङ्ग के उपदंशादि सम्बन्धी व्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

अथ लिङ्गादिग्रन्थौ कुष्ठादिलेपः—

कुष्ठजीरकयोर्लेपस्तोयैर्ग्रन्थिप्रशान्तये ॥ २५ ॥

कूठ और जीरे को समभाग लेकर महीन चूर्ण बना लेना चाहिए । यह चूर्ण जल में पीसकर प्रलेप करने से ग्रन्थि (लिङ्ग ग्रन्थि) रोग नष्ट हो जाता है ॥२५॥

अथ गुह्यादिगतपीटिकायामश्वत्थादिप्रलेपः—

अश्वत्थस्य त्वचो भस्म चूर्णेन सह मिश्रितम् ।
नवनीतं द्वयोस्तुल्यं मद्यं तेन विलेपनात् ॥
आसने गुदपार्श्वे च कट्यां च पिटिकां जयेत् ॥ २६ ॥

पीपल की छाल की राख (भस्म) और चूना इन दोनों को बराबर लेकर समभाग मक्खन में पीस कर मलहर (मलहम) बना लेना चाहिए । यह मलहर आसन अर्थात् नितम्ब, गुदपार्श्व और कटिप्रदेश में लगा कर मर्दन करने से वहां की पीटिका अर्थात् फोड़े फुन्सियों को नष्ट कर देता है ॥ २६ ॥

अथ लिङ्गादिपिडकायां वाकुचीचित्रकप्रयोगौ—

गोमूत्रैः क्षालयेत्तां च लेपो वाकुचिबीजकैः ।
कृत्वा कण्डूं निहन्त्याशु चित्रकं वा गवां जलैः ॥ २७ ॥

लिङ्ग की ग्रन्थि अथवा नितम्ब, गुदपार्श्व और कटिप्रदेश की ग्रन्थि को गोमूत्र से प्रथम धोकर उस पर वाकुची के बीजों के चूर्ण की पुल्टिस बांधनी चाहिए । अथवा चित्रक की जड़ के चूर्ण को गोमूत्र में पीस कर कुछ गरम करके प्रलेप करना चाहिए । इस प्रकार यह योग सर्व प्रकार की ग्रन्थि और वहां की खुजलो को नष्ट कर देता है ॥ २७ ॥

अथ लिङ्गादिपिड्कायां सर्पाक्षीप्रयोगः—

नरमूत्रेण सर्पाक्षीं पिष्ट्वा लेपेन तां जयेत् ॥ २८ ॥

सर्पाक्षी को जड़ अथवा पञ्चाङ्ग के चूर्ण को मनुष्य के मूत्र में पीस कर प्रलेप करने से सर्व प्रकार की गांठे नष्ट हो जाती है ॥ २८ ॥

अथ उपदंशहरो (उपस्थव्याधिहरो) धूपः—

लवङ्गजानां ल(न)वकं कर्पूरं चणसम्मितम् ।
दरदं तोलमानं च सर्वं खल्ले विमर्दयेत् ॥ २९ ॥
ब्रह्मवृक्षं कोकिलाक्षैः सर्वं यत्नेन मर्दयेत् ।
यावत्कज्जलसङ्काशं श्यामतां च तथैव हि ॥ ३० ॥
चतुर्दशसमा कार्या पुडिका बन्धयेद्भिषक् ।
रविवारे समादेया ह्यङ्गारे छगणोद्भवे ॥ ३१ ॥
तां निक्षिप्याऽथ सङ्कोच्य नासिकां विवृतां नयेत् ।

मुखमाच्छाद्य श्वासेन यातायातेन ग्राहयेत् ॥ ३२ ॥
वीटिकापूर्णवदनो द्विवारं कारयेत्सदा।
एवं सप्तदिनं कृत्वा पश्चात्स्नानादिकं चरेत् ॥ ३३ ॥
पथ्यं निर्लवणं देयं जलं शीतं निषेवयेत्।
अनेन योगराजेन लिङ्गव्याधिः प्रशाम्यति ॥ ३४ ॥

लवङ्ग का चूर्ण १ लव अर्थात् तोले भर हिङ्गुल की अपेक्षा पादांश (४मा०) तथा एक चने के बराबर भीमसेनी कर्पूर (कुछ टीकाकारों ने रसकर्पूर अर्थ भी किया है), शुद्ध हिङ्गुल १ तोला, ब्रह्मवृक्ष अर्थात् ढाक के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ तोला, तालमखाने का चूर्ण १ तोला लेकर सब को खरल में डालकर अच्छी तरह से मर्दन कर के कज्जल के समान महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। पश्चात् इस चूर्ण की चौदह पुडिएं बना लेनी चाहिए। इस चूर्ण का रविवार के दिन से धूम्रपान करना आरम्भ करना चाहिए। चौदह पुडकियों में से एक पुडकी रविवार के दिन लेकर उसको जङ्गली छायों के निर्धूम अङ्गार के ऊपर डाल कर उस पर मध्य में छिद्र वाला एक ढक्कन ढक देना चाहिए। इस ढक्कन के छिद्र में एक रबर या बांस की या मिट्टी की नली लगाकर मुख को बन्द करके नासिका से धूम्रपान करना चाहिए। इस प्रकार दो वार धूएं को श्वास लेते समय भीतर खींच कर श्वास छोडते समय निकाल देना चाहिए। पश्चात् जल से कुल्ले करके मुख शुद्धि के लिये ताम्बूल भक्षण करना चाहिए। इस विधि से सात दिन तक इस योग का धूम्रपान करना चाहिए तथा आठवें दिन स्नान करना चाहिए। इस धूम्रपान के सेवन करते समय पथ्य में निमक से रहित भोजन और शीतल जल का पान करना चाहिए। इस प्रयोग के यथाविधि सात दिन तक सेवन करने से लिङ्ग की समस्त व्याधियां नष्ट हो जाती हैं ॥ २९-३४ ॥

अथ कण्ड्वादौ काञ्चनीप्रयोगः—

लेपयेत्काञ्चनीमूलं नरमूत्रेण पेषितम्।
कण्डूपामा शमं याति सर्वाङ्गीणा न संशयः ॥ ३५ ॥

काञ्चनी अर्थात् हरिद्रा की जड़ को या कचनार की जड़ को मनुष्य के मूत्र में पीस कर प्रलेप करने से शरीर के किसी भाग में उत्पन्न हुई कण्डू (खुजली) और पामा शान्त हो जाती है ॥ ३५ ॥

अथ पामायां शाखोटकक्काथः—

शाखोटस्य त्वचस्तोयैः पक्त्वा क्राथं समाहरेत् ।
पिबेद्गोमूत्रसन्तुल्यं पामार्तः सुखमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥

शाखोट नामक वृक्ष की छाल का क्वाथ बना कर उस में सम भाग गोमूत्र मिला कर आधे पल या एक पल के बराबर कुछ दिन तक पीने से पामा रोग से पीड़ित पुरुष सुखी हो जाता है अर्थात् उस की पामा नष्ट हो जाती है ॥३६॥

अथ पादकण्डूहरयोगः—

पादकण्डूहरं कुर्यान्नवनीतेन मृङ्क्षणम् ।
हयारिपत्रधूपेन स्वेदनं तदनन्तरम् ॥ ३७ ॥

पैर की खुजली को नष्ट करने के लिये प्रथम पैरों के ऊपर मक्खन लगा कर मर्दन करना चाहिए । पश्चात् कनेर के पत्तों की धूनी से पैरों का स्वेदन करना चाहिए॥ ३७ ॥

अथ पाददाहे तिलादिचूर्णम्—

पाददाहहरक्काथे तिलाद्विगुणवाकुची ।
चूर्णिता मधुसर्पिर्भ्यां द्विकर्षं तत्प्रशान्तये ॥ ३८ ॥

पैरों की जलन को नष्ट करने वाले द्रव्यों के क्वाथ में अर्थात् मसूर की दाल के क्वाथ में तिलों का चूर्ण और तिल चूर्ण से द्विगुण वाकुचीबीजचूर्ण डाल कर दिन भर घोटना चाहिए। फिर इस कल्क को शहद् और घृत में मिला कर या इन के साथ घोट कर सेवन करना चाहिए। इस तरह यह योग पैरों की जलन की शान्ति के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ३८ ॥

अथपादकण्डूहरं प्रयोगान्तरम्—

पादकण्डूविनोदार्थं नवनीतेन मृङ्क्षणम् ॥ ३९ ॥

पैर की खुजली को नष्ट करने के लिये पैरों के ऊपर मक्खन को लगा कर मर्दन करना चाहिए ॥ ३९ ॥

अथ पादस्फुटने पथ्यामर्दनम्—

पथ्याघृतेन चञ्चूर्ण्यं मर्दनं करपादयोः ॥ ४० ॥
स्फुटितत्वनिवृत्त्यर्थं,—

हाथ तथा पैरों में फटी हुई बिवाई को नष्ट करने के लिये हरड़ के चूर्ण को घृत के साथ घोट कर हाथ और पैरों में प्रलेप कर के मर्दन करना चाहिए ॥४०॥

अथ कदरे यवचिञ्चादिकषायः—

—यवचिञ्चाऽऽधपक्वया।

शिलादिना कृते भेदे षड्गुणं च द्रवं क्षिपेत् ॥ ४१ ॥

शिला (पत्थर, कङ्कड़,) आदि के द्वारा पैरों में चोट लगने से उत्पन्न हुए कदरादिक रोग को नष्ट करने के लिये उपर्युक्त हरड़ का चूर्ण १ तोला तथा पकी हुई यव चिञ्चा अर्थात् क्षीरिणी (खिरनी) की जड़ का चूर्ण आधा तोले भर लेकर षड्गुण जल में क्वाथ बना कर चतुर्थांश शेष रख के उस से पैर का परीषेक या मर्दन करना चाहिए ॥ ४१ ॥

अथ विपादिकायां गुडादिप्रलेपः—

गुडगुग्गुलुसिन्दूरमुशीरं गैरिकं मधु।

मदनं घृतसंयुक्तं पादस्फोटे प्रलेपयेत् ॥

सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ स्यातां पङ्कजसन्निभौ ॥ ४२ ॥

पुराना गुड़, शुद्ध गूगल, शुद्ध सिन्दूर, खस का चूर्ण, शुद्ध गेरू का चूर्ण, शहद् और मैन फल का चूर्ण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस के घृत के साथ घोट कर मलहर बना लेना चाहिए। यह मलहर पैरों पर सात दिन तक लगाने से उन्हें कमल के समान कोमल और सुन्दर कर देता है ॥४२॥

अथ विपादिकायां मदनादिप्रलेपः—

मदनं सिक्थकं तुल्यं सामुद्रं लवणं तथा।

महिषीनवनीतेन सुतप्तालेपनाद्भवेत् ॥

सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ॥ ४३ ॥

अथवा मैन फल, मोम, समुद्र का लवण, इन तीनों को बराबर २ लेकर खरल में महीन पीस के भैंस के मक्खन के साथ घोट कर गरम कर के शीशी में से थोड़ा मलहर निकाल कर गरम कर के पैरों पर प्रतिदिन लेप करना चाहिए। इस तरह एक सप्ताह तक लेप करनेसे पैर कमलके समान निर्मल हो जाते हैं ॥४३॥

अथ कण्ड्वादौ रसादिप्रलेपः—

रसं गन्धं समं मर्द्यं द्वाभ्यां तुल्यं च काञ्चनम्।

दिनैकं चित्रकद्रावैः पिष्ट्वा लेपं प्रकारयेत् ॥

कण्डूगण्डं खुडं हन्ति गुल्फयोरन्तरस्थितम् ॥ ४४ ॥

शुद्ध पारद और गन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में घोट

के महीन तथा मसृण कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर कज्जली के बराबर काञ्चन अर्थात् शुद्ध हरताल (कुछ टीकाकारों ने काञ्चन से हरिद्रा या कचनार को लिखा है) लेकर महीन चूर्ण करके कज्जली के साथ चित्रक की जड़ के स्वरस या क्वाथ से दिन भर घोट कर मलहम बना लेना चाहिए। यह मलहर प्रलेप विधि से प्रयुक्त करने पर दोनों गुल्फों के भीतर या एडी या पाद तल आदि में उत्पन्न हुई खुजली, मांस का उठा हुआ गण्ड अर्थात् गांठ और खुड रोग को नष्ट कर देता है ॥ ४४ ॥

अथ स्वरभङ्गे—

धात्रीफलस्वरसप्रयोगः—

धात्रीफलरसः क्षीरैः पीतः स्यात्स्वरभङ्गनुत् ॥ ४५ ॥

आंवलों के फलों का १ पल भर स्वरस निकाल कर उस में दुग्ध मिलाकर प्रतिदिन पीने से स्वरभङ्ग रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४५ ॥

अथ स्वरभङ्गे देवदार्वादिचूर्णम्—

देवदारुकणाव्योषशताह्वापत्रकं शिला ।
वचासैन्धवशिग्रूत्थमूलं पेष्यं समं समम् ॥ ४६ ॥
कर्षैकं मधुसर्पिर्भ्यां मासमात्रं सदा लिहेत् ।
मासैकं कर्षकर्षं च किन्नरैः सह गीयते ॥ ४७ ॥

देवदारु का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, व्योष अर्थात् सोंठ का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, सौंफ का चूर्ण, तेजपत्र का चूर्ण, शुद्धमनःशिला का चूर्ण वचा का चूर्ण, सैन्धव लवण, सहजन की जड़ का चूर्ण, इन सब चूर्णों को समभाग लेकर खरल में एकत्र करके दिन भर पीस कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को एक २ कर्ष (१६ मा०) भर लेकर प्रतिदिन शहद् और गाय के घृत के साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए। इस तरह एक मास तक सेवन करने के पश्चात् दूसरे महीने तक कर्ष कर्ष अर्थात् दो कर्ष भर प्रतिदिन सेवन करना चाहिए अथवा प्रथम एक मास तक उपर्युक्त देवदार्वादि चूर्ण को एक कर्ष भर लेकर सेवन करें तथा दूसरे मास में कर्ष अर्थात् बहेडे के १ कर्ष भर चूर्ण को मधु और घृत के साथ सेवन करें। इस प्रकार दो मास तक इस योग के सेवन करने से मनुष्य के गले के रोग (स्वर भङ्गादि) नष्ट हो जाते हैं तथा उसका स्वर किन्नरों के समान कर्णप्रिय हो जाता है ॥ ४६–४७ ॥

अथ स्वरभेदे पथ्यापथ्यव्यवस्था--

स्वेदो वस्ति धूमपानं विरेकः कवलग्रहः। नस्यं भाले शिरावेधो यवा लोहितशालयः॥१॥
हंसाख्वीताम्रचूड़केकिमांसरसाः सुरा। गोकण्टकः काकमाची जीवन्ती वालमूलकम्॥२॥
द्राक्षापथ्यामातुलुङ्गं लशुनं लवणार्द्रकम्। ताम्बूलं मरिचं सर्पिः पथ्यानि स्वरभेदिनाम्॥३॥

इति पथ्यम्।

अथापथ्यम्—

आमं कपित्थं वकुलं शालूकं जाम्बवानि च। तिन्दुकानि कषायाणि वमिः स्वप्नं प्रजल्पनम्
अन्नपानं च यत्नेन स्वरभेदी विवर्जयेत्। इति पथ्यापथ्यानि।

अथ गलदाहे सैन्धवादिचूर्णम्—

सैन्धवेन्द्रयवं रात्रौ मरिचं चोष्णवारिणा।
पाययेत्कर्षमात्रं तु गलदाहप्रशान्तये॥ ४८॥

गले की जलन को दूर करने के लिये रात्रिमें सोते समय सैन्धव लवण, इन्द्रयव और मरिच इन तीनों का समभाग लेकर बनाये हुए चूर्ण में से १ कर्ष भर चूर्ण लेकर गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए॥ ४८॥

अथ गलदाहे करञ्जमज्जापथ्याप्रयोगौ—

करञ्जबीजमज्जां तु द्विनिष्कां चोष्णवारिणा।
गलदाहहरं खादेत्पथ्या वा क्षौद्रसंयुता॥ ४९॥

अथवा शुद्ध करञ्ज फल की मज्जा के चूर्ण को दो निष्क (८ मासा) भर लेकर उष्ण जल के साथ गले की जलन को नष्ट करने के लिये सेवन करना चाहिए। अथवा दो निष्क भर हरड के चूर्ण को मधु (शहद्) के साथ मिला कर गलदाह नाशार्थ सेवन करना चाहिए॥ ४९॥

अथ स्तनवर्द्धने वलादिप्रलेपः—

वलानागबलाकुष्ठत्वचां चूर्णं च लेपयेत्।
महिषीनवनीतेन स्यातां पीनौ स्थिरौ स्तनौ॥ ५०॥

वला (वरियारा), नागबला (गंगेरन), कूठ और तज इन को समभाग लेकर ओखली में कूट के चूर्ण बना कर भैंस के मक्खन में घोट के स्तनों पर प्रलेप करके मर्दन करने से वे दृढ और मोटे हो जाते हैं॥ ५०॥

अथ स्तनवर्द्धने स्नेहनस्यम्—

श्यामानिशाबलाराजीलवणं क्काथयेत्समम्।

तोयैरष्टगुणैरेव पादशेषं समाहरेत् ॥ ५१ ॥
तिलतैलं क्वाथपादं तैलार्धं माहिषं घृतम् ।
स्नेहशेषं पचेत्तेन नस्येन मासमात्रके ।
बालादिवृद्धनारीणां यौवनं कुरुतेऽद्भुतम् ॥ ५२ ॥

प्रियङ्गु, हरिद्रा, बला (बरियारा), राई या पीली सरसों और लवण इन सब को समभाग लेकर चूर्ण करके अठ गुने जल में क्वाथ बना कर चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवें। फिर इस क्वाथ की अपेक्षा चतुर्थांश (चोथाई) तिलतैल तथा तैल से आधा भैंस का घी लेकर सब को एकत्र कड़ाही में या कलईदार पितल के बर्तन (भगूने) में डाल कर पकाना चाहिए। जब स्नेहमात्र शेष रह जाय अर्थात् समग्र जलीयांश के नष्ट हो जाने पर चूल्हे से उतार कर सिद्ध स्नेह को छान कर शीशी में भर देवें। इस स्नेह का एक मास तक नस्य करने से बाल, युवा और वृद्ध स्त्रियो के यौवन को संगठित बना देता है ॥ ५१-५२ ॥

अथ स्तनव्रणे कुरुवकतैलम्—

कुरुवत्वक्कषायेण तत्कल्केन च साधितम् ।
तैलं तु वनितानां च कुचकुम्भव्रणापहम् ॥ ५३ ॥

पीली कटसरैया को छाल या पञ्चाङ्ग का क्वाथ तैल से अष्ट गुण या चतुर्गुण तथा उसी का कल्क तैल से चोथाई लेकर तिलतैल को सिद्ध कर लेवें। यह तैल स्त्रियों के स्तनों की विद्रधि तथा व्रण आदि अनेक रोगों को नष्ट करता है ॥५३॥

अथ स्तनविद्रधौ शुल्वप्रयोगः—

शुल्वचूर्णं रसे जीर्णं मदयन्ती पुनर्नवा ।
मेषश्रृङ्गीरसश्चैता व्रणशोषणरोपणम् ॥ ५४ ॥

ताम्र के शुद्ध चूर्ण को पारद के साथ जारण करके; अर्थात् पारद के द्वारा बनी हुई ताम्र की भस्म लेकर उसको मदयन्ती (नवमल्लिका या मेंहदी), पुनर्नवा और मेढाशीङ्गी के स्वरस से पृथक् २ एक २ दिन तक खरल करके सुखा कर शीशी में भर देवें। इस औषध को ३ रत्ती भर लेकर मधु और आदी के स्वरस के साथ प्रतिदिन सेवन करने से स्तनों के व्रण को शुद्ध कर के उसका रोपण कर देती है ॥ ५४ ॥

अथ स्नायुके कुम्भीप्रयोगः—

कुम्भीपुष्पाणि चादाय गिलयेद्रविवासरे ।
यावत्सङ्ख्यानि पुष्पाणि तावद्वर्षाणि स्नायुकः ।
न निर्याति न सन्देहः सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ५५ ॥

रविवार के दिन प्रातः काल कोङ्कण देश में प्रसिद्ध कुम्भीनामक वृक्ष के पुष्पों को लाकर अथवा पाटला के पुष्पों को लाकर पत्थर पर पीस के सर्बत बना कर पी लेना चाहिए । इस तरह जितने ही पुष्पों का सेवन किया जाय उतने वर्ष तक स्नायुक रोग (नहरू) नहीं होता है । यह सिद्ध योग है ॥ ५५ ॥

अथ भस्मकलक्षणम्—

येन भस्मी भवन्त्याशु भक्षितान्यखिलान्यपि ।
वस्तूनि स क्षुधारूपो व्याधिर्भस्मक उच्यते ॥ ५६ ॥

जिस रोग के कारण अतिमात्रा में खाये हुए गुरु लघु आदि अनेक पदार्थ शीघ्र ही पच जाते हैं ऐसे रोग को भस्मक रोग कहते हैं । प्रायः भस्मक रोग वाले पुरुष का शरीर दिन प्रतिदिन क्षीण होकर लकड़ी के समान दिखाई देता है॥५६॥

अथ श्लीपदस्य सम्प्राप्तिलक्षणे—

कफोत्तरा रक्तचलाश्रिता मलाः पादेष्वधःकायमुपाश्रिताः शनैः ।
कुर्वन्ति शोफं घनमाहश्लीपदं तत् कर्णनासादिषु पादवद्भवेत् ॥५७॥

कफ प्रधान वातपित्तादिक दोष रक्त और मांस को आश्रित करके उन्हें दूषित कर देते हैं तथा ये दोष और दूषित्त रक्त शरीर के नीचे के अङ्गों में विशेष कर आश्रित हो के घन अर्थात् ठोस शोफ (सूजन) उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार के रोग को श्लीपद कहते हैं । पैरों को तरह यह रोग कर्ण और नासिका में भी उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

अथ श्लीपदहररसः—

ताम्रभस्मसमं सूतं शुद्धं मर्द्यं दिनत्रयम् ।
नागवल्लीमेघनादपाठापौनर्नवद्रवैः ॥ ५८ ॥
गोमूत्रे मर्दयेद्गाढं चक्रयन्त्रे दिनं पचेत् ।
मासैकं भक्षयेत्क्षौद्रैः श्लीपदी च पिबेदनु ॥ ५९ ॥
खादिरं शल्लकीकाष्ठं क्षौद्रं चाशनकाष्ठकम् ।

गवां मूत्रः समं पिष्ट्वा पिबेच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ६० ॥

ताम्र की भस्म और पारद की भस्म या रस सिन्दूर दोनों को समभाग लेकर दिन भर खरल में घोटकर नागरवेल के पानके स्वरस, चोलाई का स्वरस और पुनर्नवा के स्वरस में क्रमशः तीन २ दिन तक खरल करें, या सबके स्वरस को मिलाकर उसके तीन भाग करके तीन दिन तक खरल करें। पश्चात् गोमूत्र में दिन भर घोटकर गोला बना के चक्रयन्त्र में पाक करना चाहिए। सिद्ध हुए रस को यन्त्र से निकालकर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस रस को मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा सेवन करने के पश्चात् कत्था, सलई (शल्लकी) की जड़ और विजयसार की जड़ इन तीनों को समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर जल में घोल के थोड़ा सा शहद् मिला के पिलाना चाहिए। इस तरह एक मास तक इस रस को सेवन करने से श्लीपद रोग नष्ट हो जाता है ॥५८-६०॥

अथ श्लीपदहरलेपः—

गुडूचीकटुकाशुण्ठीदेवदारुविडङ्गकम् ।
पिष्ट्वा गोमूत्रसंयुक्तो लेपः श्लीपदनाशनः ॥ ६१ ॥

गुडूची, कुटकी, सोंठ, देवदारु और विडङ्ग इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस के प्रलेप करने से श्लीपल रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६१ ॥

अथ श्लीपदरोगे पथ्यापथ्यविवेकः—

पुरातनाः षष्टिकशालयश्च यवाः कुलत्था लशुनं पटोलम् ।
वार्ताकुशोभाञ्जनकारवेल्लं कटूनि तिक्तानि च दीपनानि ॥ १ ॥
ऐरण्डतैलं सुरभीजलञ्च पुनर्नवामूलकपोतिकाश्च ।
एतानि पथ्यानि भवन्ति पुंसां रोगे सति श्लीपदनामधेये ॥ २ ॥ इति पथ्यानि ।

पिष्टान्नं दुग्धविकृतिं गुडमानूपमामिषम् ।
स्वाद्वम्लं पारियात्रञ्च सिन्धुविन्ध्यनदीजलम् ।
पिच्छिलं गुर्वभिष्यन्दि श्लीपदी परिवर्जयेत् ॥ १ ॥ इत्यपथ्यानि ।

अथ वल्मीके पित्तलभस्मप्रयोगः—

ब्राह्मीपलाशयोः क्वाथे रीतिपत्रं विनिक्षिपेत् ।
दिनद्वयं ततस्तानि पुनस्तेनैव घर्षयेत् ॥ ६२ ॥
लघुभाण्डे समादाय चूर्णं कुष्माण्डवारिणा ।
महत्त्रिवारं कुर्वीत पुटं करभवारिणा ॥ ६३ ॥

मर्दयित्वा पुटं दद्यादजामूत्रेण भावयेत्।
ततोऽप्येकं पुटं दत्वा तिस्रस्त्रिकटुभावनाः ॥ ६४ ॥
अमर्यजाविडङ्गाऽग्निगोजलैरथ भावितः।
प्रातरेषः सुसंसिद्धो रसो वल्मीकमृद्रसैः ॥ ६५ ॥
वल्लत्रयमितो देयो वल्मीके तस्य मृत्स्नया।
वल्मीकं सम्विलिप्यैतत्क्रमिसङ्घप्रशान्तये ॥ ६६ ॥
रसैरुत्तरवारुण्याः सभ्रमं हन्ति मारुतम्।
वासानीरानुपानेन जयेत्कफसमीरणम् ॥ ६७ ॥

पित्तल के छोटे २ कण्टकवेधी पत्र बनवा कर ब्राह्मी और ढाक (पलाश) के क्वाथ में डुबो कर २ दिन तक रख देवें। तीसरे दिन उन पत्रों को उसी क्वाथ के साथ अच्छी तरह घोट कर छोटे से भाण्ड (हण्डिका) में पेठे के स्वरस के साथ दिन भर पकाना चाहिए। जब वह पकाने से चूर्ण के स्वरूप में हो जाय तब हण्डिका से निकाल कर खरल में करभ अर्थात् उष्ट्र या करिशावक (हाथी के बच्चे) के मूत्र से घोट कर टिकिया बना के शराव सम्पुट में बन्द कर के दशम अध्यायोक्त महापुट में पाक करना चाहिए। इस तरह तीन वार करभ मूत्र में घोट कर तीन पुट देने चाहिएं। कुछ टीकाकारों ने करभवारि शब्द से अर्जुन की छाल के क्वाथ का ग्रहण किया है। फिर बकरी के मूत्र से भावित कर के टिकिया बना कर शरावसम्पुट में बन्द कर के एक वार गजपुट में पाक करना चाहिए। पश्चात् त्रिकटु के क्वाथ से भावित कर के पुट देना चाहिए। इस तरह तीन वार भावित कर के तीन पुट देने चाहिए। फिर अमरी अर्थात् तुलसी या नीलनिर्गुण्डी, बकरी का मूत्र, विडङ्ग का क्वाथ, चित्रक की जड़ का क्वाथ और गोमूत्र तथा वल्मीक की मिट्टी के घोल इन सब से एक २ वार भावित कर के घोट कर चूर्ण बना लेवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को तीन वल्ल (९ रत्ती) भर लेकर दिन में तीन वार वल्मीक की मिट्टी के घोल के साथ वल्मीक रोग में सेवन करना चाहिए तथा वल्मीक रोग के क्रमियों को नष्ट करने के लिये वल्मीक की मिट्टी को जल से पीस कर प्रलेप करना चाहिए। उपर्युक्त रस को इन्द्रवारुणी के स्वरस के साथ सेवन करने से चक्कर (भ्रम रोग) और विकृतवात नष्ट हो जाते हैं तथा उपर्युक्त रस को अडूसे की पत्ति

के स्वरस और मधु के साथ सेवन करने से कफ और वात के विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२-६७ ॥

अथ स्थौल्ये विडङ्गादिचूर्णम्—

विडङ्गं नागरं क्षारं काललोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित् ॥ ६८ ॥

वायविडङ्ग का चूर्ण, नागरमोथे का चूर्ण, क्षार (यवक्षार), काललौह की भस्म, मुलेठी का चूर्ण यव और आंवलों का चूर्ण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें । यह चूर्ण मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य की बढ़ी हुई स्थूलता को नष्ट कर देता है ॥ ६८ ॥

अथ स्थौल्ये त्रिफलादि-पत्रादिकषायौ—

वरासनाग्नयः पत्रनिशाक्वाथं मधुप्लुतम् ।
द्विरदस्थूलदेहोऽपि पिबेन्मासात् कृशो भवेत् ॥ ६९ ॥

त्रिफला, विजैसार की जड़ और चित्रक की जड़ इन तीनों को समभाग लेके क्वाथ बनाकर उस में शहद् मिला के एक महीने तक पान करने से अथवा तेजपत्र और हरिद्रा के क्वाथ में शहद् डाल कर पान करने से हाथी के समाम स्थूल मनुष्य भी कृश हो जाता है ॥ ६९ ॥

अथ स्थौल्ये पथ्यापथ्यमाह—

पुराणशालयो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्रवाः । लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ १ ॥
श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः । हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥ २ ॥
अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥
प्रातर्मधुयुतं वारिसेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन् कृशतनुर्भवेत् ॥ ४ ॥

इति पथ्यानि ।

स्नानं रसायनं शालीन् गोधूमान् सुखशीलतान् । क्षीरेक्षुविकृतीर्माषान् सौहित्यं स्नेहनानि च ।
मत्स्यं मांसं दिवा निद्रां स्रग्गन्धान् मधुराणि च ।
स्वभावस्थत्वमन्विच्छन् मेदस्वी परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

इति पथ्यानि ।

अथ विपरीतरतिजव्याधिलक्षणम्—

विपरीते रते प्राप्ते लिङ्गे दाहः प्रजायते ॥ ७० ॥
कार्श्यं च सर्वगात्रेषु,—

विपरीत प्रकार से ग्राम्य धर्म (सम्भोग) करने से पुरुष की जननेन्द्रिय में दाह होने लगता है तथा सारा शरीर कृश हो जाता है। इस प्रकार के विपरीत रति जन्य रोग की चिकित्सा आगे कही जाती है ॥ ७० ॥

अथ विपरीतरतिजव्याधिप्रतीकारः—

—तत्प्रतिकार उच्यते।

प्रत्यग्रस्तन्निबद्ध्यैव लिङ्गे चोषणमाचरेत् ॥ ७१ ॥
व्रणे त्वेतस्य सञ्जाते क्षालयेच्छीतलाम्बुना।
कोलनिर्य्यासमादाय पाययेत्तं सशर्करम् ॥
शाल्मलीदूर्वयोर्मुलीरसपायसमाशयेत् ॥ ७२ ॥

उपर्युक्त अनुचित सम्भोग से पीड़ित हुए लिङ्ग को वस्त्र आदि से लपेट कर प्रथम चोषण कर्म करना चाहिए। तत्पश्चात् उसे शीतल जल से प्रक्षालित कर देना चाहिए। फिर बेर की छाल के या बेर के फलों के क्वाथ में चीनी मिला कर पिलाना चाहिए। अथवा सेमल की जड़ और दूर्वा की जड़ के स्वरस से क्षारपाक कर के पिलाना चाहिए। कुछ टीकाकारों ने सेमल, दूब और मूली के स्वरस तथा दुग्ध इन्हें यथाविधि मिला कर संयुक्त द्रव में चांवल पका के उन्हें खिलाना चाहिए ऐसा अर्थ भी किया है ॥ ७१-७२ ॥

अथ उपदंशादिप्रतीकारः—

पुरुषव्याधिनुत्यर्थं रक्तस्रावो हि पृष्ठके।
भक्षणं बोलबद्धस्य मत्स्याक्षीमूललेपनम् ॥ ७३ ॥
जानुरुग्ग्रन्थिनुत्यर्थं यवचिञ्चाः प्रलेपयेत्।
सामुद्रकाञ्जिकाभ्यां हि लेपं विधेहि सत्वरम् ॥ ७४ ॥

उपदंश आदि लिङ्ग रोगों को नष्ट करने के लिये लिङ्ग के पृष्ठभाग के मध्य की शिरा का वेध करके अशुद्ध रक्त को निकाल देना चाहिए। पश्चात् मत्स्याक्षी की जड़ को जल के साथ पीस कर लिङ्ग पर प्रलेप करके पट्टबन्धन कर देना चाहिए। एवं बोलबद्ध रस को आभ्यन्तरिक सेवन के लिये मधु के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। यदि जानु (घुटने) में पीड़ा तथा लसीकाग्रन्थि के निकल आने से वेदना होती हो तो उसे नष्ट करने के लिये यवचिञ्चा को जल में घोटकर लगाना चाहिए। अथवा सामुद्र लवण को काञ्जी के साथ पीस कर जल्दी लेप कर देना चाहिए ॥ ७३-७४ ॥

अथ सर्वरक्तविकारे उपायः—

सर्वरक्तविकारेषु बोलबद्धस्य सेवनम् ॥ ७५ ॥

सर्व प्रकार के रक्त जन्य रोगों में बोलबद्ध रस का उचित मात्रा से प्रतिदिन सेवन करना अत्यन्त हितकर है ॥ ७५ ॥

अथ अस्थिभग्ने लाक्षादिप्रलेपः—

मेषक्षीरं द्रवं चूर्णं कटुतुम्ब्या विनिक्षिपेत् ।
प्रलेपनेन सातत्यादस्थिभङ्गः प्रशाम्यति ॥ ७६ ॥

भेडी का दुग्ध, कडवी तुम्बी का स्वरस और चूर्ण अर्थात् चूना अथवा भेड़ी का दुग्ध और कडवी तुम्बी की जड़ का चूर्ण तथा स्वरस इन को एकत्र दिन भर घोट कर प्रतिदिन प्रलेप करने से टूटी हुई हड्डी जल्दी ही ठीक हो जाती है ॥ ७६ ॥

अथ स्नायुके अस्पर्शारिप्रयोगोपदेशः—

स्नायुकस्यापनुत्त्यर्थमस्पर्शारिप्रलेपनम् ॥ ७७ ॥

स्नायुक (नेहरु) रोग को नष्ट करने के लिये अस्पर्शारि अर्थात् धमासे को पीस कर प्रलेप करना चाहिए अथवा वातव्याधिचिकित्सा में कहे हुए अस्पर्शावातारि नामक तैल का अभ्यङ्ग या अस्पर्शारि नामक रस का सेवन करना चाहिए ॥ ७७ ॥

अथ योनिव्यापन्निदानम्—

(१) दैवेनातिरते स्त्रीणां विषमोत्कटकासनात् ।
जायन्ते व्यापदो योनौ दुष्टबीजार्त्तवात्ततः ॥ ७८ ॥

दैव अर्थात् पूर्व जन्म में किये हुए कर्मो से, अत्यन्त सम्भोग करने से, विषमासन तथा उत्कटकासन से, दूषित हुए मातृज तथा पितृज बीज के कारण तथा प्रदुष्ट आर्त्तव के कारण स्त्रियों के बीस प्रकार के योनि के रोग (योनिव्यपाद) उत्पन्न होते हैं ॥ ७८ ॥

अथ योनिव्यापत्सु पिष्टीयोगः—

पिष्टीतारार्कयोरेका तैले गन्धस्य पाचिता ।
सेविता मधुसर्पिर्भ्यां गुह्यरोगान्नियच्छति ॥ ७९ ॥

---

(१) चरकेऽपि—विंशति र्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसङ्ग्रहे ।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च ।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ॥

पूर्व (अष्टमाध्याय) में "अर्कांशतुल्यादसताप्यगन्धात्" इत्यादि रूप से कही हुई चांदी और ताम्र की बनी हुई पिष्टी लेकर गन्धक के तैल में कुछ देर तक पका कर खरल में घोट के शीशी में भर देवें। यह पिष्टी प्रतिदिन शहद और घृत या मक्खन के साथ सेवन करते रहने से स्त्रियों के समग्र गुह्य रोगों को नष्ट कर देती है ॥ ७९ ॥

अथ योनिशूले निम्बादिगोलकम्—

निम्बुद्रावैः सुसम्पिष्टं निम्बैरण्डस्य बीजकम्।
योनिशूलहरं क्षिप्त्वा गोलकं योनिमध्यगम् ॥ ८० ॥

नीम के बीजों की गिरी और एरण्ड के बीजों की गिरी को समभाग लेकर पत्थर पर निम्बू के रस के साथ पिस के गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को योनि में रख देने से योनि का शूल रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८० ॥

अथ योनिरोगे सोमराज्यादिप्रलेपः—

सोमराजीदेवदारुनिम्बदारुनिशाऽसनम्।
तक्रपिष्टं प्रलेपोऽयंयोन्यामयहरो भवेत् ॥ ८१ ॥

सोमराजी (बाकुची), देवदारु, निम्ब का पञ्चाङ्ग, दारु हलदी और विजय सार की जड़ इन सब को समभाग लेकर खट्टी छाछ (तक्र) में घोट कर प्रलेप करने से योनि के सर्व प्रकार के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८१ ॥

अथ योनिकृमिशूले रसोनादिप्रलेपः—

रसोनं गृहधूपं तु विशाला सविडङ्गकम्।
कण्टकारीफलं तोयैः पिष्ट्वा योनौ प्रलेपयेत्।
कृमिशूलहरं ख्यातं सप्ताहान्नात्र संशयः ॥ ८२ ॥

लहसून, रसोई घर का धुंआ, इन्द्रायन की जड़, वायविडङ्ग और कण्टकारी (बृहती) के फल इन सब को समभाग लेकर जल के साथ पीस कर प्रलेप बना लेना चाहिए। इस प्रकार का प्रलेप सात दिन तक योनि में लगाते रहने से वहां के कीड़े तथा शूल को नष्ट कर देता है। यह योग कृमि और शूल को नष्ट करने के लिये निश्चय ही उत्तम है ॥ ८२ ॥

अथ मञ्जिष्ठादिघृतम्—

मञ्जिष्ठा तगरं कुष्ठं त्रिफला शर्करा वचा।

मेदा यष्टी हरिद्रे द्वे दीप्यकं कटुरोहिणी ॥ ८३ ॥
पयस्या हिङ्गुकाकोली वाजिगन्धा शतावरी ।
प्रत्येकं चूर्णयेत्कर्षं द्वात्रिंशत्पलकं घृतम् ॥ ८४ ॥
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतशेषं विपाचयेत् ।
योनिशूले शुक्रदोषे गर्भिणोनां च पाययेत् ॥ ८५ ॥

मजीठ, तगर, कूठ, त्रिफला, चीनी, वचा, मेदा, मुलेठी हलदी, दारुहलदी, अजवाईन, कुटकी, क्षीर काकोली, शुद्धहीङ्ग, काकोली, असगन्ध और शतावर इन में से प्रत्येक औषधि को एक २ कर्ष (१६ मा०) भर लेकर ओंखली में कूट खांड कर चूर्ण बना लेना चाहिए तथा गाय का घी ३२ पल, घी से चोगुना दुग्ध तथा चोगुना पानी लेकर बड़ी कडाही या कलईदार भाण्ड में डाल कर पूर्वोक्त चूर्ण मिला के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए । जब घृतमात्र शेष रह जाय तब भाण्ड को भट्ठी से उतार कर घृत को छान लेना चाहिए । इस घृत को योनि शूल, शुक्रदोष तथा गर्भिणी स्त्रियों को दुग्ध में मिला कर प्रतिदिन पिलाने से अत्यन्त लाभप्रद होता है ॥ ८३–८५ ॥

अथ रजोनाशे त्रियोनिरसप्रयोगविधिः—

त्रियोनिरसगुञ्जैकं त्रिनिष्कमभयागुडम् ।
पुष्परोधहरं खादेत्पलैकं तिलजीवनम् ॥
ततःशीतोदकं पित्वा पुष्पं स्रवति तत्क्षणात् ॥ ८६ ॥

कामला चिकित्सा में कहे हुए त्रियोनि नामक रस को प्रति दिन एक २ रत्ती भर लेकर तीन निष्क (१२ मा०) भर हरड के चूर्ण और गुड़ के साथ मिला कर सेवन करना चाहिए तथा उसके पश्चात् एक पल भर तिल्ली का सेवन करना चाहिए, अथवा पल भर तिल्ली को त्रियोनिरस, हरड़ चूर्ण और गुड़ में मिला कर सेवन करना चाहिए । औषध सेवन करने के पश्चात् शीतल जल पीना चाहिए । इस तरह यह योग प्रति दिन सेवन करने से रोग के कारण रुका हुआ मासिक धर्म प्रवृत्त हो जाता है अर्थात् स्त्री रजस्वला होने लग जाती है ॥ ८६ ॥

अथ पुष्परोधहरयोगत्रयम्—

लाङ्गलीकन्दचूर्णं वा मूलं वाऽप्यपमार्गजम् ।
इन्द्रवारुणीमूलं वा योनिस्थं पुष्परोधनुत् ॥ ८७ ॥

कलिहारी की शुद्ध जड़ का चूर्ण अथवा अपामार्ग की जड़ का चूर्ण या इन्द्रवारुणी की जड़ का चूर्ण इन में से किसी एक चूर्ण को योनि में रखने से नष्ट हुआ मासिकधर्म पुनः प्रारम्भ हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ पुष्परोधरक्तगुल्महरयोगद्वयम्—

तिलमूलकषायं तु ब्रह्मदण्डीयमूलकम्।
यष्टीत्रिकटुकं चूर्णं क्वाथयुक्तं हि पाययेत् ॥
पुष्परोधे रक्तगुल्मे स्त्रीणां सद्यः प्रशस्यते ॥ ८८ ॥

रोग के कारण रुके हुए स्त्रियों के मासिक धर्म में तथा रक्तगुल्म में तिल की जड़ का कषाय ½ पल तथा पलाश (ढाक) की जड़ का कषाय ½ पल या चूर्ण ३ माशे भर लेकर उसमें मुलेठी का चूर्ण ३ माशे भर तथा त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) का चूर्ण ३ माशे भर मिला कर पिलाना अत्यन्त हितकर है। इस योग से बिना कष्ट के ही रुका हुआ मासिकधर्म प्रवृत्त हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ पुष्परोधे चणकप्रयोगः—

चणकानां रसं चैव शृतं क्षीरं घृतेन वा।
शर्करामधुसंयुक्तं रक्तदोषहरं पिबेत् ॥ ८९ ॥

गीले चनों के पानी में या चनों के क्वाथ में चीनी, घृत और शहद मिलाकर सेवन करने से या केवल ओटाये हुए दुग्ध में घृत, चीनी और शहद मिलाकर सेवन करने से या चनों के रस से शृतदुग्ध, घृत, शर्करा और शहद इन्हें उचित मात्रा से मिला कर सेवन करने से रक्त के समस्त दोष (विशेष कर रक्तगुल्म, आदि) नष्ट हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

अथ पुष्परोधे गुडव्योशादिचूर्णम्—

तिलक्वाथो गुडं व्योषं तिलभार्ङ्गीयुतं पिबेत्।
क्वाथं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पेऽथ पाययेत् ॥ ९० ॥

पुराना गुड़, सोंठ का चूर्ण, मरिचों का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, तिलों का चूर्ण और भारङ्गी का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में पीस के दो २ तोले के लड्डू बनाकर पात्र में भर देवें। इनमें से एक २ लड्डू लेकर प्रतिदिन प्रातःकाल खाकर ऊपर से १ पल भर तिल की जड़ का क्वाथ पीना चाहिए। उपर्युक्त औषधियों के चूर्ण या लड्डू के साथ इस क्वाथ को रक्तगुल्म और नष्टार्त्तव में पिलाना चाहिए ॥ ९० ॥

अथ गर्भाजनने धुस्तूरप्रयोगः—

ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां धुस्तूरस्य तु मूलकम् ।
कट्यां बध्वा रमेन्नित्यं न गर्भः सम्भवेत्क्वचित् ॥ ९१ ॥
मुक्तेन लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् ।
तन्मूलचूर्णं योनिस्थं न गर्भः सम्भवेत्क्वचित् ॥ ९२ ॥

किसी महीने की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को धत्तूरे की जड़ उखाड़ कर घर में रख देवें। फिर इस जड़ को अधिकसन्तति से व्यग्र पुरुष अपनी कमर में बांध कर यथेच्छ स्त्री सम्भोग करे तो भी उसकी स्त्री गर्भवती नहीं होती है। यदि सन्तति प्राप्त (स्त्री को गर्भवती) करने की इच्छा हो जाय तो उक्त जड़ को कटि भाग से हटाकर दूर रख के सम्भोग करने से स्त्री गर्भवती हो जाती है। यह पुराने समय में नागार्जुन नामक सिद्ध ने बताया है। अथवा धत्तूरे की जड़ के चूर्ण को योनि में रखकर सम्भोग करने से गर्भधारण नहीं होता है ॥ ९१-९२ ॥

अथ गर्भाजनने सैन्धवप्रयोगः—

ऋतौ जाते क्षिपेद्योनौ तिलतैलाक्तसैन्धवम् ।
द्रवते तत्क्षणादेव तच्छुक्रं पुष्पितामपि ॥ ९३ ॥

ऋतु स्नान करने के पश्चात् तिल के तैल में सैन्धव नोमक मिला कर कल्क बना के योनि में प्रविष्ट करने के पश्चात् यथेच्छ सम्भोग करने से गर्भाशय में गया हुआ शुक्र तथा स्त्री का बीजरक्त वापिस निकल जाता है तथा यह योग पुष्पित स्त्री को शीघ्र ही द्रवित भी करता है ॥ ९३ ॥

विमर्शः—यह योग योगरत्नाकर में इस प्रकार है।
यथा—तैलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये।
नरेण सार्द्धं रतिमातनोति या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ इति ।

अथ गर्भस्रावणे चूर्णप्रयोगः—

देवालये तु यच्चूर्णं कर्षैकं तोयपेषितम् ।
पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात् ॥ ९४ ॥

पुराने मन्दिरों में की खारी मिट्टी के एक कर्ष भर चूर्ण को जल के साथ पीस कर गर्भवती स्त्री पान करे तो तत्काल उस के गर्भ का स्राव हो जाता है ॥ ९४ ॥

अथ गर्भस्रावणे एरण्डप्रयोगः—

काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत् ।

चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥ ९५ ॥

एरण्ड के पत्ते के पीछे का आठ अङ्गुल लम्बा डण्ठल लेकर योनि में युक्ति से प्रविष्ट कर के छोड़ देवें। इस एरण्डपत्रकाण्ड के योनि में रखने से शीघ्र ही चार मास का गर्भ गिर जाता है ॥ ९५ ॥

अथ गर्भस्रावणे चित्रकप्रयोगः—

निर्गुण्डीद्रवसम्पिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम्।
कर्षं भुक्त्वा पतत्याशु गर्भो रण्डाकुलोद्भवः ॥ ९६ ॥

चित्रक की जड़ को या जड़ के कर्ष भर चूर्ण को निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में दिन भर घोट कर शहद मिला के पीने से विधवा स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है ॥ ९६ ॥

अथातिरक्तस्रावे शरपुङ्खाप्रयोगः—

मूलं शरपुङ्खायास्तण्डुलाम्बुप्रपेषितम्।
पाययेत्कर्षमात्रं तदतिरक्तप्रशान्तये ॥ ९७ ॥

रक्तप्रदर अथवा गर्भपात के अनन्तर अत्यन्त स्रुत होते हुए रक्त को रोकने के लिये शरपुङ्खा की कर्ष भर जड़ या चूर्ण लेकर चावलों के धोवन के साथ घोटकर पीलाना चाहिए ॥ ९७ ॥

अथातिरक्तस्रावे अर्कमूर्तिरसप्रयोगविधिः—

स्त्रीणां रक्ते पूयके वा प्रवृत्ते सैसं चूर्णं पेटकारीभवञ्च।
दद्यात्प्रातर्मल्लखण्डेन सार्धं दत्त्वा सूतं त्वर्कमूर्तिं घृतेन ॥ ९८ ॥

स्त्रियों के प्रदरादि रोग अथवा अन्ययोनि रोगों के कारण पूय के सहित निकलते हुए रक्त को रोकने के लिये प्रतिदिन प्रातःकाल सीसे की भस्म को पेटकारी अथवा (अभावे) अरणी की जड़ के चूर्ण और पान के या गुड और चीनी के साथ सेवन करना चाहिए अथवा पारद की भस्म या रससिन्दूर १ रत्ती तथा अर्कमूर्ति रस १ रत्ती भर लेकर दोनों को घृत के साथ सेवन कराना चाहिए। यह योग स्त्रियों की सर्व प्रकार की प्रदरादिक व्याधियों को नष्ट कर देता है ॥ ९८ ॥

विमर्शः—अर्कमूर्तिरस को निम्न प्रकार से बनाना चाहिए। यथा भैषजरत्नावल्यां "लौहाष्टकं मारितमब्धभागं सूतं द्विभागं द्विगुणञ्च गन्धम्। विमर्दयेद् वह्निरसेन तापे दिनत्रयञ्चात्र विषं कलांशम् ॥ निक्षिप्य पित्तैः परिभावितोऽयं रसोऽर्कमूर्तिर्भवति त्रिदोषे ॥ इति।

अथ योनिशूलहरयोगद्वयम्—

योनौ शूले निम्बवातारिपिष्टौ कुर्याद्वा नागकर्णोत्थमूलैः ॥ ९९ ॥

योनि के शूल को नष्ट करने के लिये नीम की छाल और एरण्ड की जड़ दोनों को पीसकर या दोनों के बीजों की गिरी को पीसकर कल्क बना के योनि में रखना चाहिए। अथवा लाल एरण्ड की जड़ की पिष्टी को रखनी चाहिए ॥९९॥

अथ रजोदोषे व्योषादितैलम्—

तैलं क्वाथं व्योषयष्टिप्रयुक्तं दद्यात्स्त्रीणां रक्तदोषापनुत्यै ॥ १०० ॥

स्त्रियों के प्रदर, गर्भपात आदि के कारण उत्पन्न हुए रक्त दोष को नष्ट करने के लिये व्योष (त्रिकटु) और मुलेठी के कल्क से बनाये हुए क्वाथ में एरण्ड का तैल या लाल एरण्ड की जड़ के कल्क से सिद्ध किया हुआ तिलतैल मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ १०० ॥

अथ पुष्यानुगं चूर्णम्—

पाठा जम्ब्वाम्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम् ।
अम्बष्ठां शाल्मलीं पिष्टा समङ्गां वत्सकत्वचम् ॥ १०१ ॥
वाह्लीकबिल्वातिविषालोध्रतोयदगैरिकम् ।
शुण्ठीमधुकमार्द्वीकं रक्तचन्दनकट्फलम् ॥ १०२ ॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ता धातकीमधुकाञ्जनम् ।
पुष्ये गृहीत्वा सञ्चूर्ण्य सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १०३ ॥
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते ।
दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ॥ १०४ ॥
योनिदोषं रजोदोषं श्यावं श्वेतारुणन्त्रिदम् ।
चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १०५ ॥

पाठा, जामून की गुठली, आम की गुठली या गुठली के भीतर की मींगी, शिलाजीत (या पाषाण भेद), रसाञ्जन (रसौंत), अम्बष्ठा, सेमल का गोंद, मंजीठ, कूडे की छाल, केशर (या नागकेशर), बेल के फल की सूखी गूदी, शुद्ध अतीस, पठानीलोध, नागरमोथा, शुद्धगैरिक, सोंठ, मुलेठी, मुनक्का, लाल चन्दन, कायफल, कट्वङ्ग अर्थात् श्योनाक की छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धाय के फूल या आंवले, महुए की छाल और शुद्ध सौवीराञ्जन इन सब औषधियों को

पुष्यनक्षत्र में समभाग लेकर ओखली मे अच्छी तरह कूट खाण्ड कर महीन चूर्ण कर लेवें। इस चूर्ण को आधे तोले भर लेकर शहद और चावलों के धोवन के साथ अर्श, अतीसार तथा स्त्रियों के रक्तप्रदर तथा बालकों के दोष अर्थात् वातपित्तादि जन्यरोग, आगन्तुक रोग, योनिदोष, रजोदोष तथा काला, श्वेत और रक्तप्रदर आदि समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। यह पुष्यानुग नामक चूर्ण उपर्युक्त रोगों में अत्यन्त हितकर है। आत्रेय ऋषि ने इस चूर्ण को सर्व प्रथम बताया है ॥ १०१-१०५ ॥

अथ त्रिविधविषनिर्देशः—

यत्कन्दमूलादिषु जायते ततो विषाद्विषं स्थावरमुग्रवीर्य्यम्।
सर्पादिकं जङ्गममुच्यते तद्द्रव्यैरनेकैः कृतकं च यत्तत् ॥ १०६ ॥

कन्दमूल आदि पद से पत्र, पुष्प, फल, त्वक्, क्षीर, सार, निर्यास और धातु इन दश अधिष्ठानों में उत्पन्न होने वाला विष स्थावर विष कहलाता है। यह स्थावरविष अन्य विषों की अपेक्षा अत्यन्त उग्र वीर्य (बल) वाला होता है। सर्प तथा बिच्छू आदि में रहने वाला विष जङ्गमविष कहलाता है और विविध द्रव्यों के संयोग से जो विष उत्पन्न होता है वह कृत्रिमविष कहलाता है। इस प्रकार विष के स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम ये तीन भेद होते हैं ॥ १०६ ॥

अथ विषचिकित्सा—

अथ मेघनादप्रयोगः—

घननादजटा हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १०७ ॥

घननाद अर्थात् मेघनाद (चोलाई) जी जड स्थावर और जङ्गम विष को नष्ट कर देती है। प्रायः चोलाई की जड को चावलों के धोवन के साथ पीस कर पिलाना चाहिए जैसा कि योगरत्नाकर में लिखा है। यथा—तण्डुलीयकमूलन्तु पीतं तण्डुलवारिणा। तक्षकेणापि सन्दष्टं निर्विषं कुरुते नरम् ॥ इति ॥ १०७ ॥

अथ सूत-शतावरीयोगः—

ज्येष्ठाम्बुसूतराजेन पीताऽभीरुशिफा तथा ॥ १०८ ॥

ज्येष्ठाम्बु अर्थात् चावलों का धोवन १ पल तथा पारद की १ या दो रत्ती भर भस्म या रससिन्दूर के साथ शतावर की जड का १ तोले भर चूर्ण मिलाकर सेवन करने से सर्पदष्ट में विशेष लाभ होता है। इस योग में १ तोले भर शहद भी मिला देना चाहिए ॥ १०८ ॥

अथ सूत-सोमराजीयोगः—

सुरभिशकृद्रसभावितशशिराजीचूर्णसंयुतः सूतः।
स्थावरजङ्गमकृत्रिमविषजिद्गुञ्जामितोऽभ्यस्तः ॥ १०९ ॥

सुरभि अर्थात् गाय के गोवर के रस से भावित कर के सुखाया हुआ सोमराजी (शशिराजी=वाकुची) का चूर्ण १ माशे भर लेकर इसको एक रत्ती भर पारद की भस्म या रससिन्दूर के साथ संयुक्त कर के मधु में मिला कर सेवन करने से स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है ॥ १०९ ॥

अथ अभ्रकादिप्रलेपः—

अभ्रकं तालकं तार्प्यं शिलाजित्कुनटी रसः।
देवदालीरसो व्योषं लेपनाद्विषनाशनम् ॥ ११० ॥

अभ्रक का शुद्ध चूर्ण, शुद्धहरताल, शुद्धस्वर्णमाक्षिक, शिलाजीत, शुद्धमैनसील, शुद्धपारद तथा त्रिकटु का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर महीन चूर्ण बना लेवें। फिर इस चूर्ण को देवदाली के स्वरस या क्वाथ से सात वार भावित कर के घोट कर मलहम बना के रख लेवें। इस मलहम का सर्प काटे स्थान पर प्रलेप करने से विष नष्ट हो जाता है। इन्हीं पदार्थों की मिलितभस्म १ या २ रत्ती भर तथा शुद्धशिलाजीत १ माशे भर तथा देवदाली का स्वरस १ तोले भर और मधु १ तोले भर लेकर खाने के लिये भी देना चाहिए ॥ ११० ॥

अथ लूताविषे सूतभस्मप्रयोगः—

रसेन चक्रमर्दस्य पुटितः पुटपाचितः।
एरण्डस्नेहसंयुक्तः सूतो लूताविकारजित् ॥ १११ ॥

शुद्ध पारद को चक्रमर्द (चकवड) के स्वरस से खरल करके दृढ मूषा में वन्द कर गजपुट में पकाना चाहिए। जब पारद अच्छी तरह मूर्च्छित हो जाय तब उसे फिर चकवड के स्वरस से घोट कर शराव सम्पुट में बन्द करके पुट पाक करना चाहिए। इस तरह बनाई हुई पारद की १ रत्ती भर भस्म को रेंडी के तैल में मिला कर खिलाने से तथा काटे हुए स्थान पर रेंडी के तैल में ही मिला कर प्रलेप कर देने से मकड़ी का विष तथा उसके द्वारा उत्पन्न फोड़े आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ १११ ॥

अथ महासर्पविषे नागदमनीप्रयोगः—

जलेन नागदमनीमूलं नस्ये प्रयोजितम्।
महासर्पस्य विषमं विषं नश्यति तत्क्षणात् ॥ ११२ ॥

नागदमनी को जड़ को जल से पीस कर नस्य देने से महाभयङ्कर सर्प का विषम विष तुरन्त ही उतर जाता है ॥ ११२ ॥

अथ पञ्चाङ्गशिरीषप्रयोगः—

जलपिष्टं शिरीषस्य पञ्चाङ्गं यः पिबेन्नरः।
स नागराजदष्टोऽपि मानुषो निर्विषो भवेत् ॥ ११३ ॥

शिरीष के पञ्चाङ्ग (पत्रपुष्पफलमूल वल्कल) के चूर्ण को जल में पीस कर सरबत बना के जो मनुष्य कभी २ पीता रहता है वह यदि नागराज (शेषनाग) से भी काट लिया जाय तो नही मरता है। अथवा भयङ्कर सर्प से काटे हुए पुरुष को शिरीष के पञ्चाङ्ग के चूर्ण को जल में पीस कर पिलाने से उस का विष-वेग उतर जाता है ॥ ११३ ॥

अथ अश्वगन्धा-वन्ध्याप्रयोगौ—

अश्वगन्धाभवं कन्दं वन्ध्याया वाऽथ यः पिबेत्।
तस्य देहान्तरं याति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ ११४ ॥

असगन्ध की जड़ अथवा बांझककोड़े की जड़ को पानी में पीस कर पीने से स्थावर और जङ्गम विष उस मनुष्य के शरीर से बाहर-निकल जाता है ॥ ११४ ॥

अथ वृश्चिकविषे व्योषादितैलम्—

व्योषैरण्डस्रावपक्वं तु तैलं लेपायोक्तं वृश्चिकानां सदैव ॥ ११५ ॥

व्योष अर्थात् सोंठ, मरिच, पिप्पली और एरण्ड के बीजों की गिरी दोनों को सम भाग लेकर पत्थर पर पीस के कल्क बना लेवें। फिर कल्क से चोगुना तिल तैल और तैल से चोगुना पानी लेकर सब को कलईदार कड़ाही में भर के मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैल सिद्ध हो जाय तब उसे छान कर शीशी में भर लेवें। यह तैल वृश्चिक (बिच्छू) काटे स्थान पर लेप करने के लिये श्रेष्ठ है ॥ ११५ ॥

अथ मृतसञ्जीवनम्—

ससिन्दुवारतगरं मृतसञ्जीवनं विषम् ॥ ११६ ॥

निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, तगर का चूर्ण, पूर्वोक्त मृतसञ्जीवन रस और शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण इन्हें सम भाग लेकर खरल में महीन कर के शीशी में भर देवें। ३ माशे भर इस चूर्ण को शहद् के साथ सेवन करने से तथा काटे स्थान पर लगाने से सब प्रकार का विष निर्विष हो जाता है ॥ ११६ ॥

अथ आखुविषे शिरीषप्रयोगः—

शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ॥ ११७ ॥

शिरीष के पुष्पों और पत्तों का चूर्ण तथा वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर खरल में एकत्र घोट कर शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को ३ माशे भर लेकर मधु से सेवन करना चाहिए तथा इसी को काटे स्थान पर लगाना भी चाहिए। इस तरह यह योग भक्षण और प्रलेपन दोनों विधियों से प्रयुक्त करने से चूहे के विष को नष्ट कर देता है ॥ ११७ ॥

अथ सर्पविषे देवदार्वादियोगः—

देवदारु नतं मांसी लवली बाकुची विषम् ।
कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम् ॥ ११८ ॥

देवदारु, तगर, जटामांसी, लवली (हरफा रेवड़ी की जड़), बाकुची, शुद्ध वत्सनाभविष और कूठ इन द्रव्यों को समभाग लेकर लोहे की ओखली (इमाम दस्ता) में कूट खाण्ड कर महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को ४ माशे भर लेकर शहद् के साथ या जल में घोल कर पीने से तथा काटे हुए स्थान पर लेप करने से समस्त प्रकार का विष नष्ट हो जाता है ॥ ११८ ॥

अथ सर्पविषे टङ्कणप्रयोगः—

सर्पादिविषनाशाय टङ्कणस्य रजोऽम्भसा ।
पानाभ्यञ्जननस्याद्यैरतिगुह्योपदंशिना ॥ ११९ ॥

सर्प आदि जन्तुओं के विष को विनष्ट करने के लिये टङ्कण (शुद्ध सुहागा) का चूर्ण लेकर जल में घोलकर पिला देना चाहिए तथा काटे हुए स्थान पर प्रलेप करना चाहिए, तथा शुद्ध सुहागे को मधु में फेंट (घोंट) कर नेत्रों में अञ्जन भी लगाना चाहिए। जिस मनुष्य के गुह्य स्थान (जननेन्द्रिय) पर उपदंश हो जाय उस के लिये भी टङ्कण अत्यन्त हितकर है। इस को मधु के साथ सेवन करने से तथा उपदंश की पिडको पर लेप करने से उपदंश नष्ट हो जाता है ॥११९॥

अथ वृश्चिकविषे मनोह्वादिगुलिका—

मनोह्वा सैन्धवं हिङ्गुमालतीपल्लवानि च ।
गोशकृद्रसपिष्टानि गुलिका वृश्चिकापहा ॥ १२० ॥

शुद्ध मैनसिल, सैन्धव लवण, घी में भूनी हुई हीङ्ग और चमेली के पत्ते इन्हें समभाग लेकर कूट खाण्ड के चूर्ण कर लेवें। फिर इस चूर्ण को गाय के गोबर के रस में दिन भर घोट कर गोलियां बना लेनी चाहिए। इन गोलियों के सेवन करने से तथा जल में घिस कर काटे हुए स्थान पर लगाने से वृश्चिक (बिच्छू) का विष नष्ट हो जाता है ॥ १२० ॥

अथ वृश्चिकविषे पलाशबीजगुलिका—

अर्कपयसा दिवा ब्राह्मतरोर्भावितैर्मुहुर्बीजैः ।
गुलिका कृता प्रयत्नाद् वृश्चिकविषमाशु नाशयति ॥ १२१ ॥

ढाक (पलाश) के बीजों का चूर्ण बना कर आक के दुग्ध से बहुत वार (७ वार) भावित करके घोट कर एक २ माशे भर की गोलियां बनाके सुखा कर शीशी में भर देवें। इन गोलियों को मधु के साथ सेवन करने से तथा जल से पीस कर काटे हुए स्थान पर लेप करने से वृश्चिक का विष शीघ्र ही उतर जाता है ॥ १२१ ॥

अथ गरविषे कनकादिवटी—

कनकसारसुतीक्ष्णनिदिग्धिका हपुषासिद्धकलांशनिषेवणात् ।
जयति साधु युवा धनकाङ्क्षया गणिकया परिदत्तगरौषधम् ॥ १२२ ॥

कनक अर्थात् धत्तूरे की जड़ का चूर्ण या स्वर्णभस्म, सार अर्थात् वज्रभस्म, तीक्ष्ण लोहे की भस्म, कटेरी की जड़ का चूर्ण, हाऊबेर का चूर्ण, सिद्ध अर्थात् पारद की भस्म या रससिन्दूर, कला अर्थात् शुद्धमनःशिला इन सब को सम भाग लेकर खरल में एकत्र पीस के शीशी में भर देवें। इस चूर्ण को एक माशे भर ले कर मधु के साथ सेवन करने से धनप्राप्ति की इच्छा से वेश्या के द्वारा युवा पुरुष को दिया हुआ विष या विषैली औषधि का प्रभाव नष्ट हो जाता है और वह साधु अर्थात् महाजन (धनिक) युवा पुरुष बच जाता है ॥ १२२ ॥

अथ सविषान्ने वृक्षाम्लादियोगः—

पुराणवृक्षाम्लयुतं कटुत्रयं नरेण भुक्तं त्वशनावसाने ।

असारवृत्ताबलयाऽर्थकाङ्क्षया सहान्नदत्तं विषमाशु नाशयेत् ॥ १२३ ॥

भोजन करने के पश्चात् पुरानी इमली और त्रिकटु के चूर्ण को बराबर लेकर खिला देने से दुष्ट चरित्र वाली (वेश्या) द्रव्याभिलाषिणी अबला के द्वारा स्वादु अन्न के साथ मिलाकर दिया हुआ गरल विष भी निर्विष हो जाता है ॥१२३॥

अथ तार्क्ष्यसूतः—

सूतं गन्धं टङ्कणं हेमयुक्तं घर्षेद्यामं मेघनादीरसेन ।
गोलं कृत्वा कान्तपाषाणमूषामध्ये क्षिप्त्वा भूधरे तं पुटेत ॥
पश्चाद्घर्षेन्मेघनादीरसेन सूतः सिद्धस्त्वेषतार्क्ष्यो विषारिः ॥१२४॥

शुद्धपारद, शुद्धगन्धक, शुद्धटङ्कण और स्वर्णभस्म इन्हें बराबर२ लेकर दिनभर खरल में घोट के चूर्ण बना लेवें । फिर चोलाई के स्वरस के साथ एक प्रहर तक खरल करके गोला बनाकर कान्तपाषाण की मूषा के भीतर बन्द करके भूधर यन्त्र में रखकर पाक करना चाहिए । स्वाङ्गशीतल यन्त्र से गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके मेघनाद (चोलाई) के स्वरस के साथ दिन भर घोट के सुखाकर शीशी में भर देवें । इस तरह अन्य औषधियों के साथ सिद्ध हुआ यह सूत (पारद) तार्क्ष्यरस कहलाता है । यह रस विष को तुरन्त निर्विष कर देता है ॥ १२४ ॥

अथ विषहररसः—

तार्क्ष्यं वन्ध्या भक्षयेद्रक्तिमानं सूतं तस्माद्यान्ति नाशं विषाणि ॥१२५॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
क्षुद्ररोग-गुह्यरोग-स्थावर-जङ्गमविषप्रतिकारो नाम
पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

उपर्युक्त तार्क्ष्य रस को १ रत्ती भर लेकर बांझककोड़े के कन्द के चूर्ण और शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से सर्व प्रकार के जङ्गम और स्थावर विष नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा विरचितायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्य-भाषा-टीकायां क्षुद्ररोग-गुह्य-
रोग-स्थावर-जङ्गमविष प्रतिकारो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः।

अथ जरारोगचिकित्सा—

अथ रसायनगुणाः—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम्॥
वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात्॥ १॥

रसायन गुण को करने वाले रस या काष्ठ औषधियों के नियमपूर्वक सेवन करने से दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, श्रवण किये हुए निखिलज्ञान को धारण करने वाली बुद्धि, आरोग्य, तरुण अवस्था, प्रभा, शरीरवर्ण (सुन्दर स्वरूप) और स्वर की औदार्यता (महत्व), देह और इन्द्रियों के बल की वृद्धि, वाणी की सिद्धि, पुष्टि और कान्ति आदि समग्रगुण प्राप्त होते हैं॥ १॥

अथ जराया निदानम्—

पन्थाः शीतं कदन्नानि वयोवृद्धाश्च योषितः।
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः॥ २॥

ज्यादा दिन तक रास्ते में चलते रहना, शीत तथा शीतल पदार्थों का अत्यन्त सेवन, जीवद्रव्य (विटामिन) से रहित रूक्षशुष्कादि खराब अन्न का निरन्तर सेवन करना, अपने अधिक अवस्था वाली या वृद्ध स्त्री के साथ बार २ सम्भोग करना और अपने मन के प्रतिकूल आहार विहारादिकों का गरीबी के कारण या पराधीनता के कारण निरन्तर परिशीलन करना ये पांच जरा (बुढौती) के कारण हैं। अर्थात् इन कारणों से युवा पुरुष भी वृद्ध के समान दुर्बल और रोगग्रसित हो जाता है॥ २॥

अथ वार्धक्यहररसायनम्—

हलिनीरससम्पिष्टौ तुल्यांशौ रसगन्धकौ।
हस्तिपर्णीलवलिकामत्स्याक्षीकल्कवेष्टितौ॥
त्रिःपक्वौ मूकमूषायां सद्योषौ वार्धकापहौ॥ ३॥

शुद्धपारद और शुद्धगन्धक इन दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बना के लाङ्गली की जड़ के स्वरस या क्वाथ के साथ दिन भर घोट के गोला बना लेना चाहिए। पश्चात् हस्तिकर्ण पलाश

की जड़, लवलिका अर्थात् हरफारेवडी की जड़ और मच्छेछी इन तीनों को समभाग लेकर पत्थर पर जल में पीस कर कल्क बना लेवें। फिर इस कल्क से उपर्युक्त रसगन्धक के गोले को एक २ अङ्गुल मोटा लपेट (अर्थात् गोले के ऊपर एक २ अङ्गुल मोटा कल्क का लेप) कर अन्धमूषा में गोले को बन्द करके गजपुट या भूधरपुट में पाक करना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से गोले को निकाल कर खरल में समभाग गन्धक के साथ घोट के लाङ्गली की जड़ के स्वरस से भावित करके घोट कर गोला बना लेवें। फिर इस गोले को हस्तिपर्ण्यादि औषधियों के कल्क से पूर्ववत् लपेट कर अन्धमूषा में बन्द करके पाक करें। इस प्रकार तीन बार पुट देकर खरल में महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। एक रत्ती भर यह रस प्रति दिन त्रिकटु और मधु या मक्खन के साथ मिला कर सेवन करने से जरा रोग को नष्ट कर देता है॥ ३॥

अथ उदयादित्यरसः—

आवर्तिते रसपलं क्षिप्त्वा द्विपलगन्धके।
आर्द्रकद्रवमुष्टीनां विंशत्या मर्दितं पचेत्॥ ४॥
मृद्गूढताम्रमूषायां तं गुञ्जाप्रमितं रसम्।
ससर्पिर्नागरं भुक्त्वा तप्ताम्बुप्रसृतं पिबेत्।
रसोऽयमुदयादित्यः स्याज्जरारजनीहरः॥ ५॥

दो पल भर शुद्धगन्धक लेकर उसको कड़ाही में डाल कर तपावें। जब वह पिघल (आवर्तित हो) जाय तब उसमें १ पल भर शुद्ध पारद डाल कर अच्छी प्रकार कलच्छी से मर्दन कर के मिलाकर कड़ाही को उतार लेवें। इस पारदगन्धक चूर्ण को पत्थर की खरल में डाल कर अच्छी प्रकार दिनभर घोट कर कज्जली बना लेनी चाहिए। कुछ टीकाकारों ने केवल पारद को द्विगुण गन्धक के साथ घोट कर कज्जली बनाने को लिखा है, उन्होंने गन्धक को द्रुत करने का नहीं लिखा है। अस्तु इस कज्जली को २० पल भर अदरखस्वरस से घोट कर गोला बना के सुखा लेवें। इस गोले को ताम्बे की मूषा में बन्द कर के ऊपर से कपड़ मिट्टी कर के सुखा कर गजपुट में पकावें। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से सिद्ध रस को निकाल कर अच्छी तरह महीन चूर्ण कर के शीशी में देना दैवा चाहिए। एक रत्ती भर रस को घृत और सोंठ के चूर्ण के

साथ प्रतिदिन सेवन कर के ऊपर से १ प्रसृत (दो पल) भर मन्दोष्ण जल पीना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह उदयादित्य नामक रस वृद्धौती (जरा) रूपी रात्रि को नष्ट करता है॥ ४-५॥

अथ सर्वरोगहररसायनम्—

मूषां तिन्दुकविस्तारामायामे षोडशाङ्गुलाम्।
भाण्डबाह्यस्थपादांशां वालुकाभिः प्रपूरयेत्॥ ६॥
तस्यां निवेश्य द्विगुणगन्धगर्भगतं रसम्।
याममात्रं पचेच्चुल्ल्यां क्षिपेद्गन्धस्य तूद्गमे॥ ७॥
वायसीनागिनीमत्तमेघनादरसं क्रमात्।
स रसः सर्वरोगघ्नो वलीपलितजिद्भवेत्॥ ८॥

तिन्दुक (तेन्दू) के फल के समान चौड़ी और सोलह अङ्गुल लम्बी आतसी शीशी के समान एक मूषा लेकर उस के तीन भाग अर्थात् १२ अङ्गुल तक के भाग को चौड़े मुख वाली नांद (या भाण्ड) में रक्खें तथा शेष चौथाई (४ अङ्गुल) भाग को नांद के बाहर रखना चाहिए। फिर भाण्ड को बालू से भर देवें तथा मूषा के भीतर शुद्धपारद की द्विगुण शुद्धगन्धक के साथ की हुई कज्जली को भर कर खुले मुख ही एक प्रहर तक पाक करना चाहिए तथा इतने समय में गन्धक के जल कर धूएं के रूप में निकल जाने पर वायसी (कौआठोडी या मकोय), नागिनी (नागदौना या पान), धत्तूर और चोलाई इन के दो २ पल भर रस को क्रम से डालते रहना चाहिए। जब सब का स्वरस मूषा में गिर जाय और अग्नि के संयोग से सूख जाय तब भाण्ड को चूल्हे से उतार कर स्वाङ्ग शीतल होने के पश्चात् मूषा के भीतर से सिद्ध रस निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। यह रस मलाई आदि स्निग्ध अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वलीपलितरोग को नष्ट करता है॥६-८॥

अथ मासिकरसायनम्

रसगन्धकमध्वाज्यशिलाजत्वम्लवेतसम्।
द्विमाषप्रमितं वेगान्मासमात्राज्जरां जयेत्॥ ९॥

शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर कार्पासपुष्प या वटशुङ्ग के क्वाथ से सात बार भावित करके सुखा

कर कपडमिट्टी की हुई आतसी शीशी में भर के यथाविधि बालुकायन्त्र में पाक कर लेवें। स्वाङ्गशीतलयन्त्र में से आतसी शीशी को निकाल कर शीशी की नाल में लगे हुए अरूण वर्ण के सिद्ध रस को युक्ति से निकाल कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस रस को दो रत्ती भर लेकर एक तोले भर शहद्, दो तोले भर मक्खन, एक माशे भर शुद्ध शिलाजीत, दो माशे भर अम्लबेंत का चूर्ण इन के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह केवल एक मास तक सेवन करने से यह रस बुढौति को नष्ट कर देता है अथवा रस अर्थात् रस सिन्दूर, शुद्धगन्धक, शहद्, घृत, शिलाजीत और अम्लबेंत का चूर्ण इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर चूर्ण बनाके या दो २ माशे भर की गोलियां बनाकर प्रतिदिन दुग्धादि अनुपान के साथ एक २ गोली एक मास तक सेवन करनी चाहिए ॥ ९ ॥

अथ षाण्मासिकरसायनम्—

विष्णुक्रान्ताऽरुणागस्तिक्षीरिणीतण्डुलीयकैः।
रसगन्धकयोः पिष्टी स्त्रीस्तन्येन च मर्दिता ॥ १० ॥
यवास्तिला घृतक्षौद्रमेषामुद्वर्तनं जयेत्।
कार्श्यं जरां च षण्मासाद्विधत्ते वृद्धिमायुषः ॥ ११ ॥

शुद्धपारद और शुद्धगन्धक दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर विष्णुक्रान्ता (अपराजिता), अतिविषा, अगस्त्यपुष्प, क्षीरिणी अर्थात् क्षीरकाकोली या दुग्धिका और चोलाई इन के स्वरस से क्रमशः एक२ दिन तक घोटकर पिष्टी बना लेवें। फिर इस पिष्टी को स्त्री के अथवा गाय के दुग्ध के साथ दिन भर खरल करके सुखाकर शीशी में भर देवें। इस पिष्टी को १ से तीन रत्ती भर यथोचित मात्रा से मधुरस्निग्ध अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा यव (जौ) का आटा और तिलों का चूर्ण दोनों को बराबर लेकर घृत और शहद् के साथ फैण्ट (मिला) के शरीर पर प्रातः काल उबटन करना चाहिए तथा मन्दोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। इस तरह ६ मास तक शौच, उबटन और स्नान संध्यादि कर्म के पश्चात उपर्युक्त रस को सेवन करना चाहिए। यह योग शरीर की कृशता और बुढौती का नष्ट करके आयु की वृद्धि करता है ॥ १०–११ ॥

अथ पाक्षिकरसायनम्—

शिलाजतुक्षौद्रविडङ्गसर्पिर्लोहाऽभयापारदताप्यभक्षः।
आपूर्य्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः॥१२॥

शुद्धशिलाजीत, वाय विडङ्ग का चूर्ण, लौहभस्म, हरड का चूर्ण, पारद अर्थात् पारदभस्म या रससिन्दूर और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन सबको समभाग लेकर खरल में घोटकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर लेवें। इस रस को १ से ३ माशे तक यथाबलानुसार लेकर शहद् और घृत के साथ मिला के पन्द्रह दिन तक सेवन करना चाहिए तथा घृत दुग्ध के साथ भोजन करना चाहिए। इस तरह इस योग को एक पक्ष तक सेवन करने से क्षीण शरीर तथा रसरक्तादि धातुओं के अभाव से शुष्क देह वाला पुरुष पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान हृष्ट पुष्ट और कान्तिमान् हो जाता हैं॥ १२॥

अथ हेमादिरसायनम्—

हेम धात्रीफलं क्षौद्रं गायत्रीरसभावितम्।
लिहन्ननु पिबेत्क्षीरं दृष्टारिष्टोऽपि जीवति॥ १३॥

स्वर्ण की भस्म और आंवलों का चूर्ण दोनों को समभाग लेकर खैर की छाल के क्वाथ से सात दिन तक भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को यथा बलानुसार ४ रत्ती से माशे भर तक लेकर शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से अच्छी तरह औटाया हुआ शर्करामिश्रित आधा सेर दुग्ध पी लेना चाहिए। इस तरह इस योग के प्रतिदिन सेवन करने से कृश और क्षीण धातु पुरुष मरण के अरिष्ट लक्षणों के प्रगट हो जाने पर भी जीवित रहता है। वास्तविक में यह योग अत्यन्त उत्तम है॥ १३॥

अथ पिप्पल्यादिरसायनम्—

मधुमागधिकाविडङ्गसारत्रिफलाहेम घृतं सितां च खादन्।
जरयाऽनवलीढदेहकान्तिः समधातुश्च समाः शतञ्च जीवेत्॥१४॥

मधु (शहद्), पिप्पली का चूर्ण, विडङ्ग का सार (चूर्ण), त्रिफला (हरड, बहेड़े, आंवलों) का चूर्ण, स्वर्णभस्म, घृत और चीनी इन सब को समभाग लेकर खरल में घोट कर एक २ माशे भर की गोलियां बना लेनी चाहिए। इन गोलियों में से प्रतिदिन एक २ गोली घृत और शहद् के साथ सेवन करनी चाहिए तथा

ऊपर से चीनी मिला हुआ मन्दोष्ण दुग्ध पीना चाहिए। अथवा १ रत्ती भर स्वर्णभस्म, ४ रत्ती भर पिप्पली का चूर्ण, एक माशे भर विडङ्ग का चूर्ण और एक माशे भर त्रिफला का चूर्ण लेकर इन्हें परस्पर मिला कर एक तोले भर शहद, दो तोले भर घृत और ४ तोले भर चीनी के साथ मिला के सेवन करें तथा ऊपर से आध सेर दुग्ध पी लेवें। इस तरह इस योग के प्रतिदिन सेवन करते रहने से पुरुष बुढौती से मुक्त (दूर) रह कर हृष्ट पुष्ट शरीर तथा समधातु हो के सौ वर्ष तक आरोग्य और सुख पूर्वक जीता रहता है ॥ १४ ॥

अथाष्टमासिकरसायनम्—

ज्योतिष्मतीनाम लता पीता पीतफलोज्ज्वला।
आषाढे पूर्वपक्षे स्याद्गृहीत्वा बीजमुत्तमम् ॥ १५ ॥
आहरेत्तिलवत्तैलं मुष्टिना चाऽपि तत्पचेत्।
क्षीरतुल्यं चतुर्थांशमाक्षिकं तैलशेषितम् ॥ १६ ॥
ततस्तत्कोलकर्पूरत्वग्जातिफलमिश्रितम्।
स्निग्धभाण्डगतं धान्येष्वनुगुप्तं निधापयेत् ॥ १७ ॥
पिबेत्सूर्योदये तैलात्पलं याति विसंज्ञताम्।
ततः संज्ञां शनैर्लब्ध्वा ततः क्रन्दति रोदिति ॥ १८ ॥
एवं मासे श्रुतिधरः परस्मिन्सूर्यसन्निभः।
तृतीये पूज्यते देवैश्चतुर्थे नैव दृश्यते ॥ १९ ॥
खेचरः पञ्चमे षष्ठे सिद्धैर्मिलति सप्तमे।
विष्णोः समदिनं जीवेज्जीवन्मुक्तोऽष्टमे भवेत् ॥ २० ॥

ज्योतिष्मती नाम की लता पीली होती है और आषाढ महीने के शुक्लपक्ष में वह पीले रङ्ग के फलों से उज्वल अर्थात् शोभायमान होती है। उस समय (आषाढ शुक्लपक्ष) में उस लता के पके हुए फलों में से बीजों को मुष्टि से निकाल कर तिलों की तरह तैली से तैल निकलवा लेना चाहिए। फिर उस तैल के बराबर दुग्ध और तैल से चतुर्थांश (चौथाई) माक्षिक (स्वर्णमाक्षिक) का जल के साथ पत्थर पर पीसा हुआ कल्क तथा तैल से चौगुना जल लेकर सब को कलईदार भाण्ड या कडाही में डाल के मन्द अग्नि से पाक करना चाहिए। जब तैलमात्र शेष रह जाय तब उतार कर वस्त्र से छान के तैल ले लेना चाहिए।

चव्य, कपूर, दालचीनी और जायफल इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बना के तैल की अपेक्षा चोथाई भाग की मात्रा से उपर्युक्त तैल में मिला देवें तथा तैल को स्निग्ध भाण्ड या मृतबान में भर के धान के ढेर में गाड कर एक मास के लिये रख दें। एक मास के पश्चात् तैल को छान कर शीशी में भर देवें। फिर इस तैल में से १ पल भर तैल लेकर दुग्ध में मिलाकर प्रातःकाल पीना चाहिए। इस तैल के पीने से मनुष्य कुछ समय तक बेहोश हो जाता है पश्चात् धीरे २ उसकी बेहोशी नष्ट हो जाती है तथा वह चिल्लाता है और रोने लगता है। इस तरह प्रायः १ से दो घण्टे के बीच में मनुष्य स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है। बुभूक्षा लगने पर घृत, चीनी और दुग्ध के साथ भात खिलाना चाहिए। इस विधि के अनुसार प्रतिदिन एक २ पल भर तैल पीना चाहिए। एक मास तक इस तैल के यथाविधि पान करने से मनुष्य श्रुतिधर अर्थात् एक बार सूनी हुई बातों को धारण करने में समर्थ हो जाता है। दो महीने तक सेवन करने से सूर्य के समान उस के शरीर का तेज हो जाता है। तीन मास तक तैलपान करते रहने से देवताओं से पूजित होता है अर्थात् अन्य मनुष्य देवता के समान उस का आदर सत्कार करते हैं या देवता आकर उसे अपना प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। चार मास तक सेवन करते रहने से उसे अणिमादिक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं जिन के कारण वह सांसारिक मनुष्यों के चर्म चक्षु से अदृष्ट हो जाता है। पांच मास तक सेवन करते रहने से वह स्वेच्छा पूर्वक आकाश मार्ग में विचरण करने लगता है। ६ मास तक सेवन करने से सिद्ध पुरुषों के साथ उस का मिलन हो जाता है। सात मास तक तैल के सेवन करने से विष्णु के दिन के बराबर आयु वाला या विष्णु की अवस्था के बराबर जीने वाला हो जाता है। इस तैल के आठ मास तक सेवन करते रहने से जीवन्मुक्त हो जाता है॥ १५-२०॥

अथ त्रिवार्षिकरसायनम्—

भूमावरत्निमात्रायां ताम्रं तैलेन पूरयेत्।
षण्मासं तापयेदूर्ध्वं मृदुना तुषवह्निना॥
पीत्वा माषादिनिष्क्रान्तं तत्त्रिवर्षान्महाकविः॥ २१॥

पृथ्वी में एक हाथ गहरा गर्त (गढहा) खोद कर उसमें ताम्र का घड़े के आकार का या चौड़े मुख का पात्र रख कर उसमें माल कंगुनी अथवा तिल्ली

का तैल भर कर शराव से मुख बन्द कर के कपड़मिट्टी कर देवें। फिर उस गड्ढे को मिट्टी आदि से समानान्तर कर के तुष (यव के आटे की भूस्सी) आदि की मन्द २ अग्नि से ६ मास तक तपाना चाहिए। इस प्रकार ६ मासतक तपा कर वहां की मिट्टी को हटा के भीतरी पात्र को निकाल कर उसमें के तैल को छान के शीशी में भर देवें।(कुछ टीकाकारों ने 'छ मास तक पृथ्वी में तैलपूर्ण ताम्रपात्र को गाड़ (रख) कर फिर एकप्रहर तक तुषों की मन्द २ अग्नि से पका.के छानकर शीशी में भर लेवें', इस प्रकार की विधि लिखी है)। इस तैल को प्रथमदिन १ माशे भर लेकर मन्दोष्ण दुग्ध में मिला के चीनी डाल कर पान करें। दूसरे दिन २ माशे भर, तीसरे दिन तीन माशे भर तथा चौथे दिन चार माशे भर तैल लेकर दुग्ध में मिलाकर पीवें। चार दिन के बाद तीन वर्ष तक प्रतिदिन चार २ माशे भर इस तैल के यथाविधि सेवन करते रहने से वह मनुष्य सर्व रोगों (जरा आदि) से मुक्त होकर महाकवि हो जाता है॥ २१ ॥

अथ षष्ठ्यधिकत्रिशतवर्षायुष्कररसायनम्—

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं चतुष्प्रस्थं पयः पचेत्।
द्विप्रस्थशेषं तत्पीत्वा मासं त्रिपुरुषायुषः॥ २२ ॥

तिलों का या मालकङ्गुनी का तैल १ प्रस्थ (६४ तोला), गाय का घी १ प्रस्थ और दुग्ध ४ प्रस्थ भर लेकर सब को कलईदार कड़ाही में या भाण्ड में डाल कर भट्टी पर चढाके मन्द २ अग्नि से पाक करना चाहिए। जब दो प्रस्थ भर स्नेह मात्र शेष रह जाय तब भाण्ड को उतार कर स्नेह को छान के शीशी में भर देवें। इस स्नेह को प्रायः चार तोले और चोअन्नी भर लेकर मन्दोष्ण दुग्ध में मिला के प्रतिदिन पीना चाहिए। इस तरह एक महीने तक इस तैल को यथाविधि पीने से तीन पुरुषायुष अर्थात् ३०० वर्ष और ७५ दिन तकजीवित रहने वाला मनुष्य हो जाता है॥ २२ ॥

अथ सहस्रवर्षायुष्कररसायनम्—

तैलं पिबेद्घृतक्षौद्रक्षीरान्यतममिश्रितम्।
कुर्याच्च तैलमध्वाज्यैर्नस्यं क्षीरघृताशिनः॥
भुक्त्वा शतायुः षण्मासात्सहस्रायुस्त्रिवर्षतः॥ २३ ॥

दुग्ध और घृत के साथ भोजन करने के पश्चात् घृत, मधु और दुग्ध इन

में से किसी एक द्रव्य के साथ मालकङ्गुनी का तैल पीना चाहिए तथा तैल, शहद् और घृत इन तीनों को बराबर लेकर मिला के नस्य लेना चाहिए तथा सन्ध्या को दुग्ध, घृत, चीनी आदि स्निग्ध मधुर द्रव्यों के साथ भोजन करना चाहिए। इस प्रकार इस योग के ६ मास तक सेवन करने से मनुष्य सौ वर्ष तथा १ वर्ष तक निरन्तर सेवन करने से १ हजार वर्ष तक जीवित रहता है ॥ २३ ॥

अथ त्रिफलारसायनम्—

मधुकेन तुगाक्षीरी पिप्पली क्षौद्रसर्पिषा।
विडङ्गपिप्पलीभ्यां च त्रिफला लवणेन च ॥ २४ ॥
संवत्सरप्रयोगेण स्मृतिमेधाबलप्रदा।
भवत्यायुःप्रदा पुंसां जरारोगनिबर्हिणी ॥ २५ ॥

१ शहद् के साथ वंशलोचन का चूर्ण, २ शहद् और घृत के साथ पिप्पली का चूर्ण, ३ वायविङ्ग और पिप्पली के समभागचूर्ण के साथ त्रिफला का चूर्ण, ४ सैन्धव लवण के साथ त्रिफला का चूर्ण इस प्रकार इन चार योगों में से किसी एक योग का प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस विधि से इन योगों में से किसी एक योग को वर्ष भर तक सेवन करते रहने से पुरुषों की स्मरणशक्ति, मेधा (धारणा शक्ति), बल और आयु की वृद्धि होती है। ये योग जरा (बुढौति) तथा अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करते हैं ॥ २४-२५ ॥

विमर्शः—अथवा यहां पर केवल त्रिफला ही को भिन्न२ (मधु से लवणान्त) अनुपानों के साथ सेवन करने का तात्पर्य समझना चाहिए। योगकल्पना—१ शहद् के साथ त्रिफला, २ वंशलोचन और त्रिफला, ३ पिप्पली और त्रिफला, ४ शहद् घृत और त्रिफला, ५ वायविड्ङ्ग, पिप्पली चूर्ण और त्रिफला, तथा ६ सैन्धव लवण और त्रिफला, इस तरह इन ६ योगों में से किसी एक योग का वर्ष भर तक निरन्तर सेवन करने से उपर्युक्त गुण होते हैं। इन ६ योगों की कल्पना का सादृश्य वाग्भटोक्त विविधानुपानप्रयुक्त त्रिफला रसायन के साथ हो सकता है अतः यही अर्थ विशेष महत्त्व का समझा जाता है। तथा च वाग्भटे—मधुकेन तुगाक्षीर्या पिप्पल्या लवणेन च। पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥ सितया वा समायुक्ता समायुक्ता रसायनम्। त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा। इति।

अथ द्वितीयत्रिफलारसायनम्—

खदिरासनभृङ्गसातला कृमिशत्रूदकभाविता मुहुः।

गुडमाक्षिकसर्पिरन्विता त्रिफला हन्ति जरां च वत्सरात् ॥२६॥

खदिर का सार (कत्था), असन (पीतशाल या बिजैसार), भृङ्गराज, सातला (बिना कांटोंवाला अङ्गुली के समान शाखाओं से युक्त थूहर भेद) और वायविडङ्ग इनके स्वरस तथा स्वरस न मिलने वाले पदार्थों के क्वाथ के साथ पृथक् २ सात २ बार त्रिफला के चूर्ण को भावित करके अच्छी तरह घोट कर सुखा के शीशी में भर देवें। इस प्रकार भावित त्रिफला चूर्ण को उचित मात्रा में प्रतिदिन गुड़, शहद् और घृत के साथ मिला के सेवन करना चाहिए। इस विधि से यह त्रिफला योग या रसायन एक वर्ष तक सेवन करने से जरारोग का विनष्ट कर देता है ॥ २६ ॥

अथ तृतीयत्रिफलारसायनम्—

त्रिफलामसनोदकेन पिष्ट्वा रजनीपर्युषितामयः कपाले।
मधुरां मधुना लिहन्निहन्स्ति स्थविमानं जरसं गदांश्च सर्वान् ॥ २७ ॥

त्रिफला के चूर्ण को लोहे की खरल में विजैसार की छाल के क्वाथ के साथ दिन भर घोटकर खरल को ढक के रात भर के लिए रख देवें। फिर दूसरे दिन इसमें शहद् मिला के घोटकर लेह बना के रख देवें। यह त्रिफला रसायन प्रति दिन सेवन करने से स्थूलता (शरीर की अनावश्यक या बल रहित मोटाई), बुढौती और अन्य सर्व प्रकार के रोगों को विनष्ट करता है ॥ २७ ॥

अथ षडङ्गरसायनम्—

कान्ताभ्रकशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम्।
शीलितं मधुसर्पिर्भ्यां व्याधिवार्धकमृत्युजित् ॥ २८ ॥

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शिलाधातु अर्थात् शिलाजतु, शुद्ध वत्सनाभ का चूर्ण सूतक अर्थात् रससिन्दूर और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन सब का समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। इस षडङ्ग रसायन को १ से ३ रत्ती भर तक यथा बलानुसार लेकर शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह षडङ्गरसायन नाना प्रकार की व्याधियां, वार्धक्य (बुढौति) और अकाल मृत्यु को नष्ट करता है ॥ २८ ॥

अथ वार्षिकरसायनम्—

गन्धं लौहं भस्म मध्वाज्ययुक्तं सेव्यं वर्षं वारिणा त्रैफलेन।

शुभ्रे केशे कालिमा दीर्घदृष्टिः पुष्टिवीर्यं जायते दीर्घमायुः ॥ २६ ॥

शुद्धगन्धक और लौहभस्म दोनों को समभाग लेकर त्रिफला के क्वाथ के साथ तीन दिन तक खरल करके शुष्क चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस योग को १ वल्ल (३ रत्ती) भर की मात्रा से दिन में दो वार शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक इस याग के सेवन करते रहने से शिर के पके हुए सफेद बालों पर कालिमा आ जाती है, दृष्टिशक्ति बढ जाती है तथा वीर्य की पुष्टि और दीर्घायु हो जाती है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिहररसायनम्—

नीलज्योतिः कान्तचूर्णं रुदन्ती धात्रीपत्रैर्वारिणा त्रैफलेन ।
मध्वाज्याभ्यां वत्सरार्धप्रयोगात्कुष्ठं शुभ्रं रोगजातं निहन्ति ॥३०॥
देहे दार्ढ्यं दिव्यदृष्टिः सुपुष्टिर्वीर्यं शौर्यं जायते दीर्घमायुः ॥३१॥

नीलज्योति अर्थात् शुद्ध तुत्थक और कान्तलौह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर रुद्रवन्ती के स्वरस, आंवले के पत्तों का स्वरस और त्रिफला के क्वाथ से पृथक् २ सात २ वार खरल करके शुष्क चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रसायन को ३ रत्ती भर लेकर प्रतिदिन शहद् और घृत के साथ दिन में दोवार सेवन करना चाहिए। इस प्रकार आधे वर्ष तक इस प्रयाग के सेवन करने से श्वेत कुष्ठ नष्ट हो जाता है, शरीर की पुष्टि, दिव्यदृष्टि, वीर्य्यवृद्धि, शूरता और दीर्घायु उत्पन्न होती है ॥ ३०-३१ ॥

अथ ज्योतिष्मतीतैलरसायनम्—

ज्योतिष्मत्यास्तैलमाज्यं सगन्धं गुञ्जावृद्ध्या सेवयेन्माषमात्रम् ।
यावच्च स्याद्यस्तु स प्राप्य मूर्तिर्मेधायुक्तो दिव्यदृष्टिर्नियदमा ॥३२॥

ज्योतिष्मती (मालकङ्गुनी) का उपर्युक्त विधि से निकाला हुआ तैल, गाय का घृत और शुद्धगन्धक इन तीनों को समभाग लेकर खरल में अच्छी प्रकार घोट कर काच के बर्तन में भर देवें। इस रसायन को प्रथम दिन १ रत्ती भर सेवन करना चाहिए तथा प्रतिदिन एक २ रत्ती की मात्रा बढानी चाहिए, इस तरह जब १ माशे भर की मात्रा हो जाय तब मात्रा की वृद्धि न करें। फिर १ माशे भर की मात्रा के अनुसार इस रसायन को जब तक इच्छा हो तब तक सेवन करते रहना चाहिए। इस रसायन के प्रतिदिन सेवन करने से मनुष्य को

मूर्ति अर्थात् शरीर नियक्ष्मा (रोगरहित) हो जाता है तथा उसकी धारणा शक्ति बढ जाती है और दिव्यदृष्टि हो जाती है ॥ ३२ ॥

अथ सर्वरोगान्तकरसायनम्—

कान्ताभ्रत्रिफलाविडङ्गरजनीताप्याब्ददेवद्रुम-
व्योषैलाग्निपुनर्नवाद्रिगिरिजाङ्कोलैः समं गुग्गुलुम् ।
पिष्ट्वा भृङ्गजलेन सूक्ष्मगुलिकां खादेद्यथासात्म्यतो
मेदःश्लेष्मसमीरणोल्बणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः ॥ ३३ ॥

कान्तलौह की भस्म, अभ्रक की भस्म, त्रिफला का चूर्ण, विडङ्ग का चूर्ण, हरिद्रा का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक की भस्म, नागरमोथे का चूर्ण, देवदारू का चूर्ण, त्रिकटु का चूर्ण, इलायची का चूर्ण, चित्रक की जड़ का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, अद्रिज अर्थात् शुद्धशिलाजतु, गिरिज अर्थात् शुद्ध गैरिक और अङ्कोल के बीजों का चूर्ण इन सब को समभाग लेकर तथा सब के बराबर शुद्ध गूगल को खरल में एकत्र मिला के घोटकर अत्यन्त महीन चूर्ण बना लेना चाहिए । फिर इस चूर्ण को भृङ्गराज के स्वरस के साथ सात दिन तक खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर देवें । इस सर्वरोगान्तक रसायन की एक २ गोली प्रतिदिन मेद, कफ और वायु के दूषित होने से उत्पन्न हुए भयङ्कर रोगों में तथा अन्य रोगों में सेवन करनी चाहिए । जैसी व्याधि हो उसके अनुसार अनुपान की व्यवस्था करनी चाहिए । इस रसायन को प्रायः ३ से ६ मास तक निरन्तर सेवन कर सकते हैं ॥ ३३ ॥

अथ कान्तरसायनम्—

कान्तं तुल्याभ्रसत्त्वं चरणपरिमितं हेम तत्तुल्यमर्कं
वैक्रान्तं ताप्यरूप्यं कृमिहरकटुकैस्तुल्यभागैः समेतम् ॥
लीढं देवद्रुतैलैर्विरचयति नृणां देहसिद्धिं समृद्धां
पथ्यं कल्पोक्तमुक्तं हरति च सकलान् रोगपुञ्जाञ्जवेन ॥ ३४ ॥
तदेतत्सर्वरोगघ्नं रम्यं कान्तरसायनम् ।
सेव्यं वृष्यं सुपुत्रीयं मङ्गल्यं दीपनं परम् ॥ ३५ ॥

कान्तलौह को भस्म १ तोला, अभ्रकभस्म का सत्त्व १ तोला, स्वर्णभस्म ¼ तो० (चौअन्नी भर), स्वर्ण की भस्म के बराबर (चौअन्नी भर) ताम्र की

भस्म, वैक्रान्तभस्म १ तो०, स्वर्णमाक्षिकभस्म १ तो०, रौप्यमाक्षिकभस्म १ तो० और उपर्युक्त सब औषधियों के बराबर वायविडङ्ग और कुटकी का मिलित चूर्ण लेकर सर्व द्रव्यों को खरल में एकत्रित कर के अत्यन्त महीन पीस के चूर्ण बनाकर शीशी में भर देवें। इस रसायन को तीन रत्ती भर लेकर दिन में दो वार देवदारू के तैल के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। इस प्रकार सेवन करने से यह कान्तरसायन मनुष्यों के शरीर को सुदृढ, सुन्दर और नीरोग करता है। भिन्न २ कल्पों (योगों) में कहे हुए पथ्यों के साथ और अनुपानों के साथ यह रसायन सेवन करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है। यह कान्तरसायन सर्वरोगों का नाशक, देह को रम्य (सुन्दर) बनाने वाला, सब अवस्था में निःशङ्क सेवन करने योग्य, वृष्यगुणों को करने वाला, पुत्ररत्न देने वाला, शरीर का मङ्गल (कल्याण) करने वाला तथा प्रणष्ट हुई अग्नि को अत्यन्त प्रदीप्त करने वाला है॥ ३४-३५॥

अथान्यत्रिफलारसायनम्—

रात्रौ कान्तशरावके त्रिकफला(१) भिन्ना जलैः स्वादुभिः
प्रातर्मुष्टिमिताः खलु प्रतिदिनं षण्मासमासेविताः।
हन्युः पित्तकफामयान्बहुविधं कुष्ठं प्रमेहांस्तथा
पाण्डुं यक्ष्मगदं च कामलगदं पथ्यं च तक्रं तथा॥ ३६॥

रात्रि के समय कान्तलोह के द्वारा बनाये हुए शराव (कटोरे) में एक मुष्टि के बराबर अर्थात् एक पल भर समभाग त्रिफला डालके स्वादु (मधुर शीतल) जल से शराव को भर कर ढक के रख देवें। प्रातः काल इन फलों की गुठली को निकाल कर खा लेवें तथा ऊपर से उसी जल को पी जाना चाहिए। इस तरह छ मास तक तीनों (हरड, उहेड़ा, आंवला) के फलों को सेवन करते रहने से ये फल पित्त और कफ की विकृति से उत्पन्न हुए सर्व रोग तथा विशेष कर विविध प्रकार के कुष्ठ रोग, प्रमेह, पाण्डु रोग, राजयक्ष्मा और कामला रोग को नष्ट करते हैं। इन फलों के सेवन करते समय भोजन के साथ मट्ठे को अधिक पीना चाहिए। जिन पुस्तकों में "त्रिक फलाः" के साथ में "सुचणकाः"

(१) "सुचणकाः" "त्रिकफलाः" इत्यत्र इति पाठान्तरं। परन्तु चणकेषु कुष्ठयक्ष्मादिहरगुणस्यादृष्टत्वान्नैव सम्यग्विभाति।

ऐसा पाठान्तर है वहां एक मुट्ठी भर काबुली चनों को कान्तलोह के कटोरे में जल से भीङ्गो कर सुबह शौचादि से निवृत्त हो कर खावें तथा ऊपर से उस जल को भी पी जाना चाहिए ॥ ३६ ॥

अथ द्वितीयकान्तरसायनम्—

त्रिफलामस्तुसंयुक्तं कान्तं सर्वरसायनम् ॥ ३७ ॥

कान्त अर्थात् कान्त लोह को सहस्रपुटीभस्म को एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला के क्वाथ या चूर्ण और मस्तु (दही के पानी) के साथ प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या के समय सेवन करते रहना चाए। यह योग अत्यन्त रसायन गुण प्रद है, अथवा सर्व प्रकार के रसायनशक्तिप्रद योगों में श्रेष्ठ है ॥ ३७ ॥

अथ तृतीयकान्तरसायनम्—

एतत्स्यादपुनर्भवं हि भसितं कान्तस्य दिव्यामृतं
सम्यक्सिद्धरसायनं त्रिकटुकोवेल्लाज्यमध्वन्वितम् ॥
हन्त्यान्निष्कमितं जरामरणजव्याधींश्च सत्पुत्रदं
प्रोक्तं श्रीगिरिशेन कालयवनोद्भूत्यै पुरा तत्पितुः ॥ ३८ ॥

त्रिकटु के चूर्ण, वायविडङ्ग के चूर्ण, घृत और मधु (शहद्) के साथ प्रति दिन १ निष्क भर कान्तलोह की अपुनर्भव अर्थात् निरूत्थ की हुई भसित (भस्म) दिन में चार बार सेवन करनी चाहिए। इस तरह प्रायः एक मास तक निरन्तर सेवन करने से यह कान्त लौह भस्म मनुष्य के देह में देवताओं के अमृत के समान गुणों को उत्पन्न करती है। यह भस्म बहुतवार अनुभव करने से सिद्ध रसायन प्रतीत हुई है तथा जरा (बुढ़ौति) और मृत्यु तथा जरा के कारण उत्पन्न व्याधियों को विनष्ट कर देती है। यदि दूषित वीर्य्य वाला पुरुष और दूषित मासिक धर्म वाली स्त्री इस भस्म को उपर्युक्त अनुपानों के साथ सेवन करें तो उनका वीर्य्य और रज शुद्ध होकर सत्पुत्र उत्पन्न होता है। प्राचीन काल में श्री शङ्कर भगवान् ने कालयवन नामक राक्षस के पिता को पुत्र की उत्पत्ति के लिये इस प्रयोग को बताया था ॥ ३८ ॥

विमर्शः—एक निष्क चार माशे के बराबर होता है (माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद् स निष्कष्टङ्क एव च) इस लिये त्रिकटु का चूर्ण ½ मा०, वायविडङ्ग का चूर्ण ½ मा० और शहद १ मा०, घृत डेढ़ मा० तथा शेष अर्थात् आधे माशे (४ रत्ती) भर कान्त-

लौहभस्म लेकर सब को मिला के सेवन करें। इस प्रकार दिन में दो वार सेवन करना चाहिए।

अथ कान्ताभ्रकरसायनम्—

सिद्धमभ्रं समं कान्तं मर्दयेदार्द्रवारिणा ॥
कलांशं हेमचूर्णस्य बीजपूररसे पुनः ॥ ३९ ॥
मर्दयेत्खल्लमध्यस्थं यावत्सप्तदिनावधि ।
आटरूषरसेनैव तथा मुण्डीरसेन च ॥ ४० ॥
तालमूलीरसेनैव दशमूलीरसेन वा ।
तत्तद्रोगहरैः क्वाथैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥ ४१ ॥
त्रिफलाव्योषचूर्णं च मध्वाज्याभ्यां प्रयोजयेत् ।
पञ्चकर्मविशुद्धेन सेव्यमेतद्रसायनम् ॥ ४२ ॥
पाण्डुशोफोदरानाहग्रहणीशोषकासजित् ।
सन्ततं सततं चैव पुराणं विषमं ज्वरम् ॥ ४३ ॥
निहन्यात्सर्वकुष्ठानि प्रमेहान्विंशतिं जयेत् ।
कान्ताभ्रकमिदं श्रेष्ठं रसायनमनुत्तमम् ॥ ४४ ॥

साधारण और विशेष प्रकार से शुद्ध तथा धान्याभ्रक करने के पश्चात् अच्छी तरह पुट देकर सिद्ध की हुई अभ्रक की भस्म और कान्त लौह की भस्म इन दोनों को समभाग लेकर खरल में एकत्र डाल के सात दिन तक आदी के स्वरस के साथ खरल करें। फिर उसमें (कान्ताभ्रक को अपेक्षा) षोडशांश स्वर्णभस्म मिलाकर बिजोरे निम्बू के रस के साथ सात दिन तक घोटना चाहिए। फिर अडूसा (वासा), गोरखमुण्डी, तालमूली (मूसलीकन्द) और दशमूल इन औषधियों के स्वरस से पृथक्२ भावित करके खरल करें, तथा जिन२ रोगों को नष्ट करने के लिये यह रस देना हो उन२ रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों के स्वरस या क्वाथ से सात२ वार भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर देवें। इस रस को यथोचित मात्रा से लेकर त्रिफला के चूर्ण, व्योष (त्रिकटु) के चूर्ण, शहद और घृत के साथ मिलाकर पञ्चकर्म (वमनविरेचादिक) से शुद्ध कोष्ठ वाले व्यक्ति को सेवन करने के लिये देना चाहिए। यह रस पाण्डु, शोथ, उदर (जलोदर) रोग, आनाह (अफारा), ग्रहणीरोग, शोष और कास को नष्ट

करता है तथा सन्ततज्वर, सततज्वर, पुराणज्वर, विषमज्वर, सर्व प्रकार के कुष्ठ और बीस प्रकार के प्रमेहों को विनष्ट करता है। यह कान्ताभ्रकरसायन अन्य सब रसायनों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। इसके सेवन से मनुष्य सर्वरोगों से मुक्त हो जाता है ॥ ३९–४४ ॥

अथ पाठादिघृतम्—

पालाशोलूखले तन्मलवियुजि विमर्दोद्धृतैराढकांशै
र्मिश्रं ब्राह्मीरसैस्तैर्विधिवदिह पचेत्प्रस्थमात्रं गवाज्यम्।
पाठाधात्रीहरिद्रात्रिवृदुपरचितेनापि कल्केन सिद्धं
यो वा कीटारिकृष्णासलवणजटिलाभिर्विलीढःसदा स्यात् ॥४५॥
सौकर्यः सप्तरात्रान्मतिमतिविशदां पक्षतो मासमात्रा-
च्चातुर्यं सत्कवित्वं वरसकलकलाऽभिज्ञतां प्राप्नुयात्सः ॥ ४६ ॥

पलाश की लकड़ी से बनाई हुई निर्मल ओखली में जल से साफ की हुई गीली ब्राह्मी को डाल के खाण्ड कूट कर वस्त्र से छान के १ आढक भर स्वरस निकाल लेना चाहिए। फिर एक प्रस्थ भर गाय का घृत तथा घृत से चौथाई पाठा, आंवले, हलदो और त्रिवृत् की जड़ का कल्क लेकर सव को कलईदार बड़े भाण्ड या बड़ी कड़ाही में डाल के मन्द २ अग्नि वाली भट्टी पर पाक करना चाहिए। जब समग्र जलीयांश नष्ट होकर घृत सिद्ध हो जाय तब पात्र को भट्टी से उतार कर घृत को छान लेवें। तथा कल्क को हाथों के बीच में दबा २ कर घृत निकाल लेना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुए घृत को एक तोले भर लेकर उसमें वायविडङ्ग, पिप्पली, सैन्धव लवण और जटामांसी इनके समभागगृहीत कपड़ छान किये हुए ३ माशे भर चूर्ण को मिलाकर प्रतिदिन सेवन करना चाहिये, इस तरह सात दिन तक सेवन करने से यह घृत मनुष्य को सौकर्य अर्थात् विविध कर्म करने में निपुण बना देता है, एक पक्ष तक सेवन करने से बुद्धि को अत्यन्त निर्मल करता है तथा एक मास तक इस घृत के सेवन करते रहने से पुरुष चतुरता तथा अच्छी २ कविताओं के करने की शक्ति से युक्त होजाता है तथा सुन्दर २ सर्व प्रकार की कलाओं के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है ॥ ४५–४६ ॥

अथ ताप्यादिवटकः—

ताप्याभ्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजकान्त-
मङ्कोल्ललोहमलटङ्कणसैन्धवं च।

भृङ्गीरसेन वटकांश्च मसूरमात्रा-
न्खादेद्रसायनवरं सकलामयघ्नम् ॥ ४७ ॥

सुवर्ण माक्षिक की भस्म, अभ्रकभस्म, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली) का चूर्ण, शुद्धतुत्थक की भस्म, शुद्धशिलाजीत, कान्त लोह की भस्म, अङ्कोल के बीजों का चूर्ण, लोहमल अर्थात् मण्डूर की भस्म, शुद्धसुहागा और सैन्धव लवण इन सब को सम भाग लेकर खरल में महीन पीस कर भृङ्गराज के स्वरस में सात दिन तक घोटकर मसूर के बराबर गोलियां बना के छाया में सुखा कर शीशी में भर देवें। यह भिन्न २ अनुपानों के साथ प्रयुक्त करने से सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। यह सर्व रसायनों में श्रेष्ठ रसायन है, इस के अतिदिन सेवन करने से मनुष्य जरादि रोगों से मुक्त हो जाता है ॥ ४७ ॥

अथ कमलाविलासरसः—

लोहाभ्रौ बलिसूतहाटकपविस्तुल्यं कुमारीरसे
पक्वैरण्डदलैर्निबध्य सुदृढं सद्धान्यराशौ त्र्यहम्।
क्षिप्त्वोद्धृत्य विचूर्णितं मधुवरायुक्तं यथासात्म्यतः
कृष्णात्रेयविनिर्मितं गदजराविध्वंसि सौख्यप्रदम् ॥ ४८ ॥
आज्ञासिद्धमिदं रसायनवरं सर्वप्रमेहप्रणुत्
कासं पञ्चविधं तथैव तनुगं पाण्डुञ्च हिक्कां व्रणम्।
श्लेष्माणं पवनं हलीमकगदं हन्याच्च मन्दानलं
कण्डूकुष्ठविसर्पविद्रधिमुखापस्मारकाद्याञ्जयेत् ॥ ४९ ॥
गोप्याद्गोप्यतरः सुखेन सुलभः सर्वत्र सिद्धो रसो
नाम्नाऽयं कमलाविलास इति सद्वैद्यस्य कीर्तिप्रदः ॥ ५० ॥

लोहभस्म, अभ्रकस्म, शुद्धगन्धक, शुद्धपारद, स्वर्णभस्म और हीरे की भस्म इन सब को समभाग लेकर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष औषधियों को मिला के दिन भर घोटें। फिर इस को घृतकुमारी के के स्वरस में खरल करके गोला बना कर छाया में सुखा लेना चाहिए। इस गोले को पके हुए एरण्ड के पत्तों से अच्छी प्रकार ढक कर (या लपेट कर) डोरे से खूब मजबूत बांध देना चाहिए। फिर इस को अच्छे नवीन धान के ढेर के मध्य में गाड कर तीन दिन तक रख देवें। चौथे दिन धान्य के ढेर (समूह) से

गोले को निकाल कर पत्रादिकों को दूर करके खरल में दिन भर घोट कर शीशी में भर देवें। इस रस को आधी रत्ती से तीन रत्ती भर तक ले कर या यथाव्याधिबलादि के अनुसार मात्रा की कल्पना करके शहद् और त्रिफला के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह कृष्णात्रेय नामक महर्षि के द्वारा सर्व प्रथम बनाया हुआ है। यह रस मनुष्यों के सकलरोग तथा जरा (बुढौति) को नष्ट करके सुख प्रदान करता है। गुरु लोगों की आज्ञा के अनुसार सिद्ध किया हुआ यह श्रेष्ठ रसायन सर्व प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है। यह रस यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहने से पांच प्रकार के कास, सर्वदेह में उत्पन्न हुए पाण्डुरोग, हिक्का, दुष्टव्रण, विकृत हुए श्लेष्मा और वायु तथा हलीमक नामकरोग, मन्दाग्नि, खुजली, विविधकुष्ठ, विसर्प, विद्रधि, मुखरोग और अपस्मार आदि सब रोगों को नष्ट करता है। यह रस अत्यन्त गोपनीय रसों से या वस्तुओं से भी अधिक गोप्य है तथा इसका निर्माण सुखपुर्वक कर सकते हैं। यह अत्यन्त सुलभ और सब रोगों में सिद्धि प्रदान करता है। यह रस रोगों को अवश्य नष्ट कर देने के कारण अच्छे (सात्विक, परोपकारी) वैद्यों की कीर्ति को बढाता है। यह रस कमलाविलास इस नाम से ख्यात है ॥ ४८–५० ॥

अथ लक्ष्मीविलासरसः—

वेदेन्दुनेत्राङ्गरसाङ्गभागा भूसूतगन्धोषणतिन्दुटङ्काः।
भृङ्गार्द्रगुञ्जाजवनीनवाभिर्भाव्यं त्रिशः स्वेद्यमदोऽर्कपत्रे ॥ ५१ ॥
लक्ष्मीविलासः स विशाललक्ष्मीं तनौ तनोति क्षयिणः प्रयोगैः ॥५२॥

लौहभस्म (भू) ४ भाग (वेद), शुद्धपारद (सूत) १ भाग (इन्दु), शुद्धगन्धक २ भाग (नेत्र), समभाग गृहीत ऊषण (मरिच) का चूर्ण ६ भाग (अङ्ग), तेन्दू के फल या शुद्ध कुचले का चूर्ण ६ भाग (रस) और शुद्धटङ्कण (सुहागा) ६ भाग (अङ्ग) लेकर प्रथम पारद और गन्धक की पत्थर की खरल में कज्जली बनाकर उसमें शेष द्रव्य मिलाके दिन भर सब को घोटें। फिर भृङ्गराज, अदरख (आदी), गुञ्जा (घुंघची), अजवाईन (जवनी) और नवा अर्थात् पुनर्नवा इन औषधियों के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः तीन २ वार पृथक् २ भावित करके घोटकर गोला बना लेना चाहिए। इस गोले को आक के पत्तों में रख कर डोरे से लपेट के तुषों की अग्नि में रख कर थोड़ी देर तक स्वेदन करना चाहिए।

पश्चात् स्वाङ्गशीतल गोले के ऊपर से पत्तों को हटा कर खरल में महीन पीस के शीशी में भर देवें। इस बिधि से सिद्ध हुआ यह लक्ष्मी विलास रस यथाग्नि बलानुसार प्रति दिन सेवन करने से क्षयरोग ग्रसित पुरुष के क्षीण शरीर को हृष्ट पुष्ट और शोभायमान कर देता है॥ ५१-५२॥

अथ सौश्रुतनारिकेलप्रयोगः—

वाराहीमुशलीकन्दकनकाऽहिखरस्तथा।
वानरीफलसंयुक्तं चूर्णयित्वा पृथक् पृथक्॥ ५३॥
कार्पासमज्जदुग्धेन उत्कलय्य यथाक्रमम्।
भावनासप्तकं दत्त्वा सूर्यतापे विशोषयेत्॥ ५४॥
नारिकेलं च सम्भृत्य द्वारं रुध्वा यथाविधि।
गोदुग्धेन तु तत्कल्पषोडशद्वयमात्रतः॥ ५५॥
दर्व्या संवर्तितं भाण्डे यथा दार्ढ्यं न याति च।
शीतं चूर्णीकृतं पक्वमाज्येन प्रपचेन्नरः॥ ५६॥
जातीफलं लवङ्गं च एलाचूर्णं विनिक्षिपेत्।
निष्पन्नं शाणमात्रं तुं गृहीत्वा प्रपिबेत्पयः॥ ५७॥
वातरोगाः प्रमेहाश्च बलक्षयमथोल्बणाः।
सप्तरात्रप्रयोगेण प्रशमं यान्ति सर्वतः॥ ५८॥
वृद्धोऽपि तरुणत्वं स प्रहर्षति सदा नरः।
सौश्रुताख्यं नारिकेलं गुरुणा परिकीर्तितम्॥ ५९॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये रसायनविधिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः।

वाराहीकन्द, मुषलीकन्द, धत्तूरे को जड़, अहि अर्थात् अफीम को फलों के छिलके (पोस्ते), दुरालभा की जड़ और कौञ्च के बीज इन सब को समभाग लेकर पृथक् २ चूर्ण बना के प्रत्येक द्रव्य के चूर्ण को पृथक् २ कपास के बोज के क्वाथ या निर्यास से अथवा कपास के बीज डाल करके औटाये (उष्ण किये) हुए

दुग्ध से सात २ वार भावित करना चाहिए। रात के समय कार्पासबीजनिर्यास से अच्छी तरह भींगो कर दूसरे दिन सूर्य की तेज धूप में चूर्ण को सुखाना चाहिए। यह एक भावना हुई। इसी तरह हरेक चूर्ण की सात भावनाएं देवें। पश्चात् सब चूर्णों को एक खरल में मिलाकर दिनभर अच्छी तरह खरल करके शुष्क चूर्ण बना लेवें। फिर एक नारियल लेकर उसके ऊपर की जटा को दूर करके मुख पर छिद्र बना कर उस में वाराही कन्दादि औषधियों के चूर्ण को भी भर कर मुख को अच्छी तरह बन्द कर देना चाहिए। पश्चात् नारियल में भरी हुई औषधि की अपेक्षा द्विषोडशगुण अर्थात् ३२ गुने गोदुग्ध को कलईदार कड़ाही या भाण्ड में भर कर उस में औषधपूर्ण नारियल को मन्द २ अग्नि से पकाना चाहिए तथा कलच्छी से नारियल को चलाते रहना चाहिए। जब समस्त दुग्ध का जलीयांश नष्ट हो जाय अर्थात् खोए के समान पिण्ड बन जाय तब उस में घृत डाल कर अच्छी प्रकार भून लेना चाहिए। ठीक भून जाने पर उसमें जायफल, लवङ्ग और इलायची का थोड़ा २ चूर्ण डाल कर अच्छी तरह मिला के चौड़े मुख वाली शीशी या मृत बाण में भर देवें। इस विधि से सिद्ध हुई इस औषध को १ शाण (४ मा०) भर लेकर खावें तथा ऊपर से आध सेर मन्दोष्ण दुग्ध पीना चाहिए। इस औषध के प्रतिदिन सेवन करने से वात की विकृत से उत्पन्न रोग, प्रमेह, बलक्षय तथा अन्य प्रकार के भयङ्कर रोग सर्वदा के लिये नष्ट होजाते हैं। प्रायः इसे सात दिन तक सेवन करें परन्तु यथोक्त रोगों की जब तक शान्ति न हो तब तक सेवन करें। इस औषध के सेवन करने से वृद्ध मनुष्य भी तरुण हो जाता है। यह सौश्रुताख्य नारिकेलरसायन गुरु अर्थात् बृहस्पति के द्वारा सर्व प्रथम बताया गया है ॥ ५३–५९ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्य भाषाटोकायां रसायनविधिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः।

सप्तविंशोऽध्यायः।

वाजीकरणम्—

अथ वाजीकरणगुणाः—

वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान्।
पुष्टिस्तुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संस्थितम् ॥ १ ॥

सर्वदा विषयों में रत रहने वाले पुरुष को वाजीकरण औषधियों का सेवन करते रहना चाहिए। वाजीकरण औषधियों के सेवन करने से विषयभोग से क्षीण हुए शरीर की पुष्टि होती है, मन प्रसन्न रहता है तथा गुणवान सन्तान की प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

अथ वाजीकरणस्य निरुक्तिः—

वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः।
तद्वाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम् ॥ २ ॥

जिन औषधियों के प्रतिदिन सेवन करने से अश्व के समान बलशाली होकर मनुष्य शक्ति आदि से अप्रतिहत होकर अर्थात् क्षीण न होकर अनेक रमणियों के साथ सम्भोग कर सके उन औषधियों को वाजीकरण कहते हैं। वाजीकरण औषधियां शरीर के ओज को अत्यन्त बढाती हैं ॥ २ ॥

अथ शुक्रक्षयस्य निदानम्—

शुक्रं तु चिन्ताव्यायामव्याधिभिर्देहकर्षणात्।
क्षयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चातिनिषेवणात् ॥ ३ ॥

अत्यधिक चिन्ता, अनुचित और अधिक व्यायाम तथा नाना प्रकार की व्याधियों से, परिश्रम के अनुकूल खाद्य पेय द्रव्यों के अभाव के कारण शरीर के धीरे २ कृष हो जाने से, अधिक या निरन्तर उपवास करने से तथा रसायन और वाजी करण औषधियों के सेवन किये विना ही अधिक वार स्त्री सम्भोग करने से मनुष्यों का शुक्र (वीर्य्य) नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

अथ वाजीकरणयोगोपदेशे प्रतिज्ञा—

तस्मात्प्रयोगान्वक्ष्यामि दुर्बलानां बलप्रदान्।
सुखोपयोगाद्बालानां भूयश्च बलवर्धनात् ॥ ४ ॥

विषयादिकों के अधिक सेवन करने से मनुष्य बल हीन हो कर अनेक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं इस लिये इस अध्याय में उपर्युक्त कारणों से क्षीण हुए मनुष्यों को बल देने वाले, तथा जिन के सेवन करने से सुख पूर्वक उपभोग करने में मनुष्य समर्थ हो सके तथा बालकों के या युवा और वृद्धों के भी बल को अधिक बढ़ाने वाले ऐसे अनेक योगों का वर्णन किया जायगा ॥ ४ ॥

अथ वाजीकरणप्रयोगे पूर्वकृत्यम्—

शुद्धकायो यथाशक्ति वृष्ययोगान्प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

वाजीकरण योगों के सेवन करने के पूर्व वमन विरेचन आदि पञ्चकर्मों से यथा शक्ति शरीर की शुद्धि कर लेनी चाहिए। शरीर के शुद्ध हो जाने के पश्चात् पाचक शक्ति के अनुकूल वृष्य योगों का प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् योगों की मात्रा इतनी ज्यादा न हो जिस से पाचक शक्ति नष्ट हो कर अग्नि मान्द्यादि रोग प्रगट हो जांय ॥ ५ ॥

अथ कामकलाख्यरसः—

मुषलीकदलीकन्दवाजिगन्धाकसेरुकैः ।
मर्दितं हेमसूताभ्रं मूषास्थं पुटपाचितम् ॥ ६ ॥
शाल्मलीचूर्णसंयुक्तं वासराण्येकविंशतिः ।
भक्षयित्वा चतुर्माषं गव्यं क्षीरं पिबेदनु ॥ ७ ॥
सर्वाङ्गोद्वर्तनं कुर्यात्सयवैः शाल्मलीरसैः ।
अन्वहं मधुराहारः सहस्रं रमते स्त्रियः ॥ ८ ॥

स्वर्णभस्म, रससिन्दूर या पारे की भस्म और अभ्रक की भस्म इन तीनों को समभाग लेकर मुषली, कदली (केल के खम्भ या जड़), असगन्ध और कसेरू इन प्रत्येक द्रव्यों के स्वरस के साथ क्रम से एक२ वार या सात२ वार भावित करके अच्छी तरह घोटकर गोला बना के सुखाकर दृढ मूषा में बन्द करके पुटपाक कर लेना चाहिए। स्वाङ्गशीतल सम्पुट से मूषा को निकाल कर उस में से सिद्ध रस को लेके खरल में महीन पीस कर शीशी में भर देवें। फिर इस रस को १ माशे भर लेकर उस में तीन माशे भर सेमल के मूल (जड़) का चूर्ण अथवा गोंद का चूरा (चूर्ण) मिला मिला कर मक्खन और मिश्री के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से चीनी मिलाया हुआ गाय का मन्दोष्ण दुग्ध पी लेना

चाहिए। रस सेवन करने के पश्चात् अथवा पूर्व ही शौचादि से निवृत्त हो कर सेमल की जड़ के स्वरस या क्वाथ में भींगे हुए यव (जो) के आटे से सारे शरीर पर उद्वर्तन (उबटन या मालिश) करना चाहिए। प्रतिदिन बुभुक्षा लगने पर घृत दुग्ध शर्करा आदि मधुर पदार्थों के साथ भोजन करना चाहिए। इस विधि से प्रतिदिन इस रस को सेवन करने वाला पुरुष सहस्र अर्थात् अनेक स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है ॥ ६-८ ॥

विमर्शः—रसरत्नाकर में इस रस का वर्णन इस प्रकार है, यथा—

मृतसुताभ्रकं स्वर्णं वाजिगन्धामृतारसैः।
मुषलीकदलीकन्दद्रवैस्तं मर्दयेद्दिनम् ॥
रुद्ध्वा लघ्वग्निनापच्यात् मर्द्यं पूर्वोक्तकैर्द्रवः।
पुटं देयं पुनर्मर्द्यमेवमष्टपुटः पचेत् ॥
शाल्मलि जातनिर्यासैश्चतुर्माषञ्च भक्षयेत्।
गोक्षीरैर्मर्कटीबीजैः पलार्द्धं पाययेदनु ॥
रसः कामकलाख्योऽयं रमते स्त्री सहस्रधा।
सर्वाङ्गोद्वर्तनं कुर्यात् सयवैःशाल्मलीरसैः ॥ इति।

अथ कामदेवरसः—

हेमपादयुतः सूतो मर्दितः शाल्मलीरसैः।
कदलीकन्दनिर्यासे क्षीरेक्षुरसगोघृते ॥ ९ ॥
माद्विके चासकृत्स्विन्नः शाल्मलीक्षीरगोक्षुरैः।
शर्करामलकद्राक्षामुशलीमाषमाक्षिकैः ॥ १० ॥
युक्तो रम्भाफलं दत्त्वा कामदेव इति स्मृतः।
सेवनादूर्ध्वलिङ्गः स्याद्द्रावयेद्वनिताशतम् ॥ ११ ॥

स्वर्ण की भस्म या स्वर्ण के कण्टकवेधी पत्र (वर्क) १ भाग तथा शुद्धपारद या रससिन्दूर चार भाग लेकर दोनों को पत्थर की खरल में सेमल की जड़ के स्वरस के साथ दिन भर खरल करें। यदि स्वर्णपत्र और शुद्धपारद लेवें तब प्रथम पारद और स्वर्णपत्र को दिन भर घोटें जिस से समग्रपारद स्वर्ण के पत्रों पर चढ जाय अर्थात् दोनों एक हो जांय। फिर दूसरे दिन सेमल की जड़ के स्वरस से घोटें। फिर इनका गोला बनाकर दोलायन्त्र की विधि से कपड़े में बांध कर केले के कन्द के स्वरस में एक प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। इसी तरह

गाय के दुग्ध, ऊख के स्वरस और गाय के घृत तथा शहद् के साथ पृथक् २ तीन २ प्रहर तक स्वेदन करना चाहिए। स्वेदन हो जाने पर पोट्टलो में से गोले को निकाल कर खरल में अच्छी तरह घोट कर महीन चूर्ण कर के शीशी में भर देवें। फिर इस रस को १ या दो रत्ती भर लेकर सेमल ली जड़ के चूर्ण या गोंद, दुग्ध, गोक्षुर (गोखरू) के चूर्ण, चीनी, आंवलों के चूर्ण, द्राक्षा, मुशलीकन्द का चूर्ण, उड़दी का चूर्ण और शहद् इनके साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए तथा बाद में केले के पके हुए फलों को खावें। इस तरह इस रस के सेवन करने से मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर तथा बलशाली हो जाता है। तथा उसको जननेन्द्रिय सर्वदा सम्भोग करने के लिये तैय्यार रहती है। इस रस के सेवन के प्रभाव से मनुष्य सैकड़ों स्त्रियों को द्रवित कर सकता है ॥ ९-११ ॥

विमर्शः—१ कदली कन्द आदि के निर्यास में असकृत् स्वेदन करना चाहिए अर्थात् प्रत्येक द्रव पदार्थ के साथ सात२ वार स्वेदन करें। प्रत्येक स्वेदन के लिये एक २ प्रहर पर्याप्त है। कुछ सम्प्रदायों में कदली कन्द निर्यास से माक्षिकान्त द्रव्यों को मिलाकर सात वार स्वेदन करने की प्रथा है तथा कहीं२ पृथक् २ स्वेदन भी करते हैं। शाल्मलीक्षीर गोक्षुर से लेकर माक्षिकान्त द्रव्य अनुपान के लिये है अतः इनमें से जितने की इच्छा हो उतने ही ले लेवें या सबको समभाग लेकर खरल में एकत्र करके घोटकर शुष्क चूर्ण बना के शीशी में भर देवें। फिर इस चूर्ण और उपर्युक्त सिद्धरस को उचित मात्रा से लेकर मक्खन मिश्री आदि के साथ सेवन करें तथा ऊपर से केले के फल खाकर दुग्ध का पान करना चाहिए। इस रस के सेवन करने से ध्वजभङ्ग रोग नहीं होता है तथा अधिक समय तक स्त्री सम्भोग कर सकता है।

अथ मदनसुन्दररसः—

गन्धकेन रसः पिष्टः कल्हाररसमर्दितः।
विपक्को वालुकायन्त्रे वृष्यो मदनसुन्दरः ॥ १२ ॥

शुद्धगन्धक और शुद्धपारद दोनों को समभाग लेकर पत्थर की खरल में घोट कर उत्तम कज्जली बना लेनी चाहिए। फिर लाल कमल के पत्तों या पुष्पों के स्वरस से सात दिन तक घोटकर मूषा में बन्द करके या रस सिन्दूर निर्माण की विधि से बालुका यन्त्र में पका लेवें। स्वाङ्गशीतल होने पर इस रस को खरल में पीस कर शीशी में भर देवें। यह रस अत्यन्त वृष्य है। इसे मदनसुन्दर रस कहते हैं ॥ १२ ॥

विमर्शः—रसेन्द्रसार संग्रह में इस रस को अनङ्गसुन्दर रस के नाम से लिखा है तथा तीन दिन तक लाल कमल के पुष्प या पत्र के स्वरस से घोटकर बालुका यन्त्र में एक प्रहर तक पाक करके फिर घोट कर लाल अगस्त्य और श्वेत कमल पत्र के स्वरस से क्रम से एक २ दिन तक खरल करके सिद्ध करने की विधि लिखी गई है।

यथा—शुद्धसूतं समं गन्धं त्र्यहं कल्हारकद्रवैः।
मर्दितं बालुकायन्त्रे यामं सम्पुटके पचेत्॥
रक्तागस्त्यद्रवैर्भाव्यं दिनैकन्तु सिताम्बुजैः।
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत् कामिनीशतम्॥ इति।

भैषज्य रत्नावली में इस रस को कामिनी मन्दभञ्जन रस लिखा है। तथा रक्तवर्ग की औषधियों से भावनाएं देकर पाक करने का उपदेश है। जितनी ही औषधियों के स्वरस से भावनाएं दी जावेंगी उतने ही अधिक गुण उत्पन्न होंगे।

अथ पूर्णचन्द्ररसः—

कामदेव इह सोच्चटारसो रक्तपुष्पमुनिसारभावितः।
पूर्णचन्द्र इति विश्रुतो रसः प्राणिनां चरमधातुपूरकः॥ १३॥
रहस्यं कुसुमास्त्रस्य शृङ्गारस्याऽधिदैवतम्।
कार्मणं सुदृशामूचे रसत्रयमिदं हरः॥ १४॥

उपर्युक्त विधि से सिद्ध हुए कामदेव रस को खरल में डाल कर गुञ्जा (घुंघची) की जड़ और लाल पुष्प वाले अगस्त्यवृक्ष के पत्तों के स्वरस के साथ क्रम से एक २ दिन खरल करके सुखा कर शीशी में भर देवें। इस प्रकार यह पूर्णचन्द्र इस नाम से प्रसिद्ध रस तैय्यार होता है। यह रस मनुष्यों की अन्तिम धातु अर्थात् शुक्र (वीर्य) को बढ़ाता है। श्री शङ्कर भगवान ने इस रसत्रय (कामदेव, मदनसुन्दर और पूर्णचन्द्र) को कामदेव का रहस्य अर्थात् घनिष्ठ मित्र या गोप्य अस्त्र, शृङ्गार का अधिष्ठातृदेव तथा सुन्दरनयनवाली स्त्रियों को वश में करने वाला एक तरह का शस्त्र बताया है॥ १३-१४॥

अथ मदनमुन्मद्रसः—

मासार्धमात्रं हरजं विमर्द्य रसेन मोचस्य रसेन तेन।
त्रिःसप्तसंख्यानि दिनानि गन्धन्तत्सम्मितं गोघृतमध्यपक्वम्॥१५॥
विभाव्य तेनैव विशोष्य युञ्ज्यात्काचस्थयोर्नागलतादलेन।
तयोर्विमर्द्याथ निषेव्य दुग्धं पिबेन्निशायां कदलीफलं तत्॥ १६॥

मदनं मदयन्मदमुज्ज्वलयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन् ।
सुरतैः सुखदैर्गतविच्यवनैर्भवसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ १७ ॥

शुद्धपारद या हिङ्गुलोत्थ पारद को पत्थर की खरल में सेमल की जड़ के स्वरस के साथ आधे मास (१५ दिन) तक खरल करें। इसी तरह दूसरी खरल में पारद के बराबर साधारणरीति से शुद्ध किये हुए गन्धक को सेमल ही की जड़ के स्वरस से २१ दिन तक खरल करें। फिर उस गन्धक को पारद के साथ मिला कर गोला बना के अपने बराबर गाय के घृत में पकावें। दो प्रहर तक पकाने के पश्चात् पारद और गन्धक के गोले को घृत में से निकाल कर खरल में चूर्ण करके सेमल ही के स्वरस से सात वार भावित कर के सुखा कर काच के पात्र में भर देवें। फिर नागरवेल के पान के स्वरस के साथ इस रस को यथोचित मात्रा से काच ही की खरल में घोट कर रात्रि के समय सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से चीनी मिलाया हुआ दुग्ध पीना चाहिए। दुग्ध सेवन करने के बाद केले के फल भी खाने चाहिए। इस तरह प्रति दिन सेवन करने से कामदेव (सम्भोग शक्ति) को उत्तेजित करता हुआ, हर्ष को बढ़ाता हुआ, कामिनी स्त्रियों के झुण्ड (समूह) को शुक्र का च्यवन (स्राव) शीघ्र न होने के कारण सुख देने वाले सम्भोगरूपी युद्ध से विह्वल करता हुआ यह रस संसार में सारभूत (कामिनीस्त्रीरूप) वस्तु को चाहने वाले पुरुषों का अद्वितीय सखा है ॥१५-१७॥

विमर्शः—यही रस रत्नाकर में पूर्णेन्दुरस के नाम से ख्यात है। उस ग्रन्थ में इस रस के बनाने का निम्न प्रकार है।

शाल्मलोत्थद्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् ।
पृथक् खल्ले त्रिसप्ताहं तद्द्रवैर्मर्द्य गन्धकम् ॥
एकीकृत्य घृतैः सार्द्धं मर्दयेत्तच्च गोलकम् ।
यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रे बद्ध्वा तु पाचयेत् ॥
दिनकं शाल्मलीद्रावैः पिण्डं यामद्वयं पचेत् ।
मर्दयित्वा पुनः पिण्डं नागवल्ल्या च वेष्टयेत् ॥
निक्षिप्य काचकूप्याञ्च द्रवं दत्वा तु शाल्मलम् ।
मलैकपरिमाणन्तु पचेद्यामद्वयं ततः ॥
वालुकायन्त्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ।
द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीद्रवान्तरे ॥

मुषल्यीं ससितां क्षीरैः पलैकां पाययेदनु ।
रसः पूर्णेन्दुनामायं सम्यग्वीर्य्यकरो भवेत् ॥
कामिनीनां सहस्रं नरः कामयते ध्रुवम् ॥ इति ।

इस रस को इसी पाठ के अनुसार बना कर सेवन करने से वृष्य शक्ति बढ़ती है ।

अथ कुसुमायुधः—

सूतस्य द्विपलं चतुष्पलमितो गन्धो मृतं काञ्चनं
पादन्यूनपलं सुवर्णत्रिमलाताप्यं रसेनोन्मितम् ।
लोहं कान्तमलस्तथाऽसितघनं कर्षोन्मितावेकशो
हन्तव्यं दरदेन लोहमखिलं चूर्णं ततो मर्दितम् ॥ १८ ॥
मूषायां विगतावृतौ सिकतया यन्त्रे कृते स्थापयेद्
ब्राह्मीवारि दिनं निधेहि तदनु प्रत्येकमेकाह्नग्रहम् ।
वासाकुञ्जरशुण्ठिकात्रिकटुकं मेषी च निर्गुण्डिका
तालिकुञ्जरशुण्डिकाहुतवहस्तोयानि दत्त्वा पचेत् ॥ १६ ॥
ततस्तं निखिलाम्भोभिर्विमर्द्य पुटयेल्लघु ।
निर्यासैः शाल्मलैर्ग्राह्यो वल्लत्रयमितो रसः ॥
वलीपलितनाशार्थं त्रिमासं मधुराशनः ॥ २० ॥
सुरतेषु सुलोचना शतैर्गतवीर्यच्यवनैर्मनो यदि ।
तदमुं रसमाश्रयाऽऽश्रयं कुसुमास्त्रस्य चिराय धन्विनः ॥ २१ ॥
यदि सन्ति सहस्रशः स्त्रियश्चतुराश्लेषमनोहराः प्रसन्नाः ।
सुकवेरिव गुम्फना गिरां सुरसोऽनेन युवा रसेन भूयात् ॥२२॥

शुद्धपारद २ पल, शुद्धगन्धक ४ पल, चोथाई से कम १ पल अर्थात् तीन कर्ष भर स्वर्णभस्म तथा स्वर्णगैरिक २ पल, रौप्यमाक्षीक की भस्म २ पल, लौहभस्म २ कर्ष, कान्तमल अर्थात् कान्तलौह के किट्ट (मण्डूर) की भस्म २ कर्ष, असितघन अर्थात् कृष्णाभ्रक की भस्म २ कर्ष लेवें । इन में से जो लोह हैं अर्थात् जिनका पाठ सप्तलोह में आता है जैसे स्वर्ण और लौह इन्हें हिङ्गुल के साथ घोट कर कुमारी के स्वरस से भावित करके पुट देवें । इस तरह सात पुट दे कर दोनों को पृथक् भस्म बना लेनी चाहिए । फिर यथोक्त प्रमाण के अनुसार दोनों की भस्म इस योग में ग्रहण करें ।

फिर सब द्रव्यों को एकत्र खरल में घोट कर चूर्ण को एक दृढ मूषा में भर के मूषा को भाण्ड में भरी हुई वालुका (यन्त्र) में गाड देवें। मुषा का मुख खुला हुआ तथा बालुका से अनावृत (अनाच्छादित) रखना चाहिए। फिर इस बालुकायन्त्र को चूल्हे या भट्टी पर चढा कर मन्द २ अग्नि से पाक प्रारम्भ करना चाहिए तथा मूषा में ब्राह्मी का थोड़ा २ स्वरस डालते रहना चाहिए। इस तरह थोडी २ देर में ब्राह्मी का स्वरस डाल २ कर कलच्छी की डण्डी से धीरे २ चलाते रहना चाहिए। प्रथम दिन ब्राह्मी के स्वरस से उपर्युक्त विधि से पाक करना चाहिए। दूसरे दिन से अडूसा (वासा), कुञ्जरशुण्ठी अर्थात् हस्त्यालु (हस्ति कन्द), त्रिकटु, मेढासीङ्गी, निर्गुण्डी, तालमूली, कुञ्जरशुण्डी अर्थात् हाथीशुंडा या गजपीपल और हुतवह अर्थात् चित्रक इन ओषधियों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ क्रम से तीन २ दिन रात तक पाक करना चाहिए। इस प्रकार निर्विघ्न पाक होने के पश्चात् बालुकायन्त्र में की मूषा में से सिद्धरस को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के उपर्युक्त सब द्रव्यों के मिलित क्वाथ या स्वरस से सात वार भावित करके सात दिन तक खरल करें। अथवा उपर्युक्त द्रव्यों में से प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ के साथ एक २ दिन तक खरल करके लघुपुट के द्वारा पकाकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर देवें। इस प्रकार से सिद्ध हुए इस रस को ३ वल्ल (९ रत्ती) भर लेकर सेमल के गोंद के चूर्ण के साथ मिला कर सेवन करें तथा ऊपर से दुग्धपान करें। इस तरह तीन मास तक इस रस के सेवन करते रहने से वलीपलितरोग नष्ट हो जाता है। इस रस के सेवन करते समय घृत, दुग्ध चीनी आदि मधुरपदार्थों के साथ भोजन करना चाहिए। यदि सुन्दर२ नयन वाली सैकड़ों स्त्रियों के साथ सुरतकाल में चिरकाल तक अस्खलित वीर्य्य हो कर सम्भोग करने की इच्छा जिस पुरुष को हो उसे चाहिए कि पुष्पों के शस्त्र वाले कामदेव के आश्रयभूत (मित्रभूत) इस रस का आश्रय करें। कमल के समान प्रसन्न मुख वाली सम्भोग तथा आलिङ्गन करने में अत्यन्त निपुण तथा अपने अङ्गलावण्य से युवकों के मनको आकर्षित (हरण) करने वाली सैकडों स्त्रियें भी यदि हों तो उनके साथ निरन्तर आनन्द पूर्वक सम्भोग करने वाला पुरुष इस रस को सेवन के प्रभाव से अच्छे कवि (आशु कवि) की अक्षीण काव्य कल्पना की तरह कदापि क्षीण नहीं होता

है। अर्थात् इतनी स्त्रियों के साथ रमण करने पर भी इस रस को सेवन करने वाले पुरुष का शरीर हृष्ट पुष्ट ही बना रहता है जिस तरह आशु कवि अनेक कविताओं की रचना को करने पर भी वारवार नई कविताऐं करता ही जाता है॥ १८-२२॥

अथ सूतेन्द्ररसः—

मुक्ताफलं प्रवालं च सुवर्णं रौप्यमेव च।
रसं गन्धश्च तत्सर्वं तोलैकैकं प्रकल्पयेत्॥ २३॥
रक्तोत्पलैः पत्ररसैर्मर्दयेत्प त्तलीकृते।
मर्दयेत्तत्पुनर्दत्त्वा गन्धं माषचतुष्टयम्॥ २४॥
तन्मध्ये गन्धकं दत्त्वा मर्दयेत्तदनन्तरम्।
भीदया काचघटीमध्ये सन्निरुध्य प्रयत्नतः॥ २५॥
बालुकायन्त्रमध्यस्थां कृत्वा काचघटीं ततः।
पाकस्तत्र तथा कार्यो भवेद्यामत्रयं यथा॥ २६॥
काचपात्रं समाकर्षेत्सिद्धं सूतं ततः परम्।
भक्षयेद्रक्तिकाः पञ्च रोगैराक्रान्त पुद्गलः॥ २७॥
भोजनं पूर्वरोगोक्तं यत्नतः कारयेद्भिषक्।
दुर्बलं वपुरत्यर्थं बलयुक्तं करोत्यसौ॥ २८॥
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्गं च नाशयेत्।
मासेनैकेन सूतेन्द्रो रोगनाशाय कल्पते॥ २९॥
शालयो मुद्गयुक्ताश्च गोधूमा भोजने हिताः।
घृतं गव्यं तथा क्षीरं स्निग्धं पथ्यं प्रयोजयेत्॥
पारावतस्य मांसं च तित्तिरेर्लावकस्य च॥ ३०॥

मोती की भस्म १ तोला, प्रवाल की भस्म १ तो०, सुवर्ण की भस्म १ तो०, चांदी की भस्म १ तो०, शुद्धपारद १ तो० और शुद्धगन्धक १ तो० ले कर प्रथम पारद और गन्धक की कज्जली बना कर उसमें शेष द्रव्य मिला के दिन भर घोटकर महीन कर लेवें। दूसरे दिन इस चूर्ण को लाल कमल के पत्र के स्वरस के साथ दिन भर घोटना चाहिए या पत्तल के समान चौड़ी पिष्टी बनने तक घोटना चाहिए। फिर तीसरे दिन ४ माशे भर गन्धक डाल कर रक्त कमल

के पत्र के स्वरस से दिनभर घोटें। चौथे दिन फिर उतनाही शुद्ध गन्धक मिला कर रक्तोत्पल के पत्र स्वरस से दिन भर घोटकर शुष्क चूर्ण बना लेवें। इस चूर्ण को सातवार कपड़मिट्टी कर के सुखाई हुई काचकूपी (आतसी शीशी) में भर दें तथा काचकूपी को भाण्ड में भरी हुई बालुका में गले पर्यन्त रख (गाड) कर बालुकापूर्ण भाण्ड (बालुकायन्त्र) को चूल्हे या भट्टी पर चढा कर तीन प्रहर तक मन्द, मध्य और तीव्र अग्नि जला कर पाक कर लेना चाहिए। पाक करते समय कूपी के मुख से गन्धक के जारण का धूआं निकलना बन्द हो जाय तब कूपिका के मुख में इंट का डांट लगाकर गुड और चूने की बनाई हुई पिष्टि से मुख को बन्द कर देना चाहिए। ठीक पाक हो जाने पर भट्टी से स्वाङ्गशीतल यन्त्र को उतार कर उसमें की कूपी निकाल के युक्ति से भेदन कर के सिद्ध रस को निकाल लेवें। इस रस को ५ रत्ती भर लेकर यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ सेवन करना चाहिए तथा वाजीकरण के लिये असगन्ध के चूर्ण, घृत या मक्खन और मिश्री के साथ सेवन करना चाहिए तथा ऊपर से दुग्ध पीना चाहिए। इसके सेवन करते समय रोगी का पूर्व रोगों में कहे हुए भोज्य पदार्थों का सेवन कराना चाहिए। अथवा वृष्य के लिये सेवन करते समय पूर्वयोगोक्त भोजन करना चाहिए अर्थात् पूर्णचन्द्रादिक रसों के सेवन में बताये हुए घृत, दुग्ध, शर्करा आदि मधुर स्निग्ध द्रव्यों के साथ भोजन कराना चाहिए। यह रस निरन्तर सेवन करने से दुर्बल शरीर को सबल (पुष्ट) बना देता है तथा शुक्र को बढ़ाता है, ध्वजभङ्ग (लिङ्ग की शिथिलता तथा टेढ़ा पन) को नष्ट करता है। प्रायः एक मास तक सेवन करने से यह सूतेन्द्र रस सर्व रोगों को नष्ट कर देता है। इस रस के सेवन करते समय सांठी चांवल, मूंग की दाल, गेहूं के चूर्ण से बनी रोटी, मालपूए आदि खाद्य पदार्थ, गाय का घृत, दुग्ध तथा अन्य स्निग्ध पदार्थों का उपयोग करना चाहिए तथा कबूतर, तितिर और लावा के मांस तथा मांस रस का सेवन अत्यन्त हित कर हैं ॥ २३-३० ॥

अथ मदनकामदेवरसः—

गोलं गन्धकसूतयोस्त्रिकटुकक्वाथेन बध्वाऽथभू-
कुष्माण्डान्तरवस्थितं विपिहितं तेनैव लिप्त्वोपरि।
माषैर्व्यङ्गलमाज्यपक्वमथ तत्कूष्माण्डमध्याद्धरेत्-

तच्चूर्णे पलसम्मिते सुरकृताचूर्णस्य मुष्टिद्वयम् ॥ ३१ ॥
जया शतावरी कृष्णा कपिकच्छूफलं तिलाः ।
प्रत्येकं पलसम्माना यवाः पञ्चपलोन्मिताः ॥ ३२ ॥
तावन्मोचफलं द्वे च यष्टी मुष्टिद्वयं शुभा ।
निक्षिप्य सप्त सप्ताऽत्र भावनाः क्रमशश्चरेत् ॥ ३३ ॥
महाबलाबलानागबलाभिर्द्राक्षयाऽपि च ।
कृष्णाधात्रीक्षुभिश्चापि दन्तपात्रे निवेश्य च ॥ ३४ ॥
मत्स्यण्डिकायुतं वल्लद्वयमानं भजेन्निशि ।
अनुपानमिह प्रोक्तं धारोष्णं सुरभेः पयः ॥ ३५ ॥
दोषमार्तवजं हत्वा कुर्याद्वीर्यप्रवर्धनम् ।
ध्वजोत्साहं तथा स्त्रीषु वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ३६ ॥
अलं मलयवायुना कुमुदबान्धवेनाप्यलं
मधुव्रतसुखायिनः कलितपञ्चमाः के पिकाः ।
अतो भज विशङ्कितं रतिसरोजिनीभास्करं
मनोजपरिदैवतं मदनकामदेवं रसम् ॥ ३७ ॥

शुद्धगन्धक और शुद्धपारद दोनों को सम भाग लेकर पत्थर की खरल में कज्जली बना के त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल) के क्वाथ के साथ दिन भर घोट कर गोला बना कर सुखा लेना चाहिए। इस गोले को भूमि कुष्माण्ड अर्थात् विदारीकन्द या यह न मिले तो सफेद कोहड़े के मध्य में गड्ढा बना कर उसमें रख देवें तथा उसी कोहडे के गढे के लिये काटकर निकाले हुए भाग (टुकड़े) से छिद्र को ढककर सन्धियों को उड़द के आटे की पिष्टी से ल्हेस कर बन्द कर देवें। तथा माषपिष्टी ही से दो २ अङ्गुल मोटा लेप करके कड़ाही में पर्याप्त घृत डालकर चूल्हे पर चढ़ा के मन्द २ अग्नि देकर घृत में गोले को पकाना चाहिए। जब पकते पकते गोला लाल हो जाय तब घृत में से निकालकर स्वाङ्गशीतल हो जाने के पश्चात् सन्धि का खोल कर खात में से सिद्ध हुए गोले को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर लेना चाहिए। इस तरह इस सिद्ध रस के एक पल भर चूर्ण में २ पल भर तुलसी के पञ्चाङ्ग का चूर्ण या गुडूची का चूर्ण तथा शुद्ध भांग या जयन्ती की जड़ का चूर्ण १ पल, शतावर का

चूर्ण १ पल, पिप्पली का चूर्ण १ पल, कौंच के शुद्ध बीजों का चूर्ण १ पल और तिलों का चूर्ण १ पल तथा यव (इन्द्र यव अथवा जौ) का चूर्ण ५ पल, केले के पके हुए फल का शुष्क चूर्ण ५ पल या सेमलके गोंद या छाल का चूर्ण ५ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल तथा शुभा अर्थात् वंशलोचन का महीन चूर्ण २ पल भर मिला कर दिन भर बड़ी खरल में सब एकत्र पीस लेवें। फिर महाबला (सहदेवी), बला (बरियार या खरैंटा), नागबला (गंगेरन), दाख, पिप्पली, आंवले और ऊख इनके स्वरस या क्वाथ से क्रम से अलग २ अर्थात् प्रत्येक द्रव्य के स्वरस की सात२ भावनाएं देकर अच्छी प्रकार घोट के शुष्क चूर्ण बनाकर हाथी के दांत के पात्र में या काचपात्र में रख देवें। इस रस को दो वल्ल (६ रत्ती) भर लेकर मत्स्यण्डिका अर्थात् शर्करा में मिला के खावें तथा ऊपर से गाय का धारोष्ण दुग्ध पीवें। यह रस यथाविधि प्रतिदिन सेवन करते रहने से स्त्रियों के दुष्टार्त्तव से उत्पन्न हुए समस्त रोगों को नष्ट करके उन के वीर्य्य अर्थात् प्राणशक्ति को बढाता है तथा पुरुषों के ध्वजभङ्ग रोग को विनष्ट करके सम्भोग के समय इन्द्रिय के उत्साह को उत्पन्न करता है तथा यह रस अत्यन्त उत्तम वाजीकरण है। मलयागिरी पर्वत की परम सुगन्ध युक्त वायु तथा शरद् ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की किरणों का सेवन से कोई प्रयोजन नहीं तथा भौंरों के मधुर सङ्गीत और कोकिलाओं के पञ्चम स्वर वाले गायन से भी कोई विशेष लाभ नहीं है इसलिये निःशङ्क होकर अन्य सब विषयों को त्याग के सम्भोग (रति) रूपी कमलिनी को विकसित करने वाला (सम्भोगशक्ति के वर्द्धक) तथा कामदेव के अधिष्ठातृदेव ऐसे इस मदनकामदेव नामक रस को निरन्तर सेवन करते रहना चाहिए ॥ ३१-३७ ॥

अथ कामधेनुरसः—

हेमाभ्रसत्त्वकान्ताऽर्काः प्रत्येकं पलमात्रकाः ।
एकत्र द्राविताः सर्वे कर्षभूनागसत्त्वकाः ॥ ३८ ॥
पलविंशतिसूतेन तैश्च पिष्टिं प्रकल्पयेत् ।
शतधा पातयेत्सूतं पिष्टिं कृत्वा पुनश्च तैः ॥ ३९ ॥
शिष्टं द्विपलिकं सूतं सन्यासाद्भस्मतां नयेत् ।
भस्मीभूते रसे तस्मिन्उच्छिष्टे चैकपले ततः ॥ ४० ॥

वज्रं निष्कमितं चाभ्रसत्त्वं षट्पलिकं क्षिपेत्।
द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्विदिनं मर्दयेत्ततः ॥ ४१ ॥
तत्सर्वं लोहजे पात्रे क्षिप्त्वा च मृदुवह्निना।
शाल्मलीमूलजं क्वाथं चत्वारिंशत्पलोन्मितम् ॥ ४२ ॥
जारयेद्रसराजस्य दत्त्वा दत्त्वाऽल्पमल्पकम्।
स्वाङ्गशीतं रसं हृत्वा सुगाढं परिमर्दयेत् ॥ ४३ ॥
नालीपातेन तत्क्वाथं रजोदग्धं प्रदापयेत्।
ततः करण्डके क्षिप्त्वा यत्नेन स्थापयेत्खलु ॥ ४४ ॥
गुञ्जामात्रः स च घृतयुतः सेवितो हन्ति रोगां-
स्तत्तद्दोषप्रभवकुटिलान्दुःखसाध्यान्समस्तान्।
दद्यादीप्तिं जठरशिखिनं स्त्रीशतं सेवयेत्त-
स्थैर्यं कुर्यादपि च वपुषो नामतः कामधेनुः ॥ ४५ ॥

स्वर्णभस्म १ पल, अभ्रकसत्त्वभस्म १ पल, कान्तलोहभस्म १ पल तथा ताम्रभस्म १ पल और भूनाग (अर्थ वार्म=कैंचुआ) का सत्त्व १ कर्ष भर लेकर सब को एक दृढ मूषा में भर के अग्नि में रख कर द्रवित करें। ठीक रूप से द्रवित हुए इन द्रव्यों को मूषा से निकाल कर पत्थर की खरल में रखे हुए २० पल भर शुद्ध पारद के साथ तीन दिन तक घोट कर पिष्टी बना लेनी चाहिए। इस पिष्टी को डमरूयन्त्र या तिर्यक पातन यन्त्र में रख कर यथाविधि अग्नि दे के समस्त पारे को उड़ा (उर्द्ध्वपतित कर) लेवें। फिर इस उड़े हुए पारद को यथापूर्व प्रमाणगृहीत हेमादि द्रव्यों की द्रुति के साथ घोट कर पिष्टी बनाकर डमरूयन्त्रादि की विधि से पारद को उड़ालेवें। इस तरह सौवार पारे को उक्त द्रव्यों की द्रुति के साथ घोट २ कर उडाना चाहिए। इस तरह सौ बार उड़ाने से केवल दो पल भर पारद रह जाता है। इस पारद की अष्टमाध्याय में कही हुई सन्यास क्रिया के अनुसार भस्म बनानी चाहिए। इस विधि से २ पल भर पारद की १ पल भर भस्म तैय्यार होती है। इस १ पल भर पारदभस्म में १ निष्क (४ मा०) भर हीरे की भस्म, अभ्रक सत्त्व की भस्म ६ पल और २ पल भर शुद्ध गन्धक मिला कर दो दिन तक निरन्तर खरल करें। फिर इस चूर्ण को लोहे की कड़ाही में या नलिकाकार वाली लोहे की मूषा में डाल कर चूल्हे पर चढा के

मन्द २ अग्नि जलानी चाहिए तथा सेमल की जड़ का स्वरस या क्वाथ नाली के मार्ग से थोड़ा २ डाल कर कलच्छी स चलाते रहना चाहिए, तथा उस क्वाथ के दग्ध हो जाने पर फिर दूसरी बार क्वाथ डालें। इस तरह ४० पल भर सेमल की जड़ के क्वाथ को धीरे २ थोड़ा २ डाल कर जारण करना चाहिए। तदनन्तर स्वाङ्ग शीतल सिद्ध रस को कडाही या मूषा में से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के वस्त्र से छान कर काच की शीशी में भर के डाट (ढक्कन) लगा कर सुरक्षित स्थान में रख देवें। यह रस एक रत्ती भर लेकर घृत के साथ अथवा यथादोषहर या यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ निरन्तर सेवन करते रहने से भिन्न २ या सामूहिक दोषों की विकृति से उत्पन्न हुए सर्व प्रकार के असाध्य या दुःख साध्य रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस जठराग्नि को दीप्त करता है तथा इस रस के सेवन करने से पुरुष सैकड़ों स्त्रियों के साथ सम्भोग कर सकता है। यह रस प्रतिदिन वृष्य अनुपानों के साथ सेवन करते रहने से शरीर को स्थिर अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रहने योग्य कर देता है। विद्वान् लोगों ने इस को काम धेनु रस कहा है ॥ ३८–४५ ॥

अथ महाभ्रसत्त्वम्—

कृष्णाभ्रकस्य धान्याभ्रं कृत्वा भृङ्गाम्बुनि क्षिपेत्।
तस्मिंश्च तुत्थकं देयं सूक्ष्मं ताप्यभवं रजः ॥ ४६ ॥
टङ्कणं चाग्निना भृष्टं तावदेव विनिक्षिपेत्।
छागास्थिसम्भवं चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
रसभस्माष्टमांशं च गुडगुञ्जापुरस्तथा।
पञ्चाजेन विनिष्पिष्य गोलीकृत्य विशोष्य च ॥ ४८ ॥
ततो नूतनभाण्डस्य जलघृष्टेन पाण्डुना।
विलिप्य वटिकाः सर्वा हरेत्सत्त्वं पुरोक्तवत् ॥
महाभ्रसत्त्वमेतत्स्यादेकमप्यखिलार्तिनुत् ॥ ४९ ॥

शुद्ध किये हुए १ पल भर कृष्ण अभ्रक का धान्याभ्रक संस्कार करके भृङ्गराज के स्वरस में डाल कर रात भर के लिये रख देवें। फिर उसमें १ पल नील तुत्थ, १ पल स्वर्णमाक्षिक भस्म और अग्नि में भूना हुआ सुहागा १ पल ये तीनों मिलाकर घोटें तथा अभ्रक का चोथाई बकरे की हड्डी का चूर्ण एवं पारद की भस्म

या रससिन्दूर, पुराना गुड, शुद्ध गुञ्जा का चूर्ण और शुद्ध गूगल ये प्रत्येक अभ्रक से अष्टमांश डालकर बकरे के दुग्ध, दही, घृत, मूत्र और विष्ठा (मींगनी) के रस से घोट कर गोलियां बना के सुखा लेवें। फिर इन गोलियों को नये मिटी के भाण्ड को जल के सङ्ग घिसने से उत्पन्न हुए कीचड या कल्क से पोत कर सुखा के पूर्व में कही हुई विधि के अनुसार अभ्रक सत्त्व निकाल लेना चाहिए। यह महाभ्रक सत्त्व अनुपान भेद से अनेक व्याधियों से उत्पन्न हुई पीडाओं को दूर करता है ॥ ४६-४९ ॥

अथ उमापतिरसः—

त्रिफलाक्वथितैः सार्धं पुटितं च शतावधि।
इत्थं महाभ्रसत्त्वं तन्मृतं शाणचतुष्टयम् ॥ ५० ॥
एकशाणमितं सम्यग्रसराजस्य भस्म च।
एकशाणमितं गन्धं त्रिफला च त्रिशाणिका ॥ ५१ ॥
कान्तपात्रे क्षिपेदेतत्सर्वं घृतसितायुतम्।
मर्दयेदतियत्नेन यावत्स्यात्प्रहराष्टकम् ॥
तत्कल्कं निक्षिपेत्कन्तलोहजातकरण्डके ॥ ५२ ॥
संसिद्धोऽयमुमापतिर्वररसो गुञ्जामितः सेवितो
मासेनैव महामयान्प्रशमयेत्पथ्यादियुक्तिं विना।
नित्यं क्षीरघृताशनेन च पुनः संसेवितो नाशये-
दब्देनैव जरां वलीपलितकैर्दद्याच्छताब्दं वयः ॥ ५३ ॥
उमापती रसः सोऽयमुमापतिरिवापरः ॥ ५४ ॥

पूर्व में कहा हुआ महाभ्रक सत्त्व लेकर त्रिफला के क्वाथ के साथ दिन भर घोटकर टिकिया बना के। इस तरह त्रिफला के क्वाथ में घोट २ कर १०० पुट देने चाहिएं। सौ पुट देने के पश्चात् उसमें से ४ शाण भर सिद्ध अभ्रकसत्त्व, तथा यथा विधि से की हुई रसराज अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर १ शाण, शुद्ध गन्धक १ शाण तथा त्रिफला का चूर्ण ३ शाण भर लेकर कान्त लौह की खरल में सत्त्व को मिला के गाय के घी और चीनी के साथ आठ प्रहर तक निरन्तर घोटना चाहिए। पश्चात् इस सिद्ध कल्क अर्थात् पिण्ड को कान्त लौह की बनी हुई डिब्बी में बन्द करके रख दें। इस तरह यह उमापति रस

सिद्ध होता है। यह रस एक गुञ्जा (रत्ती) भर पथ्यापथ्य के विचार के बिना भी मास तक सेवन करने से बड़े२ रोगों को नष्ट कर देता है। यह रस एक वर्ष भर दुग्ध और घृत के अनुपान से सेवन करते रहने से वली और पलित रोगों के साथ२ जरा (बुढौति) को नष्ट कर देता है तथा सौ वर्ष की आयु करता है। यह उमापति रस उमापति अर्थात् महादेव के समान ही अपने भक्तों को सुख देता है ॥ ५०–५४ ॥

अथ महाकनकसुन्दररसः—

कान्तकाञ्चनगन्धाश्मजारितं मारितं रसम् ।
चतुर्निष्कमितं चाथ स्वर्णं निष्कमितं मतम् ॥ ५५ ॥
निक्षिप्य कान्तपात्रे तु पञ्चाशन्निष्कसम्मितम् ।
जारयेद्गन्धकं शुद्धगन्धेन वडवाग्निना ॥ ५६ ॥
निष्कतुल्यमिदं चूर्णं श्लक्ष्णीकृत्य प्रयत्नतः ।
निक्षिपेन्मधुसम्पूर्णे घृतसुस्निग्धभाण्डके ॥ ५७ ॥
अमुनैव प्रकारेण पथ्यानां षष्ठिसंयुतम् ।
त्रिशतं साधयेद्यत्नाच्छास्त्रदृष्टविधानतः ॥ ५८ ॥
त्रिधा विभज्य तत्रैकां समादाय हरीतकीम् ।
एकपादं दिनाभ्यां च द्वितीयं दिवसैस्त्रिभिः ॥ ५९ ॥
तृतीयं च ततः पादं चतुर्भिर्दिवसैर्भजेत् ।
एकैकां च ततः पथ्यां भजेदावत्सरं नरः ॥ ६० ॥
जीवेद्वर्षशतं साग्रं वलीपलितवर्जितः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो नित्यं स्त्रीशतसेवकः ॥ ६१ ॥
बलवान्वीर्यवांश्चैव पूर्णसर्वेन्द्रियोदयः ।
जायते नात्र सन्देह आज्ञेयं पारमेश्वरी ॥ ६२ ॥
हन्यादक्षिगदांश्च कुष्ठमखिलं मासान्तमासेवितः
पण्डुं च ग्रहणीं प्रमेहगुदजान्गुल्मांश्च शूलामयान्
स्थूलत्वं च तथा महाग्निसदनं रोगांस्तथैवापरान्
कुर्याद्दीपनपाचनं खलु नृणां भाव्यामयासेधनम् ॥ ६३ ॥
अयं रसायनो दिव्यो महाकनकसुन्दरः ॥ ६४ ॥

कान्त लौहभस्म, स्वर्णभस्म और शुद्ध गन्धक इनके साथ जारण करके मारा हुआ पारद अर्थात् पारद भस्म चार निष्क (१६ माशे) और स्वर्ण भस्म १ निष्क (४ माशे) भर लेकर दोनों को कान्त लौह की मूषा में डाल देवें। फिर उसमें ५० निष्क भर शुद्ध गन्धक लेकर इस में से थोड़ा २ डाल कर तीव्र अग्नि पर जारण करना चाहिए। इस प्रकार से जारण किये हुए रस को १ निष्क भर लेकर ठीक तरह से खरल में महीन करके शहद् से भरे हुए घृत से चिकने हुए मिट्टी के भाण्ड में डाल देवें। फिर ३६० पकी हुई हरड़ें लेकर उन्हें यथाविधि जल में उबाल कर उसी शहद् से भरे पात्र में डाल कर उसके मुख को ढक कर सन्धिबन्धन करके एक मास तक रख दें। एक मास के पश्चात् उस भाण्ड में से १ हरड़ निकाल कर उसके समान २ तीन टुकड़े करके उन में से पहिले दिन और दूसरे दिन तक उस एक टुकड़े को खावें तथा द्वितीय टुकड़े को तीन दिन तक खावें और तीसरे टुकड़े को चार दिन में खाकर समाप्त करें। इस तरह एक हरड़ के तीन टुकड़ों को ९ दिन तक सेवन करने के पश्चात् प्रतिदिन एक २ हरड़ निकाल कर एक वर्ष भर तक सेवन करें। इस तरह इन हरड़ों के यथाविधि सेवन करने से मनुष्य वली-पलित रोग से निर्मुक्त तथा सर्व प्रकार की व्याधियां से रहित हो कर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। इस हरड़ को सेवन करने वाला मनुष्य प्रतिदिन सैकड़ों स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी वलवान्, वीर्य्यवान् और सर्व इन्द्रियों की शक्ति से सम्पन्न रहता है। ऐसी श्री महादेवजी की आज्ञा है। इस रस के गुणों में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। यह रस अर्थात् सिद्ध हरड़ १ मास तक सेवन करने से नेत्रों के विकार, सर्व प्रकार के कुष्ठ, पाण्डु रोग, ग्रहणी, प्रमेह, गुदज अर्थात् बवासीर, गुल्म, शूल, स्थौल्य रोग, अत्यन्त बढ़ी हुई मन्दाग्नि तथा अन्य प्रकार के समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह रस अग्नि को प्रदीप्त कर के पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा मनुष्यों के भविष्य में होने वाले रोगों का निरोध करता है। यह महाकनक सुन्दर रस दिव्य रसायन है ॥ ५५-६४ ॥

अथ अमृतार्णवरसः—

कृत्वा कराटकवेध्यानि पलस्वर्णदलान्यथ।
अष्टांशरसलिप्तानि निक्षिपेदुपले ऽग्रहम् ॥ ६५ ॥

हिङ्गुहिङ्गुलगन्धाश्मताप्यनीलाञ्जनैः समैः ।
कृतं चूर्णमधश्चोर्ध्वं पत्राणां विनिधाय च ॥ ६६ ॥
शतवारं पुटेत्सम्यङ् निरुत्थं भस्म जायते ।
तद्भस्माद्द्विगुणं सूतं तस्माद्द्विगुणहिङ्गुलः ॥ ६७ ॥
तस्माच्च द्विगुणं ताप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत् ।
रसेन मातुलुङ्गस्य निरन्तरदिनद्वयम् ॥ ६८ ॥
तुषैः पुटत्रयं दद्याद्गोकरीषैः पुटत्रयम् ।
पुटानि दश विंशत्या छगणानां प्रकल्पयेत् ॥ ६९ ॥
त्रिंशद्भिश्छगणैर्दद्यात्पुटानामथ विंशतिम् ।
तस्मिन्वैक्रान्तजं भस्म निक्षिपेत्पादमात्रया ॥ ७० ॥
सर्वमेकत्र सञ्चूर्ण्य भृङ्गराजनिजद्रवैः ।
भावयेत्सप्तवाराणि सिद्ध्यत्येवमयं रसः ॥
श्रीमता नन्दिना प्रोक्तो रसोऽयममृतार्णवः ॥ ७१ ॥
गुञ्जाबीजमितः सिताघृतकणासंयोजितः सेवितः
कुर्याद्वृष्यमनेकशो वरवधूसन्तोषसम्पोषणः ।
यक्ष्मव्याधिविधूननो गरहरः पर्याप्तदीप्तानलो
मूलव्याधिनिवारणः किमपरं सर्वामयध्वंसनः ॥ ७२ ॥
रम्भापक्वफलं घृतं दधि पयः क्षैरेयकं मण्डका
बालं तालफलं सिता च पललं सन्तानिका मोदकाः ।
खर्जूरं वरपानकं च वटकाः पुण्ड्रेक्षवः सारसं
गुर्वन्नं पनसन्तथा शिखरिणी पथ्यं रसेऽस्मिन्मतम् ॥७३॥

एक पल भर शुद्ध स्वर्ण लेकर उसके कण्टक वेधी पत्र बनवा कर स्वर्ण से अष्टमांश शुद्ध पारद को पत्थर की खरल में डालकर उसके साथ स्वर्णदलों को अच्छी प्रकार तीन दिन तक घोट लेवें। पश्चात् शुद्ध हींग, शुद्ध हिङ्गुल, शुद्ध गन्धक, शुद्ध स्वर्णमाक्षिक और शुद्ध नीलाञ्जन इन पाञ्चों को समभाग लेकर महीन चूर्ण बना के पारदलिप्त स्वर्णपत्रों के ऊपर और नीचे रखकर सम्पुट में बन्द करके पुट दे देवें। इस तरह उपर्युक्त हींग हिङ्गुलादि चूर्ण के साथ १०० वार पुट देने से स्वर्ण की निरुत्थ भस्म हो जाती है। इस विधि से की हुई स्वर्ण भस्म और भस्म

से द्विगुण शुद्ध पारद, पारद से द्विगुण शुद्ध हिङ्गुल और हिङ्गुल से द्विगुण शुद्ध स्वर्णमाक्षिक भस्म लेकर सबको खरल में डालकर महीन पीस के बिजौरे निम्बू के रस के साथ दो दिन तक निरन्तर मर्दन करके गोला बनाकर सम्पुट में बन्दकर के धान की भूसी के मध्य में सम्पुट को रखकर पुट दे देवें। इस प्रकार निम्बू के रस में घोट २ कर तुषों में सम्पुट को रखकर तीन पुट देने चाहिएं। फिर गौ के उपलों की अग्नि द्वारा तीन पुट तथा बीस जङ्गली उपलों की अग्नि द्वारा १० पुट और ३० जङ्गली उपलों की अग्नि द्वारा २० पुट देकर सिद्ध भस्म ग्रहण करें। प्रत्येक पुट देते समय निम्बू के रस में घोटना जरूरी है। फिर इस भस्म में चौथाई भाग लेकर वैक्रान्त मणि की भस्म मिला कर महीन पीस के भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके घोटकर सुखा लें। इस विधि से यह रस सिद्ध होता है। श्रीमान् नन्दी ने इस अमृतार्णव रस का उपदेश किया है। यह रस १ गुञ्जा भर लेकर शर्करा, घृत और पिप्पली के चूर्ण के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वृष्य गुण करता है, अर्थात् मनुष्य वीर्य से परिपूर्ण हो कर अनेक नवविवाहित स्त्रियों को सन्तुष्ट करता है। यह रस राजयक्ष्मा को नष्ट करता है, गरविष को शरीर से निकालता है, उदर की अग्नि को अत्यन्त दीप्त करता है, मूलव्याधि अर्थात् अर्श को नष्ट करता है, ज्यादा क्या कहा जाय, यह रस यथारोगानुपानपूर्वक सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है। इस रस के सेवन करते समय केले के पके हुए फल, घृत, दही दुग्ध, क्षैरेयक अर्थात् दुग्ध से बना पदार्थ खीर, रबडी आदि तथा (१)मण्डक, ताडके कच्चे फल, चीनी, मांसरस, मलाई, मूङ्ग आदि के लड्डू, पिण्ड खजूर या छुहारा, उत्तम प्रकार के शर्बत, दाल के बड़े, पौण्डे ऊख का रस, सारस पक्षीका मांस, गेहूं आदि गुरु पदार्थ, पनस अर्थात् पका हुआ कटहल

---

(१)मण्डकपरिभाषा—

वारिणा कोमलां कृत्वा समितां साधु मर्दयेत्।
हस्तचालनया तस्या लोप्त्रीं सम्यक् प्रसारयेत्॥
आधोमुखघटस्यैतां विस्तृतां प्रक्षिपेद्बहिः।
मृदुना वह्निना साध्यः सिद्धो मण्डक उच्यते॥
दुग्धेन साज्यखण्डेन मण्डकं भक्षयेन्नरः।
अथवा सिद्धमांसेन सतक्रवटकेन वा

और शिखरिणी अथात् श्रीखण्ड ये सब पदार्थ हितकर हैं ॥ ६५-७३ ॥

अथ मदनसञ्जीवनरसः—

त्रिपलं पारदं शुद्धं गन्धकं च चतुष्पलम् ।
मृतमभ्रकसत्त्वं च स्वर्णं कान्तं च कार्षिकम् ॥ ७४ ॥
द्विपलं हेम विमलं भूनागायाः पलत्रयम् ।
एभिः सर्वैश्च सम्पेष्य प्रकुर्यान्नष्टपिष्टिकाम् ॥ ७५ ॥
वालुकायन्त्रविन्यस्तलोहपात्रे क्षिपेत्ततः ।
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं कारयेत्तदनन्तरम् ॥ ७६ ॥
मण्डूकब्राह्मिकायाश्च मुषल्याश्चित्रकस्य च ।
हस्तिशुण्ड्यास्तथा कृष्ण-निर्गुण्ड्या गोक्षुरस्य च ॥ ७७ ॥
रसं कुडवमानेन क्षिपेत्खल्ले मुहुर्मुहुः ।
तत आकृष्य सम्पिष्य मधुना सह यत्नतः ॥ ७८ ॥
मल्लमूषोदरे क्षिप्त्वा विनिरुध्य विशोष्य च ।
दशभिश्छगणैर्देयं पुटं सम्पूज्य भैरवम्
करण्डे क्षेपयेत्पिष्ट्वा समभ्यर्चितकन्यकः ॥ ७९ ॥
रसः ख्यातो नाम्ना भुवि मदनसञ्जीवन इति
द्विवल्लाभ्यां तुल्यो घृतमधुसितादुग्धसहितः ।
निपीत सप्ताहं प्रचुरमधुराहारसहितो
नरं कुर्यान्नारीशतसुरतसुप्रीतहृदयम् ॥ ८० ॥
हन्यादुन्मादमुग्रं क्षयगदमरुचिं कामलामम्लपित्तं
सर्वान्पित्तोत्थरोगान्रुधिरभवगदान्रक्तपित्तज्वरांश्च ।
रक्तार्शः पित्तगुल्मं सततमतिमहाऽऽनाहमन्तर्विदाहं
पाण्डुं मेहांश्च मोहं प्रदरगदमपि स्त्रीजनस्योग्रमाशु ॥८१॥

शुद्ध पारद ३ पल, शुद्ध गन्धक ४ पल, अभ्रक सत्व १ कर्ष, स्वर्णभस्म १ कर्ष, कान्तलौह भस्म १ कर्ष, हेमविमल अर्थात् स्वर्णमाक्षिक भस्म २ पल, भूनाग (केंचुओं) का सत्व ३ पल इन सब को एक खरल में अच्छी तरह से खरल करके नष्टपिष्ट कर लेवें। फिर इस चूर्ण को नांद में भरी हुई रेत (वालुका) के अन्दर रखी हुई लोहे की कूपिका या खरल में डालकर नांद को तेज अग्नि

वाली भट्टी पर चढा देवें। फिर उस औषध युक्त खरल में मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, मुषली, चित्रक, हस्ति शुण्डी, काली निर्गुण्डी और गोखरू इसका स्वरस या क्वाथ १ कुडव भर लेकर उसमें से वारवार थोड़ा थोड़ा डालते रहें। समस्त औषधियों के रस के डाल चुकने के पश्चात् स्वाङ्ग शीतल लौह पात्र से औषध को निकाल कर खरल में महीन चूर्ण करके मधु के साथ ठीक तरह से घोट लेवें। फिर गोला बनाकर मल्लमूषा में भर कर बन्द करके कपड़ मिट्टी करके सुखा लेवें। पश्चात् श्रीभैरवजी की यथाविधि पूजन करके दश जङ्गली उपलों की अग्नि के द्वारा पुट देकर स्वाङ्गशीतल मूषा को तोड़ कर सि रस को निकाल कर खरल में महीन पीस कर कन्याओं की पूजन करके काच की शीशी में भर देवें। यह रस पृथ्वी में मदनसञ्जीवनी इस नाम से विख्यात हुआ है। यह रस दो वल्ल (दो रत्ती) भर एक सप्ताह तक घृत, शहद, शकरा और दुग्ध के साथ तथा अत्यन्त मधुर भोजन का पथ्य करते हुए सेवन करने से मनुष्य को सैकड़ों युवति स्त्रियों के साथ सम्भोग करने के लिये उत्कण्ठित हृदय वाला कर देता है। यह रस यथाव्याध्यनुपान पूर्वक प्रति दिन सेवन करते रहने से अत्यन्त उग्र उन्माद, क्षयरोग, अरुचि, कामला, अम्लपित्त, सर्व प्रकार की पित्त की व्याधियां, दूषित रक्त से उत्पन्न व्याधियां और रक्तपित्त, ज्वर, रक्तार्श (खूनी बवासीर), पित्तगुल्म, निरन्तर हो रहने वाला आनाह रोग (अफरा), शरीर के भीतर की गरमी, पाण्डु, प्रमेह, मूर्च्छा और स्त्रियों के भयङ्कर प्रदर रोग को समूल नष्ट कर देता है॥ ७४-८१॥

अथ पुष्पधन्वा रसः—

रम्भाकन्दे हेमतारार्कपिष्टीं पक्वा यन्त्रे भूधरे तां पचेत।
गन्धं दत्त्वा षड्गुणार्धं क्रमेण पश्चात्कान्तं तेन तुल्यं क्रमेण॥ ८२॥
दत्त्वा खल्ले शाल्मलीयष्टितोयैः पक्षैकं तन्मर्दयेन्नागवल्याः।
नीरैर्यामं पुष्पधन्वा रसः स्याद् वल्लं दद्यादस्य पूर्वोक्तयुक्त्या॥ ८३॥
पुष्टिं वीर्यं दीपनं सोऽत्र दद्याद्धन्याद्रोगान् रोगयोग्यानुपानैः॥ ८४॥

स्वर्ण भस्म, रजत भस्म और ताम्र भस्म इन तीनों को सम भाग लेकर केले की जड़ के स्वरस में घोट कर पिष्टी बनालें। फिर इस पिष्टी को भूधर यन्त्र की विधि से पका कर स्वाङ्ग शीतल होने पर यन्त्र से निकाल कर खरल में

महीन चूर्ण कर लेवें। फिर उस में षड गुण का आधा अर्थात् त्रिगुण शुद्ध गन्धक मिला कर महीन पीसलें, पश्चात् उस में गन्धक के तुल्य प्रमाण ही कान्त लोह की भस्म मिला कर अत्यन्त महीन पीस के सेमल को जड़ और मुलेठी के क्वाथ से एक पक्ष तक भावित कर के नागर वेल के पत्ते (पान) के स्वरस में एक प्रहर तक घोट कर सुखा लेवें। इस तरह यह पुष्पधन्वा रस सिद्ध हो जाता है। पूर्वोक्त रस की विधि के अनुसार इस रस की १ वल्ल भर की मात्रा को प्रतिदिन सेवन कराने से पुष्टि, वीर्य्य शक्ति और अग्नि दीपन करता है। यह रस रोगों के अनुकूल अनुपानों के साथ सेवन करने से सब रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ८२-८४ ॥

अथ रसेन्द्रचूडामणिः—

सूतहेमभुजगाभ्रवङ्गकाः कान्तताप्यविमलाः समाक्षिकाः।
भागवृद्धिमिलिता विमर्दिता धूर्तपत्रविजयासलिलेन ॥ ८५ ॥
सप्त सप्त चपलाऽमृतवल्ली सारिवासुररताञ्जलतोयैः।
वारिवाहमृतयष्टिकावरीवानरीभुजगदुष्ट्युदकेन ॥ ८६ ॥
अर्धभागमहिफेनकं न्यसेन्मर्दयेत्सुरसपुष्परसेन।
चन्दनार्ककरहाटपिप्पलीश्रावणीकृतरसैः पृथगेव ॥ ८७ ॥
कुङ्कुमेन च ततो विभावयेन्नाभिजद्रवयुतं विभावयेत्।
सिद्धिमेति रसराडयं शुभः कामिनीमदविधूननदक्षः ॥ ८८ ॥
शर्करामधुयुतो द्विमाषकः स्तम्भकृन्निधुवने वनितानाम् ॥ ८९ ॥
संसेव्य सूतं न रात्रिभोज्यं कुर्वीत पेयं पय एव केवलम् ॥ ९० ॥
तृतीययामे रससेवनं तु कृत्वा निशायाः प्रहरे व्यतीते ॥ ९१ ॥
सेवेत कान्तां कमनीयगात्रां घनस्तनीमुज्वलचारुवस्त्राम्।
रत्युत्सुकां कातरलोलनेत्रां विलोलहारावलिमोद्धानाम् ॥ ९२ ॥
किं कामे तनुकामिनां मलयजेनावश्यजेनाशु किम्।
किं चन्द्रेण परोपकारजनिना पुंस्कोकिलेनापि किम् ॥ ९३ ॥
सहस्रशः सन्ति यदा तरुण्यो मदालसाः पीनपयोधरा दृढाः।
तदा रसेन्द्रः परिषेवणीयो विकारकारी भवतीह नान्यथा ॥ ९४ ॥

शुद्धपारद १ तोला, स्वर्णभस्म २ तोला, नागभस्म ३ तोला, अभ्रकभस्म

४ तोला, वङ्गभस्म ५ तोला, कान्त लौहभस्म ६ तोला, स्वर्णमाक्षिकभस्म ७ तो०, चांदी की भस्म या रौप्यमाक्षिकभस्म ८ तोले भर लेकर सब को खरल में एकत्र महीन पीसकर धत्तूरे के पत्ते और भङ्ग के रस में पृथक् २ सात २ वार घोटें। फिर पीपल, गुडूच, सारिवा, सुरर (ल) ता अर्थात् ज्योतिष्मती, अज्जल अर्थात् लज्जालु, नागरमोथा, शुद्ध मीठा तेलिया या वाराहीकन्द, मुलेठी, शतावर, कौंच के बीज और भुजगदृष्टि अर्थात् सर्पाक्षि इन प्रत्येक के स्वरस या क्वाथ से सात २ वार भावना देकर पारद की अपेक्षा आधी शुद्ध अफीम मिलाकर तुलसी के पुष्पों (मञ्जरी) के स्वरस या क्वाथ के साथ घोटें। फिर लाल चन्दन, आक की जड़, मैनफल, अकरकरा, पिप्पली, श्रावणी अर्थात् मुण्डी, केसर और नाभिज अर्थात् कमलकन्द की जड़ इन द्रव्यों के स्वरस या क्वाथ में पृथक् २ एक २ वार घोट कर शुष्क चूर्ण बनालें। इस तरह यह कामिनी स्त्रियों के मद को खण्डित करने वाला सर्व रसों में श्रेष्ठ कन्दर्पचूड़ामणि रस सिद्ध हो जाता है। यह रस दो माशे भर (२ रत्ती) लेकर शक्कर और शहत् के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों के सङ्ग सम्भोग करने में वीर्यका स्तम्भन करता है। इस रस को सेवन करने के पश्चात् रात्रि में भोजन करना वर्जित है, केवल दुग्ध ही का पान करना चाहिए। इस रस को दिन के तीसरे प्रहर (अर्थात् दो पहर के तीन बजे) के पश्चात् सेवन करना चाहिए तथा रात्रि को १ प्रहर बीत जाने के बाद सुन्दर शरीर वाली, कठिन स्तनों से युक्त, अत्यन्त उज्वल और मनोहर वस्त्रों को धारण की हुई, रति (सम्भोग) के लिये उत्कण्ठित, कातर और चपल नेत्रों वाली तथा चित्त को आह्लाद देने वाले हार को धारण की हुई ऐसी स्त्री के साथ सम्भोग करना चाहिए। जिन पुरुषों की कामशक्ति (सुरतेच्छा) तनु अर्थात् नष्ट हो गई हो उन पुरुषों के काम का बढ़ाने में मलयाचल की सुगन्धित वायु तथा तत्काल सम्भोग शक्ति वर्धक पदार्थों के सेवन से भी क्या लाभ है? तथा मनुष्यों के परोपकार करने वाले चन्द्रमा की चांदनी से भी क्या लाभ? तथा कोकिलाओं के मधुर स्वर वाले गीतों के श्रवण करने से क्या लाभ है? अर्थात् स्वल्पवीर्य वाले पुरुषों के लिये इन वस्तुओं से कुछ भी लाभ नहीं है, इस लिये प्रथम सम्भोग शक्ति को बढ़ाने के लिये इस रस का सेवन करना चाहिए। इस रस को वे ही मनुष्य सेवन करें जिन के पास काम के मद से उन्मत्त एवं अलस

(मन्दगति युक्त) तथा दृढ, और मोटे स्तनों वाली हजारों तरुण स्त्रियां हों, अन्यथा यह रस विकार को उत्पन्न करता है ॥ ८५–९४ ॥

अथ पूर्णचन्द्ररसः—

सूतं गन्धं चाश्वगन्धा गुडूचीयष्टीतोयैर्वासरैकं विघृष्य ।
क्षुद्रं शङ्खं मौक्तिकं लोहकिट्टं भस्मीभूतं सूततुल्यं हि दद्यात् ॥९५॥
भूकुष्माण्डैर्वासरैकं विघृष्य गोलं कृत्वा भूधरे तं पुटेत ।
चूर्णं कृत्वा नागवल्लीरसेन दद्यादेकं मर्दयित्वा च निष्कम् ॥९६॥
मध्वाज्याभ्यां पर्णचन्द्रं रसेन्द्रं पुष्टिं वीर्यं दीपनं चैव कुर्यात् ।
योज्यश्चायं पित्तरोगे ग्रहण्यामर्शोरोगे सेवयेद् बोलयुक्तम् ॥९७॥
स्त्रीणां तापे शाल्मलीनीरयुक्तं मात्रामानं देशकालं विचिन्त्य ॥९८॥

शुद्धपारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समभाग लेकर खरल में कज्जली बना कर असगन्ध, गुड़ूच और मुलेठी इनके क्वाथ से एक दिन घोटकर उसमें छोटे शङ्ख की भस्म, मुक्ताभस्म और लौहकिट्ट अर्थात् मण्डूरभस्म इन प्रत्येक को पारद के समान लेकर उसमें मिलाकर खरल करें। फिर विदारीकन्द के स्वरस में एक दिन तक घोट कर गोला बना लें। फिर इस गोले को सम्पुट में बन्द करके भूधर यन्त्र में पका कर स्वाङ्गशीतल होने पर यन्त्र से निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के नागवल्ली के पत्तों के स्वरस के साथ दिन भर खरल करके सुखा कर शीशी में भर देवें। इस रस को एक निष्क भर लेकर शहद् और घृत के साथ संयुक्त करके सेवन करावें। यह रस शरीर की पुष्टि करता है, वीर्य को बढ़ाता है, पाचकाग्नि को प्रदीप्त करता है। इस रस को पित्तजन्यरोग, ग्रहणी विकार तथा अर्श में बोल (गन्ध बोल) के साथ प्रयुक्त करें। इस रस को स्त्रियों के ताप में अर्थात् प्रदर, योनि व्यापद् और सोमरोग आदि रोगों में हस्तपाद दाह अधिक होता हो तब सेमल की जड़ के स्वरस के साथ प्रयुक्त करना चाहिए। इस रस की मात्रा की कल्पना देश काल और रोगी की अवस्था का विचार कर के करनी चाहिए ॥ ९५–९८ ॥

अथ महाकल्कः—(दिव्यामृतरसः)

धान्याभ्रकं विनिक्षिप्य मुशलीरसमर्दितम् ।
स्थाल्यां क्षिप्त्वा निरुध्याऽथ पिधान्या मध्यरन्ध्रया ॥९९॥

स्थाल्यधा ज्वालयेद्वह्निं यामपर्यन्तमुद्धतम्।
ततः क्षिपेत्पिधान्यां हि व्योम्नस्त्वष्टगुणं पयः॥ १००॥
जीर्णे पयसि पिष्ट्वा तत्तालमूलीरसैः पुनः।
इत्थं हि साधयेद्व्योम त्रिवारमतियत्नतः॥ १०१॥
अजादुग्धैः पुटेत्पश्चाद्वाराणि खलु विंशतिः।
कम्पिल्लकरसेनापि विष्णुक्रान्तारसेन च॥ १०२॥
कदलीकन्दतोयेन तालमूलीरसेन च।
शतवारं पुटेदेवं भवेद्व्योम रसायनम्॥ १०३॥
तद्व्योमभसितं ताप्यभस्म ताम्रस्य भस्म च।
शुल्वभस्म च तत्सर्वं समांशं परिकल्पयेत्॥ १०४॥
भावयेत्सप्तधा निम्बरसैर्लोध्ररसेन च।
केतक्या मार्कवस्यापि कदल्यास्त्रिफलस्य च॥ १०५॥
कोरकस्यापि सारेण तावद्वाराणि यत्नतः।
इति निष्पन्नकल्केऽस्मिंस्तत्समां त्रिफलां क्षिपेत्॥ १०६॥
भस्मसूतं सितां व्योषं चित्रकं च पृथक् पृथक्।
मधुना गुटिकाः कार्याः शाणेन प्रमिताः खलु॥ १०७॥
महाकल्क इति ख्यातो दस्राभ्यां परिकीर्तितः।
एकां गोलीं समारभ्य तथैकैकां विवर्धयेत्॥ १०८॥
चतुर्गोलकपर्यन्तं मण्डले मण्डले खलु।
सेवितो द्वादशाब्दं तु जरामृत्युविवर्जितः॥ १०९॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो दृढदीपनपाचनः।
भीमतुल्यबलः श्रीमान्पुत्रसन्ततिसंयुतः॥ ११०॥
सर्वारोग्यमयो भीमसमानभुजविक्रमः।
सर्वायाससहिष्णुश्च शीतातपसहस्तथा॥ १११॥
अमन्दसम्पदोपेतः प्रौढस्त्रीरतिरञ्जनः।
दृढसर्वेन्द्रियो भूत्वा जीवेद्वर्षशतत्रयम्॥ ११२॥
श्वासं कासं क्षयं पाण्डुं तथैवाष्टौ महागदान्।
मण्डलार्धेन शमयेज्ज्वरादीनां तु का कथा॥ ११३॥

सर्वगोरससंयुक्तं पथ्यं कार्यं रसायने ।
रोगोचितमथान्यच्च दद्दीत खलु रोगिणे ॥ ११४ ॥
संसारसुखमिच्छद्भिः सुखं जीवितुमिच्छुभिः ।
नित्यं रसो निषेव्योऽयं दिव्यामृतसमो मतः ॥ ११५ ॥

धन्याभ्रक संस्कार किये हुए अभ्रक को खरल में मुषली के रस के साथ दिन भर घोटकर एक स्थाली में भर कर मध्य में छिद्र वाले पिधान अर्थात् सकोरे (शराब) से स्थाली का मुख बन्द करके सन्धियों को कपडमिट्टी से बन्दकर सुखा लें। फिर इस स्थाली को चूल्हे पर चढा कर एक प्रहर तक तेज अग्नि जलावें। फिर ढकन के छिद्र से स्थाली में अभ्रक की अपेक्षा आठ गुना दुग्ध डालना चाहिए। दुग्ध के अच्छी प्रकार से जल जाने पर स्वाङ्गशीतल स्थाली को चूल्हे से नीचे उतार कर सन्धि को पृथक् करके अभ्रक निकाल लें। फिर उस अभ्रक को खरल में मुषली के स्वरस से घोट कर उपर्युक्त विधि से स्थाली में भर कर मध्य छिद्र वाले ढक्कन से मुख बन्द कर के सन्धिबन्धन कर के पूर्ववत् दुग्ध डाल कर पाक करें। इस तरह तीन वार पाक करना चाहिए। इस तरह पाक करने के पश्चात् अभ्रक को खरल में महीन पीस कर बकरी के दुग्ध के साथ घोट कर पुट दे देवें। इस तरह बकरी के दुग्ध में घोट २ कर २० पुट देने चाहिएं। पश्चात् कत्रीले के रस, विष्णुक्रान्ता के स्वरस, कदली की जड़ के स्वरस और तालमूली के रस के साथ क्रमशः बीस २ वार घोट २ कर पुट देने चाहिएं। इस तरह अजादुग्धादि ५ द्रव्यों के साथ बीस २ पुट देने से १०० पुट होते हैं। इस विधि से व्योमरसायन तैय्यार होता है। इस विधि से निर्मित अभ्रकभस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, ताम्रभस्म, शुल्वभस्म अर्थात् ताम्रभस्म (यद्यपि ताम्रभस्म प्रथम कह दी है तथापि द्विगुण ग्रहणार्थं पुनर्वचन है) इन चारों को समभाग लेकर सबको खरल में पीसकर निम्ब (नीम) के पञ्चाङ्ग के क्वाथ से सात वार भावित करके पठानी लोध के क्वाथ से भी सात वार भावित करें, फिर केवड़े की जड़, भृङ्गराज, कदली मूल, त्रिफला और कोरक अर्थात् क्षीरकाकोली या कमल की डण्डी इन के स्वरस या क्वाथ से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार भावना दे कर खरल करें। इस प्रकार भावनाओं के देने से बने हुए कल्क में सम भाग त्रिफला का चूर्ण मिला

कर घोटें तथा भस्मसूत अर्थात् पारद की भस्म या रस सिन्दूर, चीनी, त्रिकटु चूर्ण, और चित्रक की जड़ का चूर्ण ये प्रत्येक कल्क के बराबर २ लेकर मिला दें तथा अच्छी प्रकार महीन पीस कर शहद् के साथ खरल कर के चार २ माशे भर की गोलियां बनालें। इस प्रकार यह अश्विनीकुमारों से कहा हुआ महाकल्क नामक प्रसिद्ध रस बनता है। इस रस को प्रत्येक मण्डल में एक २ गोली बढ़ा कर सेवन करनी चाहिए अर्थात् प्रथम मण्डल (४० दिन) में प्रतिदिन एक २ गोली खावें। दूसरे मण्डल में दो २ गोलियां प्रतिदिन सेवन करें, तीसरे मण्डल में तीन २ और चौथे मण्डल में प्रतिदिन चार २ गोलियां सेवन किया करें। इस तरह चालीस२ दिन के ४ मण्डल अर्थात् १६० दिनों के पश्चात् प्रतिदिन चार२ गोलियां सेवन करनी चाहिएं। इस तरह १२ वर्ष तक चार २ गोलियां खावें। १२ बर्ष तक इस औषध के सेवन करनेसे मनुष्य जरा (बुढोति) और अकाल मृत्यु से निर्मुक्त होकर सर्व प्रकार के रोगों से छुटकारा प्राप्त कर लेता है तथा पाचकाग्नि अत्यन्त दृढ हो जाती है, भीम के समान बल बढता है, शरीर की शोभा वढती है, पुत्रों की सन्तति (परम्परा) बढती है, मनुष्य सब प्रकार के आरोग्य से युक्त हो जाता है तथा भीम के समान भुजाओं में बल आ जाता है। सर्व प्रकार के आयासों को सहन करने में एवं शीत और उष्णता को सहन करने में समर्थ, अत्यन्त आनन्द सम्पन्न, प्रौढा स्त्रियों के साथ रति (सम्भोग) करने में उत्सुक तथा दृढ इन्द्रियों वाला होकर मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता हैं। यह रस आधे मण्डल (२० दिन) तक ही सेवन करने से श्वास, कास, क्षय, पाण्डु तथा आठ प्रकार के (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह उदर रोग या जलोदर, भगन्दर, अर्श, ग्रहणी) महारोगों को नष्ट कर देता है फिर ज्वरादिरोगों की क्या कथा है ? अर्थात् वे तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इस रस के सेवन करते समय समस्त गोरसयुक्त अर्थात् गोदुग्ध, गोदधि, गोघृत, आदि के साथ पथ्य पदार्थों के आहार का सेवन करना हितकर है। गोरस के अतिरिक्त रोगी के लिये जो पदार्थ हितकर हों वे भी दिये जांय। जो मनुष्य संसार के विविध सुखों को भोगना चाहें तथा नीरोग होकर जीवित रहने की इच्छा रखते हों उन्हें नित ही इस रस का सेवन करना चाहिए। यह रस दीव्य अमृत के समान है॥ ९९-११५॥

अथ मदनमोदकः—

त्रैलोक्यविजयापत्रं घृतेनाभर्जितं कियत्।
त्रिकटु त्रिफला मुस्ता कुष्ठसैन्धवधान्यकम् ॥ ११६ ॥
शटीं तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम्।
अजमोदा यमानी च यष्टी मधुकमेव च ॥ ११७ ॥
मेथी जीरकयुग्मं च सबीजं भर्जितं तथा।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ ११८ ॥
तावत्येव सिता ग्राह्या यावत्याऽऽयाति बन्धनम्।
घृतेन मधुना युक्तं मोदकं परिकल्पयेत ॥ ११९ ॥
त्रिसुगन्धिसमायुक्तं कर्पूरेणापि वासयेत्।
स्थापयेद्‌घृतभाण्डे च श्रीमन्मदनमोदकम् ॥ १२० ॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम् ॥
कासघ्नं सर्वशूलघ्नं वलीपलितनाशनम् ॥ १२१ ॥
आमवातविकारघ्नं संग्रहग्रहणीहरम्।
सदा निषेवयेद्धामान् रुच्यमग्निविवर्धनम् ॥ १२२ ॥
एतत्कामविवृद्ध्यर्थं नारदेन प्रकीर्तितम्।
तेन स्त्रीणां सहस्राणि रेमे स यदुनन्दनः ॥ १२३ ॥

भाङ्ग के पत्ते लेकर उन्हें कड़ाही में घृत डाल कर मन्द २ अग्नि द्वारा भून लेवें। फिर सोंठ का चूर्ण, मरिच का चूर्ण, पिप्पली का चूर्ण, हरड का चूर्ण, बहेडे का चूर्ण, आंवलों का चूर्ण, नागर मोथे का चूर्ण, मीठे कूट का चूर्ण, सैन्धव लवण, धनियें का चूर्ण, कचूर का चूर्ण, तालीशपत्रचूर्ण, कायफल का चूर्ण, नागकेशर का चूर्ण, अजमोदा का चूर्ण, अजवाईन का चूर्ण, मूलेठी का चूर्ण, महुए की छाल या पुष्पों का चूर्ण, मेथी का चूर्ण, भूने हुए श्वेत और स्याह जीरे का चूर्ण इन सबको समभाग लेकर सब चूर्णों के बराबर बीजों के सहित घृत में भूनी हुई भाङ्ग मिला कर सब को खरल में महीन पीस लें। फिर इस चूर्ण में उतनी ही शर्करा मिलावें जितनी से लड्डू ठीक बन्ध कर मीठे हो जांय, तदनन्तर घृत और शहद् छोड कर अच्छी प्रकार घोट कर त्रिसुगन्धि अर्थात् दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात और कपूर इन से सुवासित करके छोटे २ लड्डू बना लें। इन्हें घृत से

चिकने हुए मिट्टी के भाण्ड (मृतबाण) में रखें। ये ही मदनमोदक लड्डू हैं।
इन्हें प्रातः काल उठ कर शौच स्नान सन्ध्यादिकर्म से निवृत्त हो कर सेवन करें
तथा ऊपर से गौ का धारोष्ण दुग्ध पीना हितकर है। ये मदनमोदक वात और
कफ के विकार, कास, शूल, वलीपलित, आमवात और संग्रहणी आदि रोगों
को नष्ट करते हैं। बुद्धिमान् इन्हें सदा सेवन करें, ये मोदक रुचिकर तथा
पाचकाग्नि को बढाने वाले हैं। श्री नारद मुनि ने इन मोदकों को कामदेव की
वृद्धि के निमित्त बताया है तथा इन्हीं मोदकों के सेवन करने से यदुनन्दन श्री
कृष्णजी ने हजारों स्त्रियों के साथ रमण किया है ॥ ११६-१२३ ॥

अथ कामेश्वरमोदकः—

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धा वचा
मेथी मोचरसो विदारिमुषलीगोक्षुरकेक्षुरकम् ।
रम्भाकन्दशतावरी ह्यजमुदा माषास्तिला धान्यकं
यष्टी नागबला कचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ १२४ ॥
भार्ङ्गी कर्कटशृङ्गिका त्रिकटुकं द्वे जीरके चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी बालकम् ।
शाल्मल्यङ्घ्रिफलत्रिकं कपिभवं वीजं समं चूर्णये-
च्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्यमिश्रं तु तत् ॥१२५॥
कर्षार्धा गुलिकां विलेह्यमथवा कृत्वा च तत्वसेये-
त्पेया क्षीरसिताऽनुवीर्यकरणे स्तम्भेऽव्ययं कामिनाम् ।
रामावश्यकरः सुखातिसुखदः प्रौढाङ्गनाद्रावकः
क्षीणे पुष्टिकरः क्षयक्षयकरो नानामयध्वंसकः ॥ १२६ ॥
नित्यानन्दकरो विशेषकवितावाचाविलासोद्भवं
धत्ते सर्वगुणं महास्थिरवयो ध्यानावधानेऽव्ययलम् ।
अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरा-
त्सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीनित्यनाथेन सः ॥ १२७ ॥

शास्त्रानुसार उत्तम विधि से शोधन कर के भस्म किया हुआ अभ्रक तथा काय
फल, मीठा कूट, असगन्ध, वच, मेथी, मोंचरस अर्थात् सेमल का गोंद, विदारी
कन्द, मूषली, गोखरू, ताल मखाना, केले की जड़ या फल, शतावर, अजमोदा,

उडद, तिल, धनियां, मुलेठी, नागवला (गङ्गेरन), कचूर, मैनफल, जाय फल, सैन्धव लवण, भारङ्गी, काकड़ासोङ्गी, सोंठ, मरिच, पीपल श्वेत जीरा, स्याह जीरा, चित्रक की जड़, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पुनर्नवा की जड़, गजपीपल, दाख, कचूर, सुगन्ध वाला, सेमल की जड़, हरड़, बहेड़ा, आंवला और शुद्ध किये हुए कौंवाच के बीज इन सब को समान भाग लेकर कूट पीस के महीन चूर्ण कर छान लेवें। फिर उपर्युक्त औषध चूर्ण की आधी घृत में भूनी हुई भाङ्ग का चूर्ण और सब से दुगूनी चीनी लेकर सब को बड़ी खरल में एकत्र कर के लड्डू बन्धने के प्रमाण से शहद् और घृत मिला कर अच्छी प्रकार घोट के आधे २ कर्ष के लड्डू या गोलियां बना कर या अवलेह ही के रूप में कर के घृत से स्निग्ध किये हुए भाण्ड में भर कर रख दें। इस औषध को प्रतिदिन आधे कर्ष की मात्रा के अनुसार दुग्ध और चीनी के अनुपान से प्रतिदिन सेवन करें, अर्थात् औषध खाकर ऊपर से चीनी से मीठा किया हुआ आध सेर दुग्ध पीलें। ये लड्डू अधिक कामी पुरुषों के वीर्य को बढ़ाने तथा स्तम्भन करने में अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। यह कामेश्वरमोदक नामक औषध कामिनी स्त्रियों को बश में करने वाला, अत्यन्त सुखप्रद, प्रौढाङ्गनाओं को द्रवित करने वाला, क्षीण धातु की पुष्टि करने वाला, क्षयरोग का नाशक, अनेक प्रकार के रोगों का नाशक, प्रतिदिन नवीन २ आनन्द और उत्साह का देने वाला है तथा इसे सेवन करने वाला पुरुष विशेष प्रकार की कविता और व्याख्यान शक्ति से सम्पन्न तथा सब गुणों को धारण (ग्रहण) करने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, एवं उसकी आयु अत्यन्त स्थिर तथा ध्यान करने और विषयों को धारण करने में समर्थ हो जाता है। यह कामेश्वर मोदक अभ्यास पूर्वक १ वर्ष तक सेवन करने से अकाल मृत्यु और पलित रोग को नष्ट कर देता है। यह कामेश्वर मोदक सब प्रकार के मनुष्यों के लिये हितकर है। इसको श्रीनित्यनाथ नामक विद्वान ने कहा है ॥ १२४–१२७ ॥

अथ वाजीकरणे सामान्योपायाः—

तत्रादौ मधुकप्रयोगः—

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः सदा भवेत् ॥ १२८ ॥

मुलेठी का चूर्ण बनाकर उसमें से प्रतिदिन १ कर्ष भर लेकर घृत और शहद के साथ मिला के सेवन करें तथा ऊपर से धारोष्ण दुग्ध पीने से मनुष्य नित्यवेग वाला अर्थात् अक्षयवीर्य्य वाला हो जाता है ॥ १२८ ॥

अथ शृङ्गीप्रयोगः—

कुलिरशृङ्गया यः कल्कमालोड्य पयसा पिबेत्।
सिताघृतपयोऽन्नाशी स नारीषु वृषायते ॥ १२९ ॥

जो मनुष्य काकड़ासीङ्गी के चूर्ण को जल के साथ पत्थर पर पीस कर कल्क बना के दुग्ध के साथ पीता है तथा चीनी, घृत और दुग्ध के साथ पुष्टि कर भोजन करता है वह सदा स्त्रियों के साथ वृषभ की तरह सम्भोग करता है ॥ १२९ ॥

स्वयङ्गुप्तादिचूर्णम्—

स्वयङ्गुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम्।
धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते ॥ १३० ॥

दुग्ध में उबाल कर शुद्ध किये हुए कौंच के बीज और तालमखाना इन दोनों को समभाग लेकर चूर्ण बना के समान शर्करा मिलाकर इसमें से १ कर्षभर प्रतिदिन धारोष्ण दुग्ध के साथ सेवन करने से मनुष्य गर्दभ के समान स्त्री सम्भोग करने में समर्थ हो जाता है ॥ १३० ॥

अथ तिलप्रयोगः—

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान्।
यः खादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ १३१ ॥

वस्ताण्ड से सिद्ध (पकाये) हुए दुग्ध में भावित किये हुए सफेद तिलों के चूर्ण को धारोष्ण दुग्ध के साथ जो मनुष्य प्रतिदिन सेवन करता रहे तो वह सैकड़ों स्त्रियों के साथ अपूर्व शक्ति से सम्भोग करता है ॥ १३१ ॥

अथ सिन्दूररसः—

गन्धकेन समं सूतं श्वेताङ्कोलजटारसैः।
त्रिदिनं मर्दितं तेन रसेन गुटिकीकृतम् ॥ १३२ ॥
रक्ताचित्रकवाराहीपत्रनिर्यासपेषिते।
सद्योहताजमांसस्य पिण्डे न्यस्तं विपाचितम् ॥ १३३ ॥
तप्ततैले मज्जयीत यावत्सिन्दूरसन्निभम्।

भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां गोक्षीरं च पिबेदनु ॥ १३४ ॥
स्त्रियः सेवेत तत्त्यागे यतः स्फुटति लोचनम् ।
न क्रामति रसः पुंसि क्रान्ते स खलु मन्मथः ॥ १३५ ॥

शुद्ध गन्धक और शुद्ध पारद दोनों को सममाग लेकर खरल में कज्जली बना करके श्वेत अङ्कोल की जटा के स्वरस के साथ तीन दिन तक घोट कर गोला बना लें। फिर इस गोले को लाल चित्रक की जड़ और वाराही कन्द के पत्रों के स्वरस से पीसे हुए तुरन्त मारे हुए बकरे के मांस के पिण्ड अर्थात् कल्क के मध्य में रख कर गोला बना के अग्नि पर खौलते हुए तैल में डाल कर सिन्दूर के समान लाल वर्ण का होने तक पकावें। पश्चात् इस पिण्ड या गोले का निकाल कर खरल में महीन चूर्ण कर के शीशी में भर दें। इसमें से दो २ रत्ती भर चूर्ण लेकर शहद् और घृत के साथ मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से गौ का दुग्ध पीलें। इस रस के सेवन करने के पश्चात् अवश्य स्त्रियों के साथ सम्भोग करना चाहिए, अन्यथा उस पुरुष के नेत्र फूट जाते हैं। इस रस के प्रभाव को अन्य कोई भी औषध नहीं दबा सकती है। इस रस के प्रयोग करने पर वह मनुष्य एक तरह से मन्मथ ही के समान हो जाता है॥१३२-१३५॥

अथ कार्श्यहरयोगः—

शुद्धं सूतं वाजिगन्धां च यष्टीं पक्त्वा दुग्धं तच्च कार्श्ये ददीत ॥१३६॥

शुद्ध सूत अर्थात् पारद की भस्म अथवा रससिन्दूर, असगन्ध का चूर्ण और मुलेठी का चूर्ण इन तीनों को दुग्ध में डाल कर उत्तम रूप से पका लें। जब दुग्ध का पानी जल जाय और खोआ मात्र रह जाय तब उसको घृत में भून कर चीनी की चाशनी में मिला के छोटे २ लड्डू बांध लें। इनमें से प्रतिदिन एक २ लड्डू खाकर ऊपर से दुग्ध पीना चाहिए। इस विधि से इस योग का कृशरोग में प्रयोग करना चाहिए ॥ १३६ ॥

अथ कार्श्यहरयोगत्रयम्—

एवं चाप्यं वापयित्वा च दद्याद्यद्वा यष्टिं मागधीं वाजिगन्धाम् ।
मध्वाज्याभ्यां शाल्मलीसत्त्वयुक्तां शम्बूकैर्वा भर्जितैर्वाप्यमिश्रैः ॥१३७॥

उपर्युक्त विधि से कुष्ठ चूर्ण को दुग्ध में पका कर दें। इति प्रथमो योगः। अथवा मुलेठी, पिप्पली और असगन्ध इनको बराबर २ लेकर चूर्ण बना के घृत,

शहद् और सेमल के सत्त्व अर्थात् गोंद या जड़ के स्वरस के साथ दें। इति द्वितीयो योगः। अथवा यष्टि, पिप्पली और असगन्ध को भून चर कुष्ठ के चूर्ण के साथ मिला के शम्बूक के मांस रस के साथ प्रयुक्त करें। इति तृतीयो योगः॥१३७॥

अथ लिङ्गलेपाः-द्रावणञ्च—

शशिसूतकटङ्कणमागधिकं घृतसूरणमाक्षिकहेमरसम्।
मुनिपत्ररसप्लुतलेपवरं युवतीमदपातनवश्यकरम्॥ १३८॥

कपूर, शुद्धपारद, शुद्धसुहागा, पिप्पली, घी, सूरणकन्द, शहद्, नागकेशर और रसाञ्जन इन सब को समभाग लेकर खरल में महीन पोस के अगस्त्य वृक्ष के पत्तों के स्वरस में घोट कर कल्क (मलहम के समान) बना लें। इस कल्क का लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से युवति स्त्रियों के मद का पतन (भङ्ग) हो जाता है तथा वे स्त्रियां उस मनुष्य के वशीभूत हो जाती हैं॥ १३८॥

अथ द्रावणे सूतप्रयोगः—

योषागर्भरजः सूतं मधुना सह लेपयेत्।
अवश्यं द्रावयेन्नारीं शुष्ककाष्ठोपमामपि॥ १३९॥

स्त्रियों के गर्भ अर्थात् गर्भाशय का रज (आर्तव रक्त) और पारद इन दोनों को अत्यन्त महीन खरल करके शहद् के साथ मिला कर लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से सूखे हुए काठ के समान प्रकृति वाली स्त्री को भी अवश्य द्रवित कर देता है॥ १३९॥

द्रावणे सिन्दूरमधुलेपः—

सिन्दूरमधुनो लेपं लिङ्गस्य कुरुते यदि।
अत्यर्थं रमते नारीं द्रावयेद्वशमानयेत्॥ १४०॥

सिन्दूर को शहद् में मिला कर मरहम बना के लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से मनुष्य स्त्री के साथ खूब देर तक रमण करता है तथा उसे द्रवित करके अपने वश में कर लेता है॥ १४०॥

अथ स्तम्भने कृकवाकुप्रयोगः—

कृकवाकूग्रपिच्छं तु मुद्रिकाकारकं कृतम्।
ऊर्णनाभेः सुजालेन वेष्टयित्वाऽथ धारयेत्॥
वामहस्तकनिष्ठायां नरो वीर्यं न मुञ्चति॥ १४१॥

कुक्कुट (मुर्गे) के तीक्ष्ण पंख को अङ्गूठी के समान गोल बना कर मकड़ी की जाल से लपेट कर वाम हस्त की कनिष्ठिका अङ्गुली में धारण करके सम्भोग करने से उस पुरुष का वीर्य बहुत देर तक स्खलित नहीं होता है ॥ १४१ ॥

अथ कर्पूरादि प्रलेपः—

कर्पूरं टङ्कणं सूतं मुनिपुष्परसं मधु ।
मर्दयित्वा लिपेत्तेन लेपो यावत्तु तिष्ठति ॥ १४२ ॥

कपूर, शुद्धसुहागा, शुद्धपारद, अगस्त्य के पुष्पों का स्वरस और शहद् इन सब को खरल में महीन घोट कर कल्क बना के लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करें। जब तक यह कल्क इन्द्रिय पर लगा रहेगा तब तक वीर्य स्खलित नहीं होगा ॥ १४२ ॥

अथ पुण्डरीकप्रयोगः—

लिङ्गं तु पुण्डरीकस्य चूर्णीकृत्य प्रयोजयेत् ।
मधुना तिलकं कृत्वा रेतःस्तम्भं करोत्यलम् ॥ १४३ ॥

पुण्डरीक अर्थात् श्वेतकमल की केशर (पंखड़ियों) का चूर्ण बना कर शहद् के साथ कल्क बना कर लिङ्ग पर तिलक के समान प्रलेप कर के सम्भोग करने से अत्यन्त वीर्य्यस्तम्भन होता है ॥ १४३ ॥

अथ मदनजीवनः—

कर्पूरं रससंयुक्तं सौभाग्यं रससंयुतम् ।
लेपाय क्रियते नित्यं नाम्ना मदनजीवनः ॥ १४४ ॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये वाजीकरणनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

कर्पूर और पारद की भस्म अथवा सुहागे और पारद की भस्म को एकत्र मिला कर मधु अथवा जल के साथ कल्क बना कर नित्य ही लिङ्ग पर प्रलेप करके सम्भोग करने से स्तम्भन शक्ति बढती है। यह मदन जीवन रस है ॥ १४४ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्रीअम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्वलाख्यभाषाटीकायां वाजीकरणनिरूपणं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टविंशोऽध्यायः ।

अथ लोहकल्पः—

अथ रसस्य प्राधान्यकीर्तनम्—

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ १ ॥

अल्प मात्रा में प्रयोग होने से, सेवन करते समय अरुचि न होने से तथा शीघ्र ही आरोग्य प्रदान करने से अन्य काष्ठादि औषधियों की अपेक्षा रस औषध अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

अथ रसभेदाः—

लोहं मृतं कन्दविषं सूतं चेति निगद्यते ॥ २ ॥

रसायन शास्त्र में रस शब्द से शोधन कर के मारण किये हुए अष्ट लोह जैसे स्वर्ण, रजत, ताम्र, कांसा, पित्तल, नाग, वङ्ग और लोह तथा कालकूट, वत्सनाभ आदि ८ कन्दविष और पारद इनका ग्रहण होता है ॥ २ ॥

अथ पानीयकषायविधिः—

कार्यः पानकषायोऽस्मिन्षोडशांशावशेषितः ॥ ३ ॥

इन रसों के सेवन करते समय अनुपान के लिये जितने कषाय प्रयुक्त होते हैं उन में से षोडशांश प्रमाण से अवशिष्ट रहा हुआ कषाय श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

अथ स्वर्णरौप्यशोधनम्—

अथ पञ्चमृदा लिप्तं हेम्नः पत्रं पुटानले ।
विपचेत्, नागमावाप्य रूप्यं चोर्ध्वाग्निना धमेत् ॥ ४ ॥

स्वर्ण के छोटे २ कण्टक वेधी पत्र बनवा कर उन्हें जम्बीर रस से पिसी हुई पञ्च मृत्तिका (अर्थात् ईंट का चूर्ण, गेरु, लोणी मिट्टी, राख और वल्मीक मृत्तिका) से लीप कर सुखा के सम्पुट में बन्द कर के पुट दे दें। चांदी के पत्रों को निम्बू के रस में पीसे हुए शीशे के कल्क से प्रलिप्त कर के भूधर पुट में बन्द कर के उस के ऊपर तेज अग्नि जला कर पुट देना चाहिए। इस तरह चांदी शुद्ध हो जाती है ॥ ४ ॥

अथ ताम्रशोधनम्—

स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लकृतलेपनम् ।

तप्ततान्त्रस्य निर्गुण्ड्या रसे सिञ्चेत्पुनः पुनः ॥ ५ ॥

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, लवण और जवाखार इन्हें खरल में निम्बू या काञ्जी के साथ पीस कर कल्क बनालें। फिर इस कल्क से ताम्र के पत्रों को प्रलिप्त कर तीक्ष्णाग्नि में उन्हें प्रतप्त कर के निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में निर्वापण करें। प्रायः इस विधि से सात वार या १२ वार उक्त कल्क से ताम्र पत्रों को प्रलिप्त कर २ के बुझाने से वे शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ वङ्गनागयोः शोधनम्—

वङ्गनागं रसे तस्मिंस्तन्मूलेनावचूर्णकम् ॥ ६ ॥

नाग और वङ्ग के पत्र या टुकड़ों को निर्गुण्डी की जड़ के चूर्ण के कल्क से प्रलिप्त कर के सुखा कर तीव्र अग्नि में द्रुत कर के निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस में बुझावें। इस विधि से सात वार बुझाने से उन की शुद्धि हो जाती है ॥ ६ ॥

अथ कान्तलौहस्य लक्षणम्—

यत्पात्राध्युषिते तोये तैलबिन्दुर्न सर्पति।
तारेणावर्तते यत्तत्कान्तलोहं तु तत्स्मृतम् ॥ ७ ॥

जिस लौह के बने हुए पात्र (कटोरी) में जल भर कर तैल की बूंदे उस में छोड़ने से वे इधर उधर न फैलें तथा जो लौह चांदी के साथ पिघलाने (द्रुत करने) पर उसी के साथ मिश्रित हो जाय वह लौह सर्व लोहों में उत्तम कान्त लौह है ॥ ७ ॥

अन्यत्र भी कान्त लौह के निम्न लक्षण कहे हैं।

यथा—यत्पात्रे न प्रसरति जले तैलबिन्दुः प्रतप्ते।
हिङ्गुर्गन्धं त्यजति च निजं तिक्ततां निम्बकल्कः ॥
तप्तं दुग्धं भवति शिखराकारकं नैति भूमिम्।
कृष्णाङ्गः स्यात् सजलचणकः कान्तलौहं तदुक्तम् ॥

अन्यच्च—स्वादुर्यत्र भवेन्निम्बकल्को रात्रिन्दिवोषितः।
कान्तं तदुत्तमं यच्च रूप्येणावर्त्तितं मिलेत् ॥

अथ कान्तलौहस्य शोधनम्—

अयसामुत्तमं सिञ्चेत्तप्तं तप्तं वरारसे ॥ ८ ॥

सर्व प्रकार की लौह जातियों में श्रेष्ठ लौह अर्थात् कान्त लौह को कलच्छी

या कटाह में रख कर तीव्राग्नि में प्रतप्त कर के त्रिफला के क्वाथ में बुझाना चाहिए। इस प्रकार सात वार बुझाने से लौह शुद्ध हो जाता है॥ ८॥

लौह शोधनार्थं क्वाथविधिर्यथा—

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम्।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लौहस्य पल पञ्चकम्॥ १॥
कृत्वा तप्तानि पत्राणि सप्तवारं निषेचयेत्।
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लौह सम्भवः॥ २॥

अथ धातूनां सामान्यमारणम्—

एवं शुद्धानि लोहानि पिष्टान्यम्लेन केनचित्।
मृतसूतस्य पादेन प्रलिप्तानि पुटानले॥
पचेत्तुल्यस्य वा ताप्य-गन्धाश्महरतेजसः॥ ९॥

उपर्युक्त विधियों से शुद्ध किये हुए लोहों (अष्टलोह) को किसी अम्ल (काञ्जी, निम्बूरस) से पीस कर लौह से चौथाई पारद की भस्म के साथ खटाई डालकर दिन भर घोट कर गोला बनाके सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पकावें। अथवा किसी अम्ल में लोह को पीस लें फिर स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धगन्धक और पारदभस्म इन तीनों को समभाग मिलाकर लोहे के चौथाई प्रमाण से लेकर किसी खटाई से घोट कर उक्त लोह के साथ एक दिन तक खरल करके गोला बनाकर सुखालें। फिर इस गोले को शराव सम्पुट में बन्द करके पुटाग्नि में पाक करें॥ ९॥

अथ स्वर्णमारणम्—

अथवा मृतनागेन स्नुहीक्षीरेण काञ्चनम्॥ १०॥

उपर्युक्त विधि के अतिरिक्त स्वर्ण के पत्रों को थूहर के दुग्ध में पीस कर कल्क किये हुए नागभस्म से प्रलिप्त करके सुखाकर शराव सम्पुट में बन्द करके गजपुट में पाक करें। इस तरह आठ वार पुटपाक करने से स्वर्ण भस्म तैयार हो जाती है॥ १०॥

अथ रौप्यताम्रमारणम्—

रूप्यं स्नुक्क्षीरताम्राभ्याम्, ताम्रं मूत्राम्लगन्धकैः॥ ११॥

थूहर के दुग्ध से पीस कर ताम्रभस्म का कल्क बनाकर उससे चांदी के

पत्रों को प्रलिप्त करके गजपुट में पाक करने से चांदी की भस्म हो जाती है। ताम्र के पत्रों को गोमूत्र, निम्बूरस और गन्धक इनके कल्क से प्रलिप्त करके शराव सम्पुट में बन्द करके पुट देने से उनकी भस्म हो जाती हैं ॥ ११ ॥

अथ वङ्गसीसकमारणम्—

हरितालपलाशाभ्यां वङ्गम्, नागं मनोह्वया ॥ १२ ॥

पारिभद्रस्य च रसेनाऽथवा भर्जयेत्त्रपु ॥ १३ ॥

शुद्ध हरताल को पलाश के स्वरस से घोट कर कल्क बना लें फिर इस कल्क से बङ्ग को प्रलिप्त करके पुट दे दें। इस तरह तीन वार पुट देने से वङ्ग भस्म तैय्यार हो जाता है।

अन्यत्र वङ्ग भस्मविधि—

पलाशद्रवयुक्तेन वङ्गपत्राणि लेपयेत्।
तालेन पुटितं भस्म त्रिवारं जायते ध्रुवम् ॥

अथवा—माक्षिकं हरितालञ्च पलाशस्वरसेन च।
कृतकल्केन संलिप्य वङ्गपत्राणि मारयेत् ॥

नागभस्म—

शुद्ध नाग को शुद्ध मैन शिल के साथ वासापत्र स्वरस या जल से घोट कर पुट पाक करें। इस तरह ३ या ३२ पुट देने से नागभस्म हो जाती है।

यथोक्तम्—मनःशिलायुतोनागो वासारसविमर्दितः।
त्रिभिर्गजपुटैर्भस्म भवेत्तन्मेहरोगजित् ॥

अथवा—ताम्बूलीरससम्पिष्टशिलालेपात् पुनः पुनः।
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागोनिरूत्थो जायते ध्रुवम् ॥

अथवा शुद्ध त्रपु अर्थात् वङ्ग को लोह की कड़ाही में द्रुत करके पारिभद्र का थोड़ा २ स्वरस छोड़कर डण्डे से चलाते रहें इस तरह तीन प्रहर तक पाक करने से वङ्गभस्म हो जाती है ॥ १२-१३ ॥

अथ सीसकस्य मारणान्तरम्—

चिञ्चात्वभिक्षुवीरद्रुबोधिवृक्षैरहिं पुनः।

अहिमाराहिदमनीवासावज्रलतार्जुनैः ॥ १४ ॥

शुद्ध सीसे को लोह की कड़ाही में पिघलाकर इमली की छाल, बहेड़े का चूर्ण श्रावणीचूर्ण, शुद्धभल्लातक चूर्ण, पीपल की छाल का चूर्ण, विट्खदिर की छाल

का चूर्ण, नागदमनी का चूर्ण, अडूसे का चूर्ण, हडजोड़ का चूर्ण और अर्जुन की छाल का चूर्ण, इनको क्रमसे थोड़ा २ डालकर पलाश के डण्डे से चलाते रहें। जब सीसे की चमक जाती रहे और वह इन चूर्णों की राख में मिल जाय तब इकट्ठा करके सकोरे से बन्द कर एक प्रहर तक तीव्र अग्नि जलाकर स्वाङ्गशीतल करके उतार लें। इस तरह सीसे की उत्तम भस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

अथ लोहमारणम्—

स्त्रीस्तन्ये हिङ्गुलेनायः पचेल्लिप्त्वा पुटेऽनले ॥ १५ ॥

शुद्ध हिङ्गुल को स्त्री के दुग्ध अथवा गोदुग्ध से पीसकर कल्क बना लें। फिर इस कल्क का लोह के ऊपर प्रलेप कर के शरावसम्पुट में बन्द करके पाक करें।

अन्यत्र लोहमारणविधि इस तरह है—

हिङ्गुलस्य पलान् पञ्च नारीस्तन्येन पेषयेत्।
तेन लोहस्य पत्राणि लेपयेत् पलपञ्चकम् ॥
रुद्ध्वा गजपुटे पच्यात् कषायैस्त्रैफलैः पुनः।
जम्बीरैरारनालैर्वा विंशत्यंशेन हिङ्गुलम् ॥
पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटेल्लौहं तथैव पाचयेत्पुनः।
चत्वारिंशत्पुटैरेवं कान्तं तीक्ष्णञ्च मुण्डकम् ॥
म्रियते नात्र सन्देहो दत्त्वा दत्त्वा च हिङ्गुलम् ॥ इति ॥ १५ ॥

अथासम्यङ्मारितलोहस्य लक्षणम्—

सर्वमेव मृतं लोहं सोत्थानं यदि सेवनात्।
शुकवर्णाभकण्ठत्वक्स्फोटाऽरुचिविबन्धकृत् ॥ १६ ॥

स्वर्ण, लौह, ताम्रादि समस्त धातुओं की उत्थित (ठीक रूप से न पकने पर) भस्म को सेवन करने से गले की त्वचा तोते के समान नीले रङ्ग की हो जाती है तथा गले में दाह और शूल होता है एवं समस्त शरीर में फोड़े फुन्सियां निकल आती हैं। भोजन करने में अरुचि तथा विबन्ध बना रहता है। अतः एव धातुओं की उत्तम भस्म बनाकर ही सेवन करें ॥ १६ ॥

अथ निरुत्थलोहस्य लक्षणम्—

पक्वं यावन्निरुत्थानं सेव्यं वारितरं हि तत् ॥ १७ ॥

उपर्युक्त उपद्रवों के निवारणार्थ समस्त धातुओं की भस्म जब तक निरुत्थ

और जल पर तैरने योग्य न हो जाय तब तक उनका पुटपाक करते रहना चाहिए। जब वे निरुत्थ और वारितर हो जांय तभी सेवन करें ॥ १७ ॥

अथ निरुत्थलोहस्य परीक्षा—

कान्ते पुनः कलाभागताप्ये सक्षौद्रसर्पिषि।
क्षिप्तमावर्तितं तारं स्वप्रमाणं भवेद्यदि ॥
जानीयात्तन्निरुत्थानम्, ॥ १८ ॥

कान्त लौह की भस्म में षोडशांश स्वर्णमाक्षिकभस्म एवं शहद तथा घृत मिलाकर कड़ाही में तीव्राग्नि से तपावें। फिर उसमें द्रुत की हुई चांदी डालें। घृत आदि के जल जाने पर स्वाङ्गशीतल कटाह को नीचे उतार कर उसमें से चांदी को पृथक् करके तोल लें। यदि तोलने से चांदी का वजन बढे नहीं तथा कम भी न हो ऐसी दशा में उस कान्तभस्म को निरुत्थ समझें। रसरत्नाकर में निरुत्थभस्म परीक्षा इस प्रकार है।

मध्वाज्यमृतलौहञ्च सरूप्यं सम्पुटे पचेत्।
रुद्ध्वाऽऽध्माप्य तु सङ्ग्राह्यं रूप्यञ्च पूर्वमानकम् ॥
तदा लौहं मृतं विद्यादमृतं मारयेत् पुनः। इति।

यहां पर ताप्य मिलाने को नहीं लिखा है ॥ १८ ॥

अथ अनिरुत्थलोहस्य मारणम्—

सोत्थानञ्च मुहुर्मुहुः।
त्रिफलाक्वाथसम्पृक्तं विपचेत्पुटपावके ॥ १९ ॥

अनिरुत्थ (अपक्व) भस्म को त्रिफला के क्वाथ से दिन भर खरल करके टिकिया बनाकर सम्पुट में बन्द करके पुट दें। जब तक निरुत्थ न हो जाय तब तक इस विधि से पुट पाक करते रहना चाहिए ॥ १९ ॥

अथ मृत्युहारी रसः—

अयःपत्रं तिलोत्सेधं प्रतप्तं चतुरङ्गुलम्।
एकविंशतिपर्यायं धात्र्या निर्वापयेद्रसे ॥ २० ॥
ततः शतपलं स्थाल्यां क्षिप्त्वा धात्रीरसात्तमम्।
कृत्वा ततः सुपिहितं भस्मराशौ विनिक्षिपेत् ॥ २१ ॥
मासि मासि समुद्धृत्य लोहदण्डेन घट्टयेत्।

तस्मिन्विशुष्यति प्राग्वद्रसं धात्र्याः प्रदापयेत् ॥ २२ ॥
द्रवीभवति तत्सर्वं वत्सरात्पत्रमायसम्।
ततः समन्ततोऽङ्गुष्ठपर्वमात्रमुखेन तु ॥ २३ ॥
आयसेन स्रुवेणायः पात्रे कल्कीकृतं ततः।
श्रुतं पृथक्समांशेन सेवेत मधुसर्पिषा ॥ २४ ॥
जीर्णे साज्यं रसक्षीरयूषान्यतममिश्रितम्।
षष्टिकौदनमद्नीयादुपयुज्येत वत्सरम् ॥ २५ ॥
वर्षमन्यच्च शिष्टान्नो यन्त्रितात्मा कुटीं वसेत्।
अगस्यो रुग्जरामृत्युशस्त्राग्निविषवारिभिः ॥
जीवेद्वर्षसहस्रं वै सर्वभावेष्वतीन्द्रियः ॥ २६ ॥

तिल के समान उत्सेध वाला तथा चार अङ्गुल का एक लोह का पत्र लेकर उसको तीव्राग्नि में प्रतप्त करके आंवलों के स्वरस में सिञ्चन (निर्वापण) करें। इस तरह २१ वार गरम कर २ के नये २ आंवलों के स्वरस में बुझाना चाहिए। पश्चात् एक स्थाली अर्थात् मिट्टी की हण्डिका में उत्तम आंवले का १०० पल स्वरस भर कर उस रस में उस लोह पत्र को डाल कर हण्डिका के मुख को शराव से बन्द करके कपड मिट्टी करके राख के समूह (ढेर) में गाड़ दें। फिर प्रतिमास उसको निकाल कर लोहे की खरल में लोहे की मुषली के द्वारा घोटना चाहिए। अच्छी तरह घोटने के पश्चात् फिर उसी हण्डिका में बन्द करके राख के ढेर में गाड़ दें। यदि आंवलों का रस सूख गया हो तो फिर उतना ही रस छोड़ देना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक लोह पत्र को प्रतिमास निकाल कर घोट के फिर स्वरस में डुबो कर रखने से वह पत्र द्रुत हो जाता है। फिर इस द्रुत हुए लोह पत्र को अंगूठे के पर्व के समाम चारों ओर से मोटे मुख वाले लोहे के बने हुए स्रुवे से निकाल कर किसी लोहे के पात्र (कटोरी) में थोड़ा सा गरम करके ठण्डा करके समांश शहद् और घृत मिला कर अच्छी तरह घोट के कल्क बना कर सेवन करें। इस प्रकार प्रतिदिन हण्डिका में से लोह स्रुवे से (जितना उस में आस के) लोह पत्र के द्रव्य को निकाल कर अग्नि में तपाकर समांश शहद् और घृत मिला कर सेवन करना चाहिए। इस औषध के हजम (जीर्ण) हो जाने के पश्चात् अर्थात् जिस वक्त भूख अत्यन्त लग जाय

तब मांस रस, दुग्ध और अन्य प्रकार के यूष इन में से यथा शक्ति किसी एक द्रव से साठी के भात को मिला कर भोजन करना चाहिए। इस तरह एक वर्ष तक इस योग का नियम पूर्वक सेवन करना चाहिए। प्रथम वर्ष में औषध सेवन करना चाहिए तथा दूसरे वर्ष में औषध सेवन न कर केवल हितकर भोजन तथा अन्य फल फुल दुग्ध आदि पथ्य पदार्थों का सेवन करें तथा अपनी आत्मा को वश में किये रहें और एकान्तकुटी में निवास करना चाहिए। दो वर्ष के पश्चात् वह मनुष्य यथेच्छ खाद्य पेय का सेवन कर सकता है तथा कुटी से बाहर भी भ्रमण कर सकता है। इस प्रकार दो वर्ष तक नियम पूर्वक उपर्युक्त विधि को करने से वह मनुष्य रोग, जरा, अकालमृत्यु से रहित हो जाता है तथा शस्त्र, अग्नि, विष और दूषित जल आदि के प्रभाव का उस पर कोई भी बुरा प्रभाव नहीं होता है तथा संसार के समग्रभाव पदार्थों का अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करके १ हजार वर्ष तक जीवित रहता है। कुटीनिर्माण निम्न प्रकार से करें।

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयोविदुः। कुटीप्रावेशिकञ्चैव वातातपिकमेव च॥

कुटी प्रावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते।
नृपवैद्यद्विजातीनां साधूनां पुण्यकर्मणाम्॥
निवासे निर्भये शस्ते प्राप्योपकरणे पुरे।
दिशि पूर्वोत्तरस्यान्तु सुभूमौ कारयेत् कुटीम्॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नां त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनां।
घनभित्तिमृतुसुखां सुस्पष्टां मनसः प्रियाम्॥
शब्दादीनामशस्तानामगम्यां स्त्रीविवर्जिताम्।
इष्टोपकरणोपेतां सज्जवैद्योषधद्विजाम्॥

इति चरकः॥ २०-२६॥

अथ लोहकल्पः—

ताम्ररौप्यसुवर्णानामयमेव पृथग्विधिः।
द्विगुणं तद्गुणोत्कर्षाज्जानीयादुत्तरोत्तरम्॥ २७॥

उपर्युक्त लौह कल्प की विधि के अनुसार ही ताम्र, चांदी, सुवर्ण आदि की पृथक् २ विधि समझनी चाहिए केवल भेद इतना ही है कि लौह कल्प के गुणों की अपेक्षा इन धातुओं से उत्तरोत्तर दो २ गुना अधिक लाभ होता है। अर्थात्

लौह से द्विगुण ताम्र, ताम्र से द्विगुण चांदी, चांदी से द्विगुण सुवर्ण हित कर होता है ॥ २७ ॥

अथ लोहमारणप्रकारः—

अथोष्णवारिपिष्टेन कान्तलोहं सनिन्धुना।
कफे कुठारच्छिन्नेन पित्ते वाते गलाऽम्बुना ॥ २८ ॥
उभयेन वयस्तम्भे ताप्येन गलरुक्षु च।
कण्ड्वां मनोह्वया स्रोतोविबन्धे मरिचाङ्घ्रिणा ॥ २९ ॥
लिप्तं पक्वेष्टिकायन्त्रे द्रावितं जलसन्निभम्।
निषिक्तं त्रिफलाक्वाथे पर्पटीभूतमायसे ॥ ३० ॥
सञ्चूर्ण्य तेन क्वाथेन पिष्ट्वा स्थाल्यां विपाचितम्।
षोडशाङ्गुलगर्तान्तः सम्पुटे चापरीक्षणात् ॥ ३१ ॥
आर्द्रकाभीरुमुषलीविदारीभृङ्गहस्तिजैः।
रसैस्तथा मुहुस्ताम्रं धान्याभ्रं काञ्जिके प्लुतम् ॥ ३२ ॥
तेन पिष्टं घृतं क्षौद्रे मत्स्याक्षीमेघनादयोः।
जयन्त्यास्तीक्ष्णचाङ्गेर्यामुंषलीमाणिमन्थयोः ॥ ३३ ॥
वज्रिणीसातलावाट्यावर्षाभूणां रसेन च।
क्षीरेण च पृथक्कुर्यात्पेषणादिक्रियात्रयम्।
कज्जलाभं द्वयं चैतद्यथा क्वाथे विभावयेत् ॥ ३४ ॥

कफरोग में गरमजल से निर्गुण्डी की जड़ को पीस कर उस कल्क से कान्तलौहपत्र को प्रलिप्त करके पकी हुई ईंटो से बने हुए यन्त्र में डाल कर तीव्र अग्नि द्वारा द्रुत करें। इसी तरह पित्तरोग में कुठारिका अर्थात् गुडूच की जड़ के कल्क से लिप्त करके पिघलावें तथा वातरोग में अलम्बुषा के कल्क से लिप्त कर द्रुत करें, अवस्था को स्तम्भ अर्थात् दृढ करने में गुडूची और अलम्बुषा दोनों के कल्क से लिप्त कर द्रुत करें, गले की बीमारियों में स्वर्णमाक्षिकभस्म से प्रलिप्त करके द्रुत करें, खुजली में मनःशिलाकल्क से प्रलिप्त कर द्रुत करें तथा स्रोतसों की रुकावट में मरिच की जड़ के कल्क से प्रलिप्त कर उक्त यन्त्र में पिघला कर त्रिफला के क्वाथ में बुझा दें। इस तरह पर्पटी के स्वरूप का लोह हो जाता है। जिस रोग के लिये लोह कल्प बनाना

हो उस रोग को नष्ट करने वाले उपर्युक्त औषधकल्क से प्रलिप्त कर इष्टिकायन्त्र में जल के समान द्रुत करके त्रिफला क्वाथ में सेवन करना चाहिए। पश्चात् पर्पटीभूत लौह को खरल में कूटकर चूर्ण बना के त्रिफला ही के क्वाथ से एक दिन तक पीसकर लौहे की स्थालीमें पाक करें। स्थालीपाक करने के पश्चात् आदी, शतावर, मुषली, विदारीकन्द, भृङ्गराज और हस्तिकर्णपलाश इन द्रव्यों के स्वरस में लौह को खरल करके शराव सम्पुट में बन्द कर दें। फिर १६ अङ्गुल गहरे और चौड़े गढे के भीतर जङ्गली उपले भर कर उनके मध्य में उपर्युक्त औषध से भरे शरावसम्पुट को रखकर अग्नि जला दें। इस तरह जब तक लौह की निरुत्थ एवं वारितर भस्म न हो जाय तब तक उक्त समस्त या व्यस्त औषधियों के स्वरस में घोट २ कर यथा विधि पुट देते रहें।

ताम्र और धान्याभ्रक को पृथक् २ वह्नि में द्रुत कर के काञ्जी के अन्दर बुझाना चाहिए। इस तरह दोनों को सात २ वार बुझा लेने के पश्चात् उसी काञ्जी के साथ एक २ दिन तक पृथक् २ खरल कर के सुखालें। फिर घृत, शहद, मछेछी, चोलाई, जयन्ती, राई, चाङ्गेरी (अम्ल लोणी), मुषली, सैन्धव लवण, थूहर, सातला (थूहर भेद), बांझ ककोड़ा, और पुनर्नवा का स्वरस तथा दुग्ध इन द्रव्यों के साथ उपर्युक्त ताम्र और अभ्रक को पृथक् २ घोट २ कर शराव सम्पुट में बन्द कर के उपर्युक्त प्रकार के गढे में उपले भर कर पुट देने चाहिएं। पुट देते देते दोनों कज्जल के समान हो जाय तथा ताम्र भस्म वान्त्यादिदोष रहित और जल पर तैरने लग जाय तथा अभ्रकभस्म चमकरहित (निश्चन्द्र) और वारितर हो जाय तब दोनों की सिद्ध हुई भस्म जान कर ग्रहण करें। प्रायः ६० पुट देने से ताम्र की तथा ७० पुट देने से अभ्रक की निर्दोष एवं उत्तम भस्म हो जाती है। जिन द्रव्यों से स्वरस न प्राप्त हो सके उन से क्वाथ बना कर कार्य करना चाहिए। फिर इन दोनों भस्मों को पृथक् २ भिन्न २ रोगों को नष्ट करने वाली औषधियों के स्वरस या क्वाथ से सात सात वार भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण करके शीशी में भर देवें ॥ २८-३४ ॥

अथ लोहकल्पः—

पलानि पञ्च कान्तस्य सर्वत्राभ्रकचूर्णयोः।
सार्धं द्वे सप्त सार्धानि वाते पित्ते पुनः क्रमात् ॥ ३५ ॥

पञ्च पादेन युक्तानि पञ्च पञ्च कफे पुनः।
तत्र कान्ताभ्रके क्षिप्त्वा त्रिफलाक्वाथमाढकम् ॥ ३६ ॥
प्रस्थितानि गुणस्याष्टौ क्वाथस्य पयसस्तथा।
पलानि षोडशाज्यस्य सिञ्चेत्पाकवशात्पुनः ॥ ३७ ॥
वाताद्यपेक्षया पङ्कोत्कारिकावालुकानिभे।
अफेने वर्णगन्धाढ्ये कटुष्णे पीतसर्पिषि ॥ ३८ ॥
दन्त्यादिचूर्णमावाप्य स्थापितेनेतरेण वा।
घृतेन पोषितं भाण्डे घृतस्निग्धे निधापयेत् ॥ ३९ ॥
कुर्यात्तत्कल्पनापाको श्लेष्मणीव रसायने।
स्वस्थः शरन्निदाघाभ्यामन्यथा कृतशोधनः ॥ ४० ॥
घृतमाक्षिकमात्रा वा लौहे लौहेन मर्दितः।
रसायनं द्वौ दिवसौ द्वे द्वे गुञ्जे ततः परम् ॥ ४१ ॥
द्वन्द्ववृद्ध्या दिने द्वे द्वे परं विंशतिवासरान्।
प्रातर्विंशतिगुञ्जानां भागौ द्वौ भागमेव च ॥ ४२ ॥
प्राग्भक्तमर्धमर्धं वा भक्षयेदुक्तकालयोः।
एवं मात्रात्रिभागेन व्याधिक्षीणोऽपि सर्वदा ॥ ४३ ॥
लोहादष्टगुणं क्षीरं धारोष्णं शृतमेव वा।
वयःस्तम्भेऽनुपातव्यं व्याधौ क्वाथो यथोदितः ॥ ४४ ॥
आस्वाद्य चानु मुस्तानां निर्यासं दन्तपीडितम्।
मूलानि भक्षयेत्तासामास्यवैरस्यनुत्तये ॥ ४५ ॥
क्रूरकोष्ठस्तु दीप्ताग्निरनुलोमयितुं मलान्।
तप्तं क्षीरं पिबेद्भूयस्ताम्बूलं भक्षयेन्मुहुः ॥ ४६ ॥
स्नानमर्दनविष्टम्भिविदाह्यम्लमजाङ्गलम्।
सप्तसप्ताहमथवा त्रिसप्ताहं परित्यजेत् ॥ ४७ ॥
शालिमुद्गरसं सर्पिर्वेत्राग्रं बृहतीद्वयम्।
दीर्घं पटोलवार्ताके तालकं मूलकन्दकम् ॥ ४८ ॥
शतावर्याः सजीवन्ती-शृङ्गाटसुनिषण्णकम्।
तण्डुलीयकधान्याकं सराजक्षववास्तुकम् ॥ ४९ ॥

जाङ्गलं शफराः कृष्णमीना रोहितमद्गुरौ।
द्राक्षादाडिमखर्जूररम्भाकोलं च शस्यते ॥ ५० ॥
जीर्णौषधस्तु दीप्तेऽग्नौ प्रातः पित्ताद्बुभुक्षितः।
अर्धमात्रं पिबेत्क्षीरं सार्धमात्रं कृशो नरः ॥ ५१ ॥
दिवसाः सप्त सप्तास्मिन्दिने द्वित्रिगुणाः क्रमात्।
जघन्यमध्यप्रवरः सेवाकालो विधीयते ॥ ५२ ॥
पूर्णक्रियेयं द्विगुणा सोत्तरा नात्र यन्त्रणा।
यथाकालं मलोत्सर्गः शरीरोदरलाघवम् ॥ ५३ ॥
हृदयोद्गारशुद्धिश्च जीर्णलोहस्य जायते।
लोहाप्रवृत्तौ सामत्वं लोहकिट्टप्रशान्तये ॥ ५४ ॥
उष्णाम्बु सयवक्षारं त्रिदिनात्त्रिदिनात्पिबेत्।
रसेनाऽगस्त्यपत्राणां विडङ्गं चान्तरान्तरा ॥ ५५ ॥
क्वाथमश्वत्थपत्राणां प्रसङ्गे छर्दिशूलयोः।
सामान्यसिद्धिमावाप्य भावनापुटपाचनैः ॥ ५६ ॥
यथायोगयुतं पक्वं त्रिफलाक्वाथसर्पिषा।
साधितं भक्षयेत्कान्तमेकं वा केवलाभ्रकम् ॥ ५७ ॥
इह नानु पिबेत्क्षीरं न कुर्याच्चेन भोजनम्।
मुद्गयूषं पिबेत्तोये कोष्णं च नियतो भवेत् ॥ ५८ ॥
एतल्लोहरसायनाख्यममृतं पक्वं यथोक्तं क्रमा-
द्भुञ्जानः प्रतिवत्सरं नववपुः सोर्धं तु वर्णेन्द्रियैः।
दीर्घायुर्नवयौवनोन्नतकुचप्रौढाङ्गनावल्लभो
माद्यद्दन्तिबलो जराविरहितः पुत्रावृतः स्यान्नरः ॥ ५९ ॥

वात प्रकृति वाले रोगी के लिये कान्तलौहभस्म ५ पल, अभ्रक भस्म २½ पल, ताम्र भस्म ७½ पल लें तथा पित्तप्रकृति वाले रोगी के लिये कान्त लौहभस्म ५ पल, अभ्रकभस्म ५ पल तथा ताम्रभस्म ५¼ तथा कफ प्रकृति वाले रोगी के लिये यह कल्प बनाना हो तो लौहभस्म ५ पल, अभ्रकभस्म ५ पल तथा ताम्रभस्म ५ पल लें। इस प्रकार जिस दोषप्रकृति वाले रोगी के लिये यह कल्प बनाना हो तदनुकुल प्रमाण से इन तीनों भस्मों

को लेकर खरल में घोटकर लोहे की बडी कडाही में डालकर १ आढक प्रमाण त्रिफला क्वाथ तथा तीनों भस्मों की तोल से अठगुना विशुद्ध गोदुग्ध डालकर पाककरें। जलीयांश के नष्ट हो जाने के पश्चात् उसमें १६ पल शुद्ध घृत मिलाकर पाककरें। वात प्रकृति वाले के लिये यदि यह कल्क बनाना हो तो पङ्क अर्थात् अवलेह (कीचड) के समान मृदु पाककरें तथा पित्तप्रकृति वाले के लिये उत्कारिका अर्थात् रबडी के समान मध्यम पाक करना चाहिए तथा कफ प्रकृति वाले के लिये गङ्गाजी की बालुका के समान दानेदार अर्थात् खरपाक करना चाहिए। इस तरह पाक करते२ फेन रहित, वर्ण और सुगन्ध से युक्त तथा पीले वर्ण का घृत हो जाय तब उसे नीचे उतार कर कुछ२ गरम रहे तभी उसमें अग्रलिखित दन्त्यादि चूर्ण मिलाकर कलच्छी या स्वच्छ डण्डे से अच्छी तरह घोट॰ कर सबको मिला के घृत से स्निग्ध किये हुए भाण्ड में इस पाकको सुरक्षितकरदें। रसायन के लिये लौह पाक की कल्पना श्लेष्मप्रकृति के लिये पूर्व में कहे हुए पाक के अनुसार अर्थात् बालुका सदृश करनी चाहिए। स्वस्थ पुरुष शरद् और ग्रीष्म ऋतु से अन्य ऋतु में वमन विरेचनादि पञ्चकर्म द्वारा अपने शरीर की शुद्धि करके इस रसायन का सेवन प्रारम्भ करें। प्रथम दो दिन दो २ रत्ती भर इस कान्ताभ्रकरसायन को लेकर लोहे की छोटी खरल में लौह की मुसली से घोटकर घृत और माक्षिक (शहद्) के साथ मिला कर सेवन करें। दो दिन के पश्चात् शेष १८ दिन के दो २ युग्म बना कर उम में दो २ रत्ती बढ़ाकर सेवन करें। अर्थात् तृतीय और चतुर्थ दिन में चार २ रत्ती, पञ्चम और षष्ठ दिन में छै छै रत्ती, सप्तम और अष्टम दिन में आठ २ रत्ती, नवम और दशम दिन में दश दश रत्ती, एकादश और द्वादशवें दिन में बारह २ रत्ती, त्रयोदश चतुर्दश दिन में चौदह २ रत्ती, पञ्चदश और षोडशवें दिन में सोलह २ रत्ती सप्तदश और अष्टादश दिन में अठारह २ रत्ती, उन्नीस और वीसवें दिन में बीस २ रत्ती, भर सेवन करें। बीस दिन के पश्चात् प्रति दिन बीस २ रत्ती सेवन करनी चाहिए। परन्तु आधी (१० रत्ती) सुबह और आधी अर्थात् शेष १० रत्ती सन्ध्या के समय लौह खल्व में घोट कर घृत और शहद् के साथ भोजन करने के पूर्व सेवन करें। इस प्रकार मात्रा की कल्पना कर के समग्रव्याधियों से क्षीण पुरुष भी सेवन करे तो अवश्य ही लाभ होता है। जो स्वस्थ पुरुष अपनी आयु की स्तम्भना

अर्थात् वृद्धि के लिये इसे सेवन करना चाहे तो इस रसायन से अठगुना या जीतना पी सके उतना धारोष्ण अथवा उष्ण कर के शीतल किया हुआ दुग्ध औषध सेवन कर के ऊपर से दोनों समय पी लिया करे। जो पुरुष किसी रोग से मुक्त होने के निमित्त इस रसायन का सेवन करना चाहे तो इस के सेवन करने के बाद उस व्याधि को नष्ट करने वाली काष्ठौषधियों का क्वाथ बना कर पान करे। इस रसायन के सेवन करने के पश्चात् नागर मोथे की जड़ को दांतों से चबा चबा कर उस का रस चूसे या उस को भी निगल जाय ऐसा करने से मुख की विरसता नष्ट हो जाती है। जिस मनुष्य का कोष्ठ अत्यन्त क्रूर हो वह इस रसायन के सेवन करने के पश्चात् मल को अनुलोमित करने के लिये खूब मन्दोष्णा दुग्ध का पान करे तथा थोड़ी २ देर बाद पान बीड़ा चबाया करे। इस विधि से उस का कोष्ठ मृदु हो जाता है जिस से दस्त साफ़ होती है और उदराग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है। इस रसायन के सेवन करते समय सात सप्ताह तक या तीन सप्ताह तक स्नान, तेल की मालिश, मलबन्ध करने वाले, दाह करने वाले तथा खट्टे पदार्थ तथा अजाङ्गल मांस (ग्राम्यपशुमांस) ये सर्वथा वर्जित हैं। रस सेवन करने के पश्चात् भूख लगने पर साठी के चांवलों का भात, मूङ्ग की दाल का यूष, घृत, जलवेंत का अग्रभाग, दोनों प्रकार की कटेली, वडे २ परवल और वेंगन, ताडके फल, मूली, कन्दे, शतावर की जड़, जीवन्ती शाक, सिंघाड़े, खिरिआरी का शाक, चोलाई का शाक, धनियां, अमलतास के पुष्पों का शाक, बथुऐका शाक, जाङ्गल पशुओं का मांस, शफरी नाम की मछली, काली मछली, रोहू मछली, मद्गुर नामक मच्छ, द्राक्षा, अनार (दाडिम) खजूर, केला और वेर ये सर्व पदार्थ पथ्य हैं। प्रातःकाल औषध सेवन करने के पश्चात् वह ठीक तरह से पच जाय तथा पित्त के बढ जाने के कारण जठराग्नि प्रदीप्त हो जाने से ज्यादा भूख प्रतीत होने लगे तो उतना दुग्ध पीले जितने से आधी क्षुधा निवृत्त हो जाय, किन्तु यदि औषधसेवी दुर्बल हो तब थोड़ा थोड़ा दुग्ध कई वार पान करे। इस रसायन को ७ दिन सेवन करने को जघन्य काल, १४ दिन सेवन करने को मध्य काल तथा २१ दिन सेवन करने को उत्तम काल माना गया है। २१ दिन तक सेवन करना पूर्ण या पूर्व किया है, इन दिनों के द्विगुण अर्थात् ४२ दिन तक पथ्य पूर्वक रहना चाहिए।

तथा उत्तर क्रिया अर्थात् २१ दिन के बाद भी इस रसायन का सेवन करना हो तो पथ्यापथ्य में कोई विशेष यन्त्रणा अर्थात् नियम नहीं है। ठीक समय पर मल मूत्रादियों का उत्सर्ग हो जाना, शरीर और विशेष कर उदर में हलकापन का अनुभव होना, हृदय की शुद्धि और उद्गार (डगार) का ठीक आना, ये सब इस लौह रसायन के जीर्ण अर्थात् ठीक पच जाने के लक्षण हैं। यदि किसी कारण वश या शरीर की अग्नि दुर्बल होने या प्रकृति विरुद्ध होने के कारण लौह का सात्मीकरण (पचन) न हो जिससे समय पर मल की अप्रवृत्ति (अनुत्सर्ग) हो ऐसी दशा में आम दोष वढ़ जाता है अर्थात् अजीर्ण लौह का किट्ट भाग अन्त्रियों में जम जाता है जिस से बिबन्ध हो जाता है तथा आध्मान और शूल आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं, इस लिये लौह किट्ट की शान्ति के लिये उष्ण जल में यवक्षार मिलाकर प्रत्येक तीसरे दिन पीना चाहिए। तथा तीसरे दिन खाने के पूर्व वायविडङ्ग का चूर्ण फांककर ऊपर से अगस्त्य के पत्तों का स्वरस निकाल कर पान करें। यदि वमन और शूल प्रारम्भ हो जायं तो उन को रोकने के लिये पीपल के पत्तों का काढ़ा बना कर पीना चाहिए। उपर्युक्त विधि से लौहाभ्रकादि का मिलित कल्प न बन सके तो निम्न रीति से पृथक् २ कल्प तैय्यार करलें। अर्थात् केवल कान्तलौह को लेकर उसकी साधारण और विशेष शुद्धि तथा भानुपाक और स्थाली पाक कर के भिन्न २ औषधियों के स्वरस की भावनाएं देकर पुट पाक करलें। इस तरह जब लौह की वारितर और निरुत्थ भस्म हो जाय तब त्रिफला के क्वाथ और घृत के साथ पृथक् २ सात २ चार घोट कर सात २ पुट देदें। इसी तरह अभ्रक की भी भस्म बना कर दोनों में से किसी एक का सेवन करने से उपर्युक्त समस्त गुण होते हैं। कान्त लौह भस्म या अभ्रक भस्म के सेवन करने के पश्चात् केवल दुग्ध पान कर के मूंग का यूष पीलें और भोजन करें तथा जितने भी जल सम्बन्धि शौच स्नान पानादि कार्य करने हों उन्हें मन्दोष्ण जल से करें शीतल जल का प्रयोग न करें। यथाविधि से पके हुए अमृत के समान गुण करने वाले इस लौह रसायन को जो पुरुष पूर्वोक्त क्रम से मात्रा की वृद्धि कर के प्रतिवर्ष सेवन करता है तो वह पुरुष मनोहर वर्ण और इन्द्रियों की दृढ़ शक्ति से सम्पन्न हो कर दीर्घ आयु वाला हो जाता है तथा नवीन जवानी के कारण ऊंचे और दृढस्तनों वाली प्रौढाङ्गनाओं

का प्रिय हो कर मदोन्मत्त हस्ती के समान बल को धारण करता हुआ बुढौति से रहित होकर अनेक पुत्रों को उत्पन्न कर नीरोग हो कर जीवित रहता है॥ ३५-५९ ॥

अथ लोहकल्पे दन्त्यादिगणः—

दन्तीत्रिवृच्चित्रकहस्तिकर्णीव्योषाष्टवर्गत्रिफला विडङ्गम् ।
पलाशबीजाम्बुजजीरकैला व्याघ्री च दन्त्यादिरिह प्रदिष्टः ॥६०॥

दन्ती की शुद्ध जड़, त्रिवृत् की शुद्ध जड़, चित्रक की शुद्ध जड़, हस्तिकर्ण पलाश की छाल, सोंठ, मरिच, पीपल, अष्टव र्गअर्थात् जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, हरड़, बहेड़ा, आंवला, वायविडङ्ग, पलाश के बीज, नागरमोथा, जीरा, इलायची और कण्टकारी इन औषधियों को समभाग लेकर महीन चूर्ण करलें। ये ही औषधिएं मिल कर दन्त्यादि गण के नाम से कही जाती हैं ॥ ६० ॥

अथ ताम्रद्रुतिसंज्ञको लोहकल्पः—

आर्द्रालकुचभृङ्गाणां रसपिष्टेन कस्यचित् ।
गन्धकेन समांशेन प्राग्वताम्रं च मारितम् ॥ ६१ ॥
कञ्चुकस्थमिह त्रिंशत्कर्षं चूर्णितगन्धकम् ।
दत्वाऽल्पशोऽग्निनाऽल्पेन दत्त्वा धूमं विसर्जयेत् ॥ ६२ ॥
प्रस्थाम्बुमर्दितस्यास्य प्रसादान्निःसृतं युतम् ।
तुत्थनीलशिलाजाभ्यां कर्षांशाभ्यां विशोषयेत् ॥ ६३ ॥
ताम्रद्रुतिरियं साज्यमानुषीक्षीरमाक्षिका ।
काचार्मपिल्लाभिष्यन्दव्रणशुक्रगतिप्रणुत् ॥
तत्किट्टं दद्रुकिटिमपामार्दोल्लेपनाज्जयेत् ॥ ६४ ॥

अदरख, बडहर और भृङ्गराज इन तीनों में से किसी एक के स्वरस से ताम्र तुल्य गन्धक को घोट कर कल्क बना के ताम्रपत्रों पर प्रलेप करके पुटाग्नि में पाक करें। इस तरह भस्मीभूत ताम्र से ३० कर्ष भर ताम्रभस्म लेकर एक लोहे की कडाही में डाल कर उसे उपर चढाकर मन्द २ अग्नि जलावें। फिर ३० कर्ष शुद्धगन्ध लेकर उस में से थोडा २ गन्धक उस भस्म में डाल २ कर पकावें। बीच २ में गन्धक डाल कर थोडी २ देर के लिये ताम्रभस्म को किसी शराव से

ढक देना चाहिए तथा गन्धक जलकर उस का धुआं ढक्कन में भर जांय तथा ढक्कन उठाकर धुएं को निकाल दें और फिर थोडा सा गन्धक डाल कर ढक दें। इस तरह ३० कर्ष गन्धक के जारण कर लेने के पश्चात् कडाही को नीचे उतार कर स्वाङ्ग शीतल होने पर उस में १ प्रस्थ भर जल डाल कर खूब मर्दन करके थोडी देर के लिये चुपचाप रहने दें। जब ऊपर स्वच्छ पानी हो जाय तब धीरे २ उसे नितार कर बाहर गिरा दें तथा कडाही की तलीमें बची हुई भस्म में नील तुत्थ और मनःशिला दोनों को एक एक कर्ष भर डाल कर किसी खटाई के साथ घोट के सुखा कर शीशी में भर दें। यह ताम्रद्रुति घृत, स्त्री का दुग्ध और शहद के साथ मिलाकर नेत्रों में अञ्जन की तरह लगाने से काच (मोतिया बिन्दू), अर्म, पिल्ल, नेत्राभिष्यन्द, नेत्रव्रण, नेत्रशुक्र और नेत्रगति आदि नेत्रों के समस्त विकारों को नष्ट कर देती है। इस ताम्रद्रुति को बनाते समय जो किट्टभाग (मैल) निकाला है उसको निम्बू स्वरस में पीस कर प्रलेप करने से दाद, किटिम, पामा आदि चर्मरोगों को नष्ट कर देता है ॥ ६१-६४ ॥

अथ क्षयादौ खण्डखाद्याख्यलोहकल्पः—

वासाभार्ग्यमृताऽभीरुवचाखदिरपुष्करैः।
मुषलीभिक्षुकोरण्टैः सूर्पे चापां च मुष्टिकैः ॥ ६५ ॥
पक्केऽष्टशिष्टे ताम्रस्थे प्रस्थांशे खण्डसर्पिषी।
ताप्येन रुक्मलोहस्य हतस्याप्यञ्जलित्रयम् ॥ ६६ ॥
पक्केऽस्मिंल्लेहतां याते कुस्तुम्बुरु शिलाजतु।
शृङ्गीविडङ्गत्रिफलाजातीफलकटुत्रिकम् ॥ ६७ ॥
चातुर्जातं च शुक्त्यंशं प्रस्थार्धं च मधु क्षिपेत्।
खण्डखाद्यमिदं लीढं कर्षमात्रं रसायनम् ॥ ६८ ॥
क्षीरानुपस्य क्षपयेत्क्षयकासारुचिक्लमान्।
शीतपित्ताम्लपित्तास्रवातपित्तास्रकामलाः ॥
कुष्ठमेहप्लिहानाहकार्श्यं शूलं च पक्तिजम् ॥ ६९ ॥

अडूसा, भारङ्गी, गिलोय, शतावर, वचा, खैरसार, पोहकरमूल, मुषली, मुण्डतिका या तालमखाना और पीलीकटसरैया की जड़ इनमें से प्रत्येक को एकर पल लेकर एकत्र कूट पीसकर चूर्ण बनाके दो द्रोण जल में मिलाकर क्वाथ बनावें।

जब पानी जल कर अष्टमांश शेष रह जाय तब उतार कर क्वाथ को छान लें। फिर इस क्वाथ को ताम्र की कड़ाही में भरकर उसमें १ प्रस्थ खांड तथा एक प्रस्थ घृत तथा स्वर्णमाक्षिक भस्म के योग से बनाई हुई चांदी भस्म या कान्त लौह भस्म १२ पल मिलाकर पाक करें। पकते२ जब अवलेह के समान हो जाय तब नीचे उतार कर उसमें धनियां, शुद्ध शिलाजीत, काकड़ाशीङ्गी, वायविडङ्ग, त्रिफला अर्थात् हरड़ बहेडे आंवले, जायफल, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, नागकेशर और तेजपात इन प्रत्येक औषधियों का चूर्ण आधा२ पल तथा शहद् आधा प्रस्थ भर मिलाकर सबको बड़ी कलच्छी या लकड़ी से एकम एक करके घृत से स्निग्ध मिट्टी के बर्तन में भर दें। इसे खण्डखाद्य रसायन कहते हैं। १ कर्ष भर यह रसायन प्रतिदिन सेवन करके ऊपर से दुग्ध पान करने से क्षयरोग, खांसी, अरुची, क्लम (जी मिचलाना), शीतपित्त, अम्लपित्त, वातरक्त, रक्तपित्त, कामला, कुष्ठ, प्रमेह, प्लीहवृद्धि, आनाह (अफरा), कृशरोग और परिणाम शूल को नष्टकर देता है ॥ ६५-६९ ॥

अथ धातुभस्मनां पृथक्पृथक्तत्द्रोगेषु प्रयोगः—

अथ प्रथमद्वितीयलौहकल्पौ—

हेम्नो रूप्यस्य वा भस्म वरीभृङ्गाम्बुभावितम् ।
गुञ्जाप्रमाणं त्रिफलासितामध्वाज्यमिश्रितम् ॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं कामलापाण्डुकुष्ठजित् ॥ ७० ॥

स्वर्ण अथवा चांदी की भस्म को शतावर और भृङ्गराज के स्वरस से क्रमशः सात २ वार भावित करकें घोट कर सुखा के शीशी में भर दें। इसमें प्रतिदिन एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला का चूर्ण, चीनी, शहद् और घृत के साथ मिश्रित करके सेवन करने से बृंहण, वृष्य और आयु की वृद्धि होती है तथा कामला, पाण्डु और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ तृतीयलौहकल्पः—

गन्धकेन समांशेन प्राग्वत्ताम्रं च मारितम् ।
धान्याभ्रकं च तुत्थं च दशनिष्कं पृथक्पृथक् ॥ ७१ ॥
भावितं मातुलुङ्गाम्लेनाऽऽर्द्रकस्य रसेन च ।
ताम्रं सोष्णोदकं गुल्मप्लीहशूलामवातजित् ॥ ७२ ॥

समान भाग शुद्धगन्धक के योग से पूर्व विधि की अनुसार की हुई ताम्र की भस्म, धान्याभ्रक की भस्म और शुद्धनीलतुत्थ इन में से प्रत्येक को दश २ निष्क भर लेकर खरल में एकत्र घोटकर विजरे निम्बू के रस में सात बार भावित करके आदी के स्वरस से सात वार भावित करें पश्चात् घोट के सुखाकर शीशी में भर दें। यह ताम्र की भस्म उष्ण जल के साथ सेवन करने से गुल्म, प्लीहवृद्धि, शूल और आमवात को नष्ट करती है ॥ ७१—७२ ॥

अथ चतुर्थो लोहकल्पः—

मारितं त्रपुसीसं वा हारिणं श्रृङ्गमाकुली।
कार्पासवासितं तक्रं माहिषं च प्रमेहाजत् ॥ ७३ ॥

वङ्ग अथवा शीशे की भस्म, हरिण के श्रृङ्ग की भस्म और नाकुली कन्द के बीज इन तीनों को सम भाग लेकर कार्पास के लाल पुष्पों के स्वरस में सात वार घोट कर सुखा के शीशी में भर दें। इस औषध को भैंस की छाछ (मठे) के साथ प्रतिदिन सेवन करने से प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७३ ॥

अथ पञ्चमो लौहकल्पः—

नवनवतिस्त्रिफलाया मृतस्य नागस्य शततमो भागः
दार्व्याकुलीफलत्रयकनकजलप्रस्थपेषितं निखिलम् ॥ ७४ ॥
शतगुलिकाप्रमितं तत्पीतं तक्रेण मेहहरम्।
पिबतः कषायमभयादार्व्यक्षसमांशपाठायाः ॥ ७५ ॥

समभाग ली हुई त्रिफले का चूर्ण निन्यानवें तोला तथा १०० वां भाग अर्थात् १ तोला नागभस्म लेकर दोनों को एकत्र खरल में मिला के घोट लें। फिर दारूहलदी, नाकुलीकन्द, त्रिफला और धत्तूरे की जड़ इन्हें सम भाग लेकर चार प्रस्थ पानी में क्वाथ बना के एक प्रस्थ अवशेष रहने पर इस क्वाथ से उक्त औषध को खरल करके १०० गोलियां बना कर छाया में सुखा के शीशी में भर दें। इन १०० गोलियों में से प्रतिदिन दो २ गोली मठे के साथ पीकर ऊपर से हरड़, दारूहलदी, बहेड़ा और पाठा समभाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ७४—७५ ॥

षष्ठलौहकल्पः—

कृष्णलोहेन यात्कव्यो बालेनोपचितो हि सः।

कुमारयूनमध्ये तु वरमध्यावरे क्रमात् ॥
एकद्वित्रिगुणात्कालादुपयुक्तं गुणावहम् ॥ ७६ ॥

यह उपर्युक्त त्रिफला और नाग भस्म का योग मृदु पाक वाली कृष्ण लौह की भस्म के साथ प्रयोग करने से उपचित अर्थात् उत्कृष्ट गुण वाला योग बन जाता है। इस प्रकार का यह योग कुमारों (बालक) के लिये श्रेष्ठ, युवा पुरुषों के लिये मध्यम और मध्य अवस्था वालों के लिये निकृष्ट है। यदि इस योग का प्रयोग किया जाय तो बालकों के लिये थोडे समय में युवा के लिये द्विगुण समय में और मध्य आयु वालों के लिये तीन गुणे समय में लाभ प्रद होता है ॥ ७६ ॥

शूले सप्तमलौहकल्पः—

एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूःयोषसैन्धवम् ।
अन्तर्धूमं विदह्यायश्चूर्णं सोष्णाम्बु शूलजित् ॥ ७७ ॥

एरण्ड की जड़, चित्रक की जड़, शङ्खाहुली, पुनर्नवा की जड़, सोंठ, मरिच, पीपल और सैन्धव लवण तथा लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन चूर्ण करके शराव सम्पुट में बन्द करके पुट दे देवें। इस प्रकार अन्तर्धूम की विधि से भस्मीभूत हुई इस भस्म में से उचित मात्रा लेकर उष्ण जल के साथ पीने से शूल रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीर्णज्वरादौ अष्टमो लौहकल्पः—

त्रिफलामृतनिर्गुण्डीमेघनादपुनर्नवा ।
कासमर्दालिधत्तूरवज्रिणीनां रसैरिदम् ॥ ७८ ॥
भावितं गुडमध्वाज्यैर्जलतक्रानुपायिनः ।
स्वल्पक्षीररसांशस्य हन्याज्जीर्णज्वरं क्षयम् ॥
कुष्ठास्थिस्रावपाण्ड्वर्शपक्तिशूलप्लिहामयान् ॥ ७९ ॥

उपर्युक्त लौह मिश्रित एरण्डादि चूर्ण को त्रिफला, गिलोय, निर्गुण्डी, चोलाई, पुनर्नवा, कासमर्द (कसोञ्जी), वृश्चिकपत्री या अमरबेल, इन का स्वरस या क्वाथ तथा धत्तूर और थूहर का दुग्ध इनके साथ क्रमशः एक २ वार भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण बनाके शीशी में भर दें। इस चूर्ण को गुड़, शहद् और घृत में मिला कर सेवन करके ऊपर से मन्दोष्ण जल तथा मट्ठा पीना चाहिए तथा भूख लगने पर थोड़े से दुग्ध और मांस रस के साथ भोजन करें। इस विधि से

सेवन करने वाले पुरुष के जीर्णज्वर, क्षय, कुष्ठ, अस्थिस्राव, पाण्डु, अर्श, परिणामशूल और प्लीहा वृद्धि आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८–७९ ॥

अथ क्षयादौ नवमोलोहकल्पः—

बाकुचीनिम्बपञ्चाङ्गं वेल्लचित्रकवत्सकम् ।
पथ्यानागरशम्पाकगुडूचीकटुकीफलम् ॥ ८० ॥
खदिरासनसारेण भावितं लोहभस्म च ।
कर्षमात्रं समध्वाज्यं क्षयकुष्ठनिषूदनम् ॥ ८१ ॥

बाकुची, निम्ब का पञ्चाङ्ग, वायविडङ्ग, चित्रक, इन्द्रयब, हरड़, सोंठ, आरग्वध, गिलोय, कुटकी, मैनफल और लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में घोट के खैर सार और विजैसार के क्वाथ से क्रमशः सात २ वार भावित करके खरल कर लें। यह रसायन १ कर्ष भर लेकर शहद और घृत के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करने से क्षय और कुष्ठ रोग को नष्ट कर देता है ॥ ८०–८१ ॥

विविधरोगे दशमो लौहकल्पः—

गुडस्य कुडवे पक्वं लोहभस्म पलोन्मितम् ।
कोलप्रमाणं रोगेषु तैस्तैर्योगैः प्रयोजयेत् ॥ ८२ ॥

एक कुडव भर पुराना गुड़ लेकर उसकी चाशनी बनाकर उसमें १ पल भर उत्तम लौहभस्म मिला कर स्वाङ्गशीतल होने पर १ कोल के प्रमाण की गोलियां बना कर सुखा के शीशी में भर दें। इस रसायन को भिन्न २ रोग नाशक औषधियों के साथ प्रयुक्त करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८२ ॥

यक्ष्मादौ एकादशोलौहकल्पः—

व्योषादिनवकस्यांशस्तथांशो लोहभस्मनः ।
अंशोऽश्मजतुनः खण्डस्याष्टौ सर्वं समाक्षिकम् ॥
कान्तपात्रगतं यक्ष्मज्वरापस्मारघस्मरम् ॥ ८३ ॥

व्योषादि नव अर्थात् सोंठ, मरिच, पीपल, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक नागरमोथा, अजवाईन और जीरा इन सबको समभाग मिलाकर किया हुआ चूर्ण १ पल तथा लौहभस्म १ पल, शुद्धशिलाजीत १ पल और चीनी ८ पल लेकर खरल में घोट कर शहद मिला के कान्तलोह के पात्र में भर कर रख दें। यह रसायन राजयक्ष्मा, ज्वर और अपस्मार आदि रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ८३ ॥

अथ गरादौ द्वादशत्रयोदशलोहकल्पौ—

निम्बसारत्रिमधुरत्रिफलालोहगन्धकम् ।
चूर्णमर्जुनपत्र्या वा सभृङ्गत्रिफलायसम् ॥
सेवितं मधुसर्पिर्भ्यां जरावैरूप्यनाशनम् ॥ ८४ ॥

निम्ब का सार अर्थात् गोंद, त्रिमधुर अर्थात् शतावर, वाराही कन्द और विदारीकन्द अथवा घृत, गुड़ और शहद् (घृतं गुडो माक्षिकञ्च विज्ञेयं मधुरत्रयम्), त्रिफलाचूर्ण, लौहभस्म और शुद्धगन्धक इन्हें समभाग लेकर खरल में अच्छी तरह घोट कर शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा और अङ्ग वैरूप्य नष्ट हो जाते हैं। अथवा अर्जुन वृक्ष के कोमल पत्रों का चूर्ण, भृङ्गराज का चूर्ण, त्रिफलाचूर्ण और लौहभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में घोट के शहद् और घृत के साथ मिला कर उचित मात्रा में प्रतिदिन सेवन करने से जरा और अङ्ग वैरूप्य नष्ट हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

अथाम्लपित्तादौ चतुर्दशोलौहकल्पः—

मधुकं मृतलोहं च धात्री च त्रिगुणोत्तरम् ।
रसेन भावितं छिन्नरुहायाः साज्यमाक्षिकम् ॥ ८५ ॥
सेवितं भोजनस्यादौ वातपित्तामयाञ्जयेत् ।
मध्ये विष्टम्भमन्तेऽम्लपित्तं शूलं च पक्तिजम् ॥ ८६ ॥

मुलेठी चूर्ण १ पल, लौहभस्म ३ पल और आंवलों का चूर्ण ९पल भर लेकर तीनों को खरल में मिलाकर गुडूची के स्वरस से सातवार भावित करके घोटकर सुखा के शीशी में भर दें। इस रसायन को भोजन के पूर्व घृत और शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से वात और पित्त की दुष्टि से उत्पन्न रोगों को नष्ट करता है, भोजन के साथ सेवन करने से विष्टम्भ (कब्जीयत) और भोजन के अन्त में सेवन करने से अम्लपित्त और परिणाम शूल को नष्ट करता है॥ ८५-८६॥

अथ ग्रहण्यादौ पञ्चदशो लौहकल्पः—

भल्लातकसहस्राभ्यां त्रिफलामुस्तचित्रकैः ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गसहदेवीकुठेरकैः ॥ ८७ ॥
कणामूलाऽमृताचव्यैर्द्रोणेऽपां कुडवोन्मितैः ।
पक्वे पादस्थे लोहस्थे तुलार्धं तीक्ष्णलोहतः ॥ ८८ ॥

मणिकां च घृतात्पक्त्वा विडङ्गं चित्रकत्वचम्।
त्रिफला पञ्चलवणं त्र्यूषणं च पृथक् पलम्॥ ८९॥
पलानि सूरणस्याष्टौ वाराह्या वृद्धदारकम्।
चतुष्पलं पुष्परसस्यार्धप्रस्थं च निक्षिपेत्॥ ९०॥
प्रातर्भोजनकाले वा लीढमेतद्रसायनम्।
निहन्ति च ग्रहण्यर्शः शूलगुल्मकृमिक्षयान्॥ ९१॥

दो हजार शुद्ध भिलावें तथा त्रिफला, मोथा, चित्रक, गजपीपल, अपामार्ग, वृद्धदेवी, तुलसी, पिपरामूल, गिलोय और चव्य ये प्रत्येक एक२ कुडव लेकर थोड़ी२ कूट के १ द्रोण जल में क्वाथ बनाकर चोथाई शेष रहने पर उतार के छान कर लोहे की बडी कडाही में भर के उसमें तीक्ष्ण लौह भस्म आधी तुला अर्थात् ५० पल और घृत १ मणिका भर (३२ तो०) मिलाकर अच्छी तरह पाक करें। ठीक तरह से पक जाने के पश्चात् उसमें वायविडङ्ग चूर्ण १ पल, चित्रक की जड़ का चूर्ण १ प०, दालचीनीचूर्ण १ प०, त्रिफलाचूर्ण १ प०, पाचों लवण १ प०, त्र्यूषण अर्थात् सोंठ, मरिच और पिप्पली का चूर्ण १ पल तथा शुद्ध सूरण कन्द ८ पल, वाराहीकन्द ४ पल, वृद्धदारक (विधारे) की जड़ या शुद्ध बीजों का चूर्ण ४ प० और पुष्परस (शहद्) आधे प्रस्थ भर मिला कर अच्छी तरह घोट के मृतबाण मे भरकर रख दें। यह रसायन प्रातःकाल या भोजन के समय प्रतिदिन सेवन करने से ग्रहणी, अर्श, शूल, क्रिमि और क्षयरोग को नष्ट कर देता है॥ ८७-९१॥

अथ सर्वरोगे षोडशोलौहकल्पः—

अङ्कोल्ललोहमणिटङ्कणमाणिमन्थ-
ताप्यार्द्रकत्रिकटुतुत्थशिलाजतूनाम्।
भृङ्गोदकेन वटिकां च मसूरमात्रां
खादेज्जयाय जरसः सकलामयानाम्॥ ९२॥

अङ्कोल के बीज, लौहभस्म, मणिभस्म (मुक्ताभस्म), शुद्ध सुहागा, सैन्धव-लवण, स्वर्णमाक्षिक भस्म, अद्रक चू०, त्रिकटु चू०, शुद्धतुत्थ और शिलाजीत इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन पीस के भृङ्गराज के स्वरस की सात भावनाएं देकर खरल करके मसूर की बराबर गोलियां बनाकर छाया में सुखा के शीशी में

भर दें। इस रसायन को जरा (बुढौति) और समग्र रोगों को नष्ट कनेर के लिये प्रतिदिन सेवन करें ॥ ९२ ॥

कुष्ठे सप्तदशो लौहकल्पः—

अङ्कोल्लवेल्लाभ्रककान्तताप्यशिलाजतु व्योषफलत्रयाणाम्।
चूर्णं मुषल्याः समभागमेतत्कुष्ठानि लीढं मधुना धुनोति ॥ ९३ ॥

अङ्कोल के बीज वायविडङ्ग, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, शुद्धशिलाजीत, सोंठ, मरिच, पीपल, हरड़, बहेड़े, आंवले और मुषली इन्हें समभाग लेकर महीन करके मिलाकर शीशी में भर दें। यह रसायन शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है ॥ ९३ ॥

मेदःप्रभृतिरोगेष अष्टादशोलौहकल्पः—

कान्ताभ्रत्रिफलाविडङ्गरजनीताप्याब्ददेवद्रुम-
व्योषैलाग्निपुनर्नवाङ्घ्रिगिरिजाङ्कोलैः समं गुग्गुलुम्।
पिष्ट्वा भृङ्गजलेन सूक्ष्मगुटिकां खादेद्यथासात्म्यतो
मेदःश्लेष्मसमीरणोल्वणगदेष्वन्येषु वा पूरुषः ॥ ९४ ॥

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, हरड़चूर्ण, बहेड़ाचूर्ण, आंवलों का चूर्ण, विडङ्ग चूर्ण, हरिद्राचूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म, नागरमोथे का चूर्ण, पुनर्नवा की जड़ का चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत और अङ्कोल के बीजों का चूर्ण इन सब को समभाग लें तथा सब के बराबर शुद्ध गूगल लेकर सब को खरल में मिला के महीन पीस लें। फिर भृङ्गराज के स्वरस से सात वार भावित करके छोटी २ गोलियां बना कर छाया में शुष्क करके शीशी में भर दें। इन गोलियों को अपनी प्रकृति के अनुसार उचित मात्रा से विकृत मेद, कफ और वातजन्यरोग तथा अन्य उत्कट रोगों में सेवन करें ॥ ९४ ॥

कुष्ठे एकोनविंशोलौहकल्पः—

व्योषं कृष्णतिलासनस्य कुसुमं मण्डूरसैरेयकं
दार्वाशेलुसितात्रिवृत्क्रमिहरं भृङ्गाणि भल्लातकम्।
श्रेष्ठावाकुचिकान्तलोहजरसस्तत्कान्तपात्रे स्थितं
खादेत्कुष्ठहरं रसायनवरं मध्वाज्यसंयोजितम् ॥ ९५ ॥

सोंठ, मरिच, पीपल, काले तिल, विजैसार के पुष्प, मण्डूरभस्म, कटसरैया,

हरिद्रा, लिसोड़े के बीज, चीनी, त्रिवृत् की जड़, विडङ्ग, भृङ्गराज, शुद्धभिलावें, श्रेष्ठा अर्थात् शतावर या त्रिफला, वाकुची और कान्त लौह की भस्म इन्हें सम-भाग लेकर कूट पीस के कपड छान कर कान्तलौहपात्र या शीशी में भर दें। इस रसायन को शहद् और घृत के साथ प्रतिदिन सेवन करना चाहिए। यह सर्व प्रकारके कुष्ठों को नष्ट करता है तथा सब में श्रेष्ठ रसायन है॥ ९५॥

सर्वरोगेषुविंशतितमोलौहकल्पः—

मण्डूरत्रिफलासितेतरतिलाजातीविडङ्गाकुली-
बाकुच्यभ्रककान्तगन्धकनिशामाधूकसारं रजः।
पिष्ट्वा भृङ्गरसेन तस्य वटकान्खादेत्पयः पाचितान्
सर्वव्याधिहरान् रसायनवरान्मृत्योश्च मृत्युप्रदान्॥ ९६॥

मण्डूरभस्म, त्रिफला, काले तिल, जायफल, वायविडङ्ग, गन्धनाकुली, वाकुची, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, शुद्धगन्धक, हरिद्रा, महुए के पुष्पों का चूर्ण अथवा मुलेठी सत्त्व और पित्तपापड़ा इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के भृङ्गराज के स्वरस के साथ खरल कर के आधे २ तोले भर के वटक बनाकर दुग्ध में पका के सुखा कर शीशी में भर दें। सर्व रोगनाशक, सर्व रसायनों में श्रेष्ठ तथा यमराज को भी मारने वाले अर्थात् अकालमृत्यु को दूर करने वाले ऐसे इन वटकों का प्रति-दिन उचित प्रमाण से सेवन करना चाहिए॥ ९६॥

नेत्ररोगे कान्तनागाख्यएकविंशलौहकल्पः—

बध्वान्यस्तमहस्त्रयं कमलिनीपत्रे सधात्रीरसे
धौतं भृङ्गरसेन चुम्बकरजोयुक्तं द्विभागोत्तरम्।
स्थाल्यां षड्गुणरक्तमारिषरसे यद्दारुदर्व्या धृतौ
सञ्चाल्याम्भसि कल्कशोषितमिदं शीतेक्षणाद्गालयेत्॥ ९७॥
तस्मादादाय मूषायां स्वल्पायां द्रावयेद्धनम्।
कान्तनागोऽयमुदकेनाञ्जनं नयनामृतम्॥ ९८॥

चुम्बक लौह १ भाग तथा नागभस्म दो भाग लेकर दोनों को एकत्र खरल में महीन घोटकर स्वच्छ कपड़े में बांध कर पोटली बना लें। फिर एक हण्डिका में कमल के पत्ते तथा आंवलों का रस भरकर दोलायन्त्र की विधि से उस में पोटली लटका कर तीन दिन रहने दें। चौथे दिन पोटली में से उस चूर्ण को

निकाल कर भृङ्गराज के स्वरस से घोटकर धो डालें। फिर लौह से ६ गुना लाल डण्डी वाली चोलाई के स्वरस को लोहे की कड़ाही में भरकर उसी में उस चूर्ण को डाल कर पकावें तथा थोडी२ देर में लकडी की कलच्छी से चलाता रहे। पकाते२ जब जलीयांश नष्ट होकर कल्क के समान दिखाई देने लगे तब नीचे उतार कर ठण्ढे जल में डाल दें तथा थोडी देर के पश्चात् उस जल में से निकालकर छोटी सी मूषा में बन्द करके अग्नि में पिघलावें। ठीक तरह के पिघल जाने पर उसकी लम्बी सलाई बना लेनी चाहिए। यह कान्त लौह और नाग की बनी हुई सलाई जल के साथ घिसकर आंखों में अञ्जन की तरह लगाने से अमृत के समान गुण करती है ९७-९८

अथ रसायने द्वाविंशलौहकल्पः—

कान्तपात्रे श्रृतं क्षीरं रसायनमनुत्तमम् ॥ ९९ ॥

कान्त लौह की बनी हुई कड़ाही में दुग्ध को गरम करके शीतल कर पीने से वह उत्तम रसायन के समान गुणकारक होता है ॥ ९९ ॥

अथारिष्टलक्षणे त्रयोविंशलौहकल्पः—

हेम धात्रीरसं क्षौद्रं गायत्रीरसभावितम् ॥
लिहन्ननुपिबन्क्षीरं दृष्ट रिष्टोऽपि जीवति ॥ १०० ॥

खदिर के सार के क्वाथ से सात वार भावित की हुई स्वर्णभस्म को आंवले के रस और शहद् में मिला कर प्रति दिन सेवन करके बाद में दुग्ध पीने से मृत्युकारक अरिष्ट लक्षण या स्वप्नादिकों को देखा हुआ मनुष्य भी नीरोग होकर जीवित रहता है ॥ १०० ॥

अथ जरादौ चतुर्विंशलौहकल्पः—

मधुमागधिकाविडङ्गसारत्रिफलाहेमघृतं सितां च खादन् ।
जरयानवलीढदेहकान्तिः समधातुश्च समाः शतं स जीवेत् ॥१०१॥

जो मनुष्य प्रति दिन पिप्पली, विडङ्ग, त्रिफला इनके चूर्ण और स्वर्णभस्म इन्हें शहद्, घृत तथा चीनी में मिलाकर सेवन करता है वह बुढौति से आक्रान्त न होकर, देह की दिव्य कान्ति प्राप्त करके समधातु होकर १०० वर्ष तक जीवित रहता है ॥ १०१ ॥

अथ पञ्चविंशादिलौहकल्पचतुष्टयम्—

आयुःकामः शङ्खपुष्प्या समेतं । मेधाकामः काञ्चनं सोग्रगन्धम् ।

लक्ष्मीकामः पद्मकिञ्जल्कयुक्तं खादेत्कामं कामकामो विदार्याः ॥१०२॥

दीर्घायु की कामना वाला शङ्खपुष्पी के चूर्ण के साथ, बुद्धि की कामना वाला वचाचूर्ण के साथ, लक्ष्मी (देहशोभा) की कामना वाला कमल की केशर के साथ तथा काम (सम्भोग) की इच्छा वाला विदारी कन्द के चूर्ण के साथ नित्यप्रति ¼ रत्ती स्वर्ण भस्म को सेवन करके ऊपर से दुग्ध पान किया करें ॥१०२॥

रसायने षड्विंशलौहकल्पः—

सपद्मबीजामलकाभयाद्यं सर्पिर्मधुभ्यां कनकं लिहन्तः।
दीर्घायुषो मन्दजरापतापाः सरीसृपाणां च भवन्त्यगम्याः ॥१०३॥

कमल के बीज, आमलक चूर्ण, हरड़ चूर्ण, बहेड़े का चूर्ण और घृत तथा मधु में स्वर्ण भस्म को मिलाकर नित्य प्रति सेवन करने वाले पुरुष दीर्घायु प्राप्त करते हैं तथा जरा और सन्ताप से रहित होते हैं तथा वे सर्पादि जन्तुओं के भय से भी निर्मुक्त हो जाते हैं ॥ १०३ ॥

अथ मृतलौहानां रसत्वकथनादिकम्—

मृतानि लोहानि रसीभवन्ति निघ्नन्ति रोगान्परिशीलितानि।
क्रियापचारस्य समग्रयोगात्पुष्यन्ति धातूनतिदीर्घमायुः ॥१०४॥

इतिश्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वाग्भटाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
मृतलोहकल्पनिरूपणनामाऽष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

उत्तम शास्त्रोक्त विधियों से मारण करने पर लौह अर्थात् स्वर्ण ताम्रादि अष्ट धातुएं पारद भस्म के समान गुण कारक तथा रसायन होती हैं तथा यथाव्याधिहर अनुपानों के साथ नित्यप्रति सेवन करने से समग्र रोगों को नष्ट करती हैं तथा आहार विहार आदि के पथ्य पूर्वक करते हुए इन्हें सेवन करते रहने से ये धातुए रस, रक्त, मांस और मेदादि धातुओं को पुष्ट करती है तथा दीर्घ आयु को देती हैं १०४

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वलाख्य-भाषा-टीकायां मृत-
लौहकल्पनिरूपणं नाम अष्टविंशोऽध्यायः ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथ विषकल्पः—

अथ विषोत्पत्तिस्तद्भेदाश्च ।

ईश्वर उवाच—

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि यत्रोत्पन्नं महाविषम् ।
भेदास्तस्य वरारोहे ! यत्र यत्र सविस्तरम् ॥ १ ॥
देवदैत्योरगाः सिद्धा गन्धर्वा यक्षराक्षसाः ।
पिशाचाः किन्नराश्चैव मिलित्वा च वरानने ! ॥ २ ॥
एकतो बलिराजश्च ब्रह्माद्याश्च तथैकतः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नागराजेन वेष्टितम् ॥ ३ ॥
क्षीराब्धिमथनं तत्र प्रारब्धं सुरसुन्दरि ! ।
निर्गतास्तत्र रत्नौघाः कामधेन्वादयः प्रिये ! ॥ ४ ॥
अमला कमलोत्पन्ना पश्चादुच्चैःश्रवास्ततः ।
ऐरावतो महाकायो निर्गतं देवि ! चामृतम् ॥ ५ ॥
अतीव मन्थनाद्देवि ! मन्दराघातवेगतः ।
अहिराजश्रमाद्देवि ! विषज्वाला विनिर्गता ॥ ६ ॥
ततोऽतिघोरा सा ज्वाला निमग्ना क्षीरसागरे ।
तया तत्रैव चोत्पन्नं कालकूटं महाविषम् ॥ ७ ॥
प्रलयानलसङ्काशं क्रुद्धः काल इवोत्कटः ।
तं दृष्ट्वा विबुधाः सव दानवाश्च महाबलाः ॥ ८ ॥
विषण्णवदनाः सद्यः प्राप्ताश्चैव मदन्तिकम् ।
ततस्तैः प्रार्थ्यमानोऽहमपिबं विषमुत्तमम् ॥ ९ ॥

पुराकाल में श्रीमहादेव बोले कि हे देवि? हे वरारोहे? पार्वति जहां पर यह महा विष उत्पन्न हुआ है उसको तथा इस विष के भेदों का मैं विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूं सो सुनो । हे देवताओं में सुन्दरि, एक समय देवता, दैत्य, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच और किन्नर ये सब मिल कर क्षीरसागर के मन्थन (दोहन) करने के विचार से वहां गये । वहां जाकर मन्दराचल को मन्थान बनाकर तथा उसे शेषनाग से वेष्टित करके एक तरफ देवता तथा दूसरी तरफ

बलिराज आदि दैत्यों ने शेषनाग के दोनों सिरों को पकड़ कर समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया। हे प्रिये इस तरह समुद्र के मन्थन करने से श्रेष्ठ रत्नों के समूह तथा कामधेनु आदि वस्तुएं निकलीं। सर्व प्रथम निर्मल काया वाली लक्ष्मी उत्पन्न हुई तथा उसके पश्चात् उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा निकला। तदनन्तर महान काया वाला ऐरावत हाथी और अमृत निकला। इनके निकलने के पश्चात् भी हे देवि ज्यादा समुद्रमन्थन करने से मन्दराचल के द्वारा बार२ आघात लगने के कारण थके हुए अहिराज (शेषनाग) के शरीर से विष की ज्वाला उत्पन्न हुई। पश्चात् वह अत्यन्त भयानक ज्वाला क्षीरसमुद्र में विलीन हो गई। उस ज्वाला से क्षीरसमुद्र में कालकूट नामक महाविष उत्पन्न हुआ जो कि प्रलयकारी अग्नि तथा अत्यन्त क्रोधित हुए यमराज के समान था। उस काल कूट विष को देख कर सब देवता और महाबलशाली दानव दुःखित मुख वाले होकर मेरे पास आये तथा उन्होंने यहां आकर मेरी बहुत प्रार्थना की। इस प्रकार प्रार्थना करने से उस विष को मैं पी गया ॥ १-९ ॥

अथ स्थावरविषाणांजातिभेदाः—

ततोऽवशिष्टमभवन्मूलरूपेण तद्विषम्।
पत्ररूपेण कुत्रापि मृत्तिकारूपतः क्वचित् ॥ १० ॥
कुत्रचित्तोयरूपेण धातुरूपेण कुत्रचित्।
कन्दरूपेण कुत्रापि त्रयोदशविधं विषम् ॥ ११ ॥

मेरे पीने से जो विष बच गया वह कहीं मूल रूप से, कहीं पत्र रुप से, कहीं मृत्तिका रूप से, कहीं जल रूप से, कहीं धातु रूप से और कहीं कन्दरुप से इस तरह वह संस्थान (आश्रय) भेद से तेरह स्वरूप का हो गया ॥ १०-११ ॥

नोट—कहीं तेरह प्रकार के कन्दविषों के रुप में हो गया, यह अर्थ ठीक है क्यों कि आगे कन्द विष के तेरह भेद बतावेंगे तथा सुश्रुतादियों ने भी कन्दविषों के तेरह भेद बताये हैं।

यथा—कालकूट वत्सनाभ, सर्षप, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृङ्गीविष प्रपुण्डरीक मूलक, हालाहल, महाविष, कर्कटकानीति त्रयोदश कन्दविषाणि। सुश्रुतः ॥

अथ कन्दविषाणां नामानि—

तेषु श्रेष्ठं कन्दविषं त्रयोदशविधं स्मृतम् ।
कर्कटं कालकूटं च वत्सनाभं हलाहलम् ॥ १२ ॥
बालुकं कर्दमं चैव सक्तुकं मूलकं तथा ।
सर्षपं शृङ्गिकं देवि ! मुस्तकं च महाविषम् ॥
हारिद्रकमिति प्रोक्तं त्रयोदशविधं विषम् ॥ १३ ॥

सर्व प्रकार के विषों में कन्दविष अत्यन्त श्रेष्ठ होता है तथा यह तेरह प्रकार का कहा गया है । यथा—कर्कट, कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, बालुक, कर्दम, सक्तुक, मूलक, सर्षप, शृङ्गिक, मुस्तक, महाविष और हारिद्रक इस तरह कन्दविष के तरह भेद हैं ॥ १२-१३ ॥

अथ कर्कटादिकन्दविषाणां लक्षणम्—

कर्कटं कपिवर्णं स्यात्काकचञ्चुनिभं पुनः ।
कालकूटं ततो ज्ञेयं वत्सनाभं तु पाण्डुरम् ॥ १४ ॥
भङ्गुराकन्दवद्देवि ! नीलवर्णं हलाहलम् ।
बालुकं बालुकाभं च कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ १५ ॥
सक्तुकं श्वेतवर्णं स्याच्छुक्लकन्दं तु मूलकम् ।
सर्षपं पीतवर्णं स्याच्छृङ्गिकं कृष्णपिङ्गलम् ॥ १६ ॥
मुस्ताभं मुस्तकं प्रोक्तं रक्तवर्णं महाविषम् ।
हरिद्रकं पीतवर्णं विषभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ १७ ॥

कर्कट विष कपिशवर्ण का, कालकूट कोए की टोढी (चोञ्च) के समान, वत्सनाभ पाण्डुवर्ण का तथा हे देवि हालाहल विष भङ्गुरा अर्थात् अतीसकन्द के समान तथा नीले वर्ण का, बालुक विष रेत के समान दानेदार, कर्दमविष कीचड़ के समान चिपचिपा, सक्तुकविष श्वेत रङ्ग का, मूलकविष सफेद कन्द के समान गांठदार, सर्षपविष पीले वर्ण का, शृङ्गी विष काला और पीलिमा लिये हुआ, मुस्तकविष मोथे के समान गांठदार, महाविष लाल वर्ण का और हारिद्रक विष पीले वर्ण का होता है । इस तरह विष भेद कहे गये हैं ॥ १४-१७ ॥

अथ श्वेतादिवर्णभेदेन विषाणां जातिभेदः—

चतुर्धा वर्णभेदेन विषं ज्ञेयं मनीषिभिः ।

ब्रह्मक्षत्रियविट् शूद्राः श्वेतरक्ताश्च पीतकाः ।
कृष्णवर्णः क्रमाज्ज्ञेयो वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १८ ॥

वर्ण अर्थात् जाति और रङ्ग के भेद से बुद्धिमान मनुष्य विषों के चार प्रकार समझें। जैसे ब्राह्मण जाति का विष श्वेत, क्षत्रियजाति का विष लाल, वैश्यजाति का विष पीला और शूद्रजाति का विष काला होता है। इस प्रकार वर्णों के अनुसार यथा क्रम से ही विष की चार जातियां होती हैं ॥ १८ ॥

अथ वर्णभेदेन विषाणां क्रियाभेदः—

मारणे कृष्णवर्णं स्याद्रक्तं तु रसकर्मणि ।
पीतवर्णं क्षुद्रकार्ये श्वेतवर्णं रसायने ॥ १९ ॥

किसी धातु को मारने के लिये कृष्णवर्ण का विष, रसायन कर्म अथात् शरीरपुष्टि के लिये लालवर्ण का विष, क्षुद्रकार्य अर्थात् साधारण कार्य के लिये पीत वर्णका विष और रसायन औषधियों में डालने के लिये श्वेत वर्ण का विष प्रयुक्त होता है। भावप्रकाश में भी विष का उपयोग इस प्रकार बताया है।

यथा—रसायने विषं विप्रं क्षत्रियं देहपुष्टये ।
वैश्यं कुष्ठविनाशाय शूद्रं दद्याद्वधाय हि ॥ इति ॥ १९ ॥

अथ विषामृतयोः तुल्ययोनित्वनिर्देशः—

क्षीरोदसागरे देवि ! मथ्यमाने वरानने ।
उत्पन्नममृतं देवि तथोत्पन्नं महाविषम् ॥ २० ॥
मात्रया भक्षितं देवि ! विषमप्यमृतायते ।
मात्राधिकं वरारोहे ह्यमृतं हि विषं भवेत् ॥ २१ ॥

हे वरानने ? देवि, क्षीरसागर के मन्थन करते समय अमृत और विष दोनों ही पृथक् २ उत्पन्न हुए हैं तथा गुण भी दोनों के भिन्न हैं फिर भी मात्रा पूर्वक सेवन करने विष भी अमृत के समान गुण कारी हो जाता है और हे सुन्दर मुख वाली देवि ? मात्रा से अधिक प्रयुक्त करने पर अमृत भी विष के समाम हानिकर होता है। इस लिये मात्रा ही सब वस्तुओं के विष या अमृत होने में कारण है ॥ २०-२१ ॥

अथ रसायनार्थं विषप्रयोगे विधिः—

विषं युञ्जीत नित्यं वै रसायनगुणेषिणः ।

घृतोपस्कृतदेहस्य विशुद्धस्य हिताशिनः ॥ २२ ॥

रसायन गुण की कामना रखने वाले शरीर की वमन विरेचनादि के द्वारा देह शुद्धि किए हुए, सारे शरीर में घृत की मालिश कर के हिताहार करने वाले के लिये विष का प्रयोग करें ॥ २२ ॥

अथ विषप्रयोगार्हपुरुषकालयोर्निर्देशः—

सात्त्विकस्योदिते भानौ योज्यं शीतवसन्तयोः ।
ग्रीष्मे चात्ययिके व्याधौ, न वर्षासु न दुर्दिने ॥ २३ ॥
न क्रोधिनि न पित्तार्ते न क्लीबे राजवेश्मनि ॥ २४ ॥
क्षुत्तृष्णाश्रमघर्माध्वव्याध्यन्तरनिपीडिते ।
गर्भिण्यां बालवृद्धेषु न रूक्षेषु न च मर्मसु ॥ २५ ॥

उपर्युक्त प्रकार से शुद्ध शरीर वाले तथा सात्विक पुरुष को प्रातःकाल सूर्योदय में शीत और वसन्त ऋतु में विष सेवन करने को दें। परन्तु किसी भयङ्कर व्याधि के उत्पन्न हो जाने पर उसे नष्ट करने के लिये ग्रीष्म ऋतु में भी प्रयुक्त कर सकते हैं किन्तु वर्षा और दुर्दिन समय में विष का प्रयोग नहीं करें, एवं क्रोधी, पित्त व्याधि से पीड़ित, नपुंसक, राजा के गृह तथा क्षुधा, तृष्णा, श्रम, धूप, मार्गश्रम और रोग से पीड़ित तथा गर्भिणी, बालक, वृद्ध, रुक्ष (वातिक प्रकृति) और मर्म स्थान के रोग से पीड़ित इतने में विष का प्रयोग सर्वथा वर्जित है ॥ २३-२५ ॥

अथ विषे निषिद्धद्रव्याणि—

अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्ज्यवस्तु निवर्तयेत् ।
कट्वम्ललवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् ॥ २६ ॥

बहुत दिनों तक विष के सेवन करते २ अभ्यास हो जाने पर भी नित्य ही पथ्य पदार्थों का सेवन करें तथा अपथ्य पदार्थों का त्याग कर दें। विशेष रूप से कटु, अम्ल, लवण, तैल, दिवा शयन, अग्नि के सन्निकट रहना, धूप में घूमना या काम करना ये सब वर्जित हैं ॥ २६ ॥

अथ अवस्थाविशेषे विषस्यापकरत्वनिर्देशः—

दृग्विभ्रमं कर्णरुजमन्यांश्चानिलजान्गदान् ।
विषं रूक्षाशिनः कुर्यान्मृत्युमेव त्वजीर्णिनः ॥ २७ ॥

रूक्ष पदार्थों का भोजन करने वाले पुरुष के लिये प्रयुक्त किया हुआ विष उस के नेत्रों में विकार, कानों में पीड़ा तथा अन्य वायु जन्य विकारों को उत्पन्न करता है तथा अजीर्णी पुरुष के लिये प्रयुक्त किया हुआ विष उस की तत्काल मृत्यु ही कर देता है ॥ २७ ॥

विषविद्रावणघृतम्—

विजया पिप्पलीमूलं पिप्पलीद्वयचित्रकैः ।
पुष्कराह्वा सटी द्राक्षा यमानीक्षारदीप्यकैः ॥ २८ ॥
सितायष्टिद्विबृहतीसैन्धवैः पालिकैः पचेत् ।
सविषार्धपलैः प्रस्थं घृतात्तज्जीर्णभुक् पिबेत् ॥ २६ ॥
दुर्नामभेहगुल्मार्मतिमिरकृमिपाण्डुकान् ।
गलग्रहग्रहोन्मादकुष्ठानि च नियच्छति ॥
विषविद्रावणं नाम घृतं विषरुजं हरेत् ॥ ३० ॥

भाङ्ग, पिपरामूल, पिप्पली, हरितपिप्पली, चित्रक, पुष्करमूल, कचूर, द्राक्षा, अजवाईन, यवक्षार, अजमोदा, मिश्री, मुलेठी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और सैन्धव लवण ये प्रत्येक एक २ पल लें तथा शुद्ध विष आधा पल भर लेकर सबको महीन कूट पीस के एकत्र मिलाकर कल्क बनाकर एक प्रस्थ भर घृत में मिला के अष्टगुण जल मिलाकर पाक करें। जब घृतमात्र शेष रह जाय तब उसे छान कर शीशी में भर दें तथा कल्क को फेंक दें। इस घृत को मात्रा से खाली पेट पर अर्थात् खूब तेज भूख लगने के समय पीना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन सेवन करने से यह घृत अर्श, प्रमेह, गुल्म, अर्म, तिमिर, कृमि, पाण्डुरोग, गले की जकड़ाहट, नवग्रह, उन्माद और समस्त प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है। यह विष विद्रावण नामक घृत विषजन्य पीडा को निश्चय ही दूर कर देता है॥ २८–३०॥

अथ श्वित्रारितैलम्—

लाक्षासुराह्वमञ्जिष्ठाकुष्ठपद्मकसारिवाः ।
गुञ्जा मही कुरवको लाङ्गली वज्रकन्दकः ॥ ३१ ॥
वाराहीकन्दकास्फोता सप्ताह्वा गिरिकर्णिका ।
अर्काश्वमारयोर्मूलं नागपुष्पं नतं निशे ॥ ३२ ॥
दन्तीविषं हस्तिविषं पिप्पल्यौ मरिचानि च ।

तैस्तैलं कटुतैलं वा चित्रस्याभ्यञ्जनं पचेत् ॥
सवर्णकरणं श्रेष्ठमास्तिकस्य वचो यथा ॥ ३३ ॥

लाख, देवदारू, मञ्जीठ, कूट, पद्माख, सारिवा, गुञ्जा (रत्ती), मद्दी अर्थात् गम्भारी, लाल फुल वाली झिण्टी (कटसरैया), कलिहारी की जड़, वाराहीकन्द, आस्फोता (कोयल), सप्तपर्ण, गिरिकर्णिका (श्वेत अपराजिता), आक की जड़, कनेर की जड़, नागकेशर, नत अर्थात् तगर, हरिद्रा, दन्ती की जड़, वत्स-नाभ विष, हस्तिविष (हाथी की विष्ठा या विष विशेष), छोटी पीपल, गज पीपल और मरिच , इन सबको बराबर २ लेकर चूर्ण करके साधारण जल या गोमूत्र से पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चतुर्गुण तिल तैल अथवा सरसों का तैल तथा चौगुना या अठगुना पानी या गोमूत्र लेकर कड़ाही में भस्म कर के कल्क और तैल मिलाकर पाक करें। तैल शेष रहने पर उतार कर छान लें। यह तैल चित्र अर्थात् श्वित्र (श्वेत कुष्ठ) की जगह पर प्रतिदिन मालिस करने से वहां का वर्ण शरीर के अन्य वर्ण (रङ्ग) के समान हो जाता है। जिस तरह आस्तिक वचन सत्य हो जाता है तद्वत् यह तैल भी श्वित्र को निश्चय ही नष्ट करता है ॥ ३१-३३ ॥

अथ सूर्यप्रभा वर्तिः—

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा तिन्तिडीफलसक्तुकैः ।
अभयालोध्रकतकनिशाशङ्खकणोषणैः ॥ ३४ ॥
मनःशिलाकरञ्जाक्षबीजोग्राफेनसैन्धवैः ।
अजाक्षीरैः समविषैर्वर्तयोः विहिता हिताः ॥
शुक्लार्ममांसपिल्लेषु ग्रन्थिगण्डार्बुदेषु च ॥ ३५ ॥

लाल चन्दन, मञ्जीठ, इमली के पके हुए फल, सक्तुक नाम का शुद्ध विष, हरड़, पठाणी लोध, निर्मलीफल, हरिद्रा, शङ्खनाभि, पीपल, मरिच, मैनसील, करञ्ज की जड़, बहेड़े की गिरी, वचा, समुद्रफेन, सैन्धवलवण और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग लेकर महीन चूर्ण बना के महीन कपड़े से छानकर बकरी के दुग्ध में तीन दिन तक खरल करके छोटी २ वर्तियां बना के सुखाकर शीशी में भर दें। इन वर्तियों को जल से पीसकर नेत्र में आञ्जने से सफेद फूला, अर्म, मांसपिल्ल (आंख का बढ़ा हुआ मांसल भाग) आदि नेत्ररोगों में तथा ग्रन्थि

(प्लेग ग्रन्थि), गण्डमाला और अर्बुद में लाभ करती हैं ॥ ३४-३५ ॥

अथ विषादिगुटिका—

विषशुल्वरसव्योषगन्धकानां पलं पलम्।
पलद्वयं हरीतक्याश्चित्रकस्य पलत्रयम् ॥ ३६ ॥
कौन्ती मुस्ता चतुर्जातं कर्षांशं च विचूर्णितम्।
त्रिगुणश्च गुडः कार्या वटिका माषसम्मिता ॥
भक्षयेत्तां जराग्रस्तो महारोगैश्च पीडितः ॥ ३७ ॥

शुद्ध वत्सनाभ विष, ताम्रभस्म, पारद, सोंठ, मरिच, पीपल और शुद्ध गन्धक इन्हें एक २ पल भर लें तथा हरड का चूर्ण २ पल चित्रक की जड़ का चूर्ण ३ पल तथा रेणुका, नागरमोथा, चतुर्जात अर्थात् दालचीनी, एलायची, तेजपात और नागकेशर ये प्रत्येक एक २ कर्ष भर तथा गुड़ तीन कर्ष भर लेकर सब का महीन चूर्ण कर के एकत्र खरल में घोटकर थोड़ा सा जल मिला के खरल कर एक २ माशे भरकी गोलियां बना के सुखा कर शीशी में भर दें। इन गोलियों को बुढौती से ग्रसित तथा भयङ्कर रोगों से पीड़ित मनुष्य प्रतिदिन सेवन करें ॥ ३६-३७ ॥

जयागुटी—

भस्मसूतगुडक्षौद्रघृतैः सह निषेवितम्।
जरां जयेदतो नाम्ना गुटिकेयं जयोदिता ॥ ३८ ॥

पारद की भस्म, गुड, शहद और घृत इन के साथ शुद्ध विष मिलाकर घोट के गोली बना लें। ये गोलियां बुढौति (जरा) को नष्ट करती हैं, इस लिये जयोदिता या जयागुटिका के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीया जयागुटी—

वासाऽमृताखदिरनिम्बविडङ्गपथ्य-
क्काथे विषत्रिकटुचित्रकलोहतिक्ताः।
आवाप्य माषतुलिता वटिका प्रणीता
क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठजातम् ॥ ३९ ॥

अडूसा, गिलोय, खदिरसार, निम्ब का पञ्चाङ्ग, वायविडङ्ग और हरड इनका क्वाथ बनाकर इस क्वाथ से शुद्ध वत्सनाभविष, त्रिकटु, चित्रक, लोह की भस्म और कुटकी इन के समभाग मिश्रित चूर्ण को एक दिन तक खरल करके एक २

माशे भर की गोलियां बनाकर सुखा के शीशी में भर दें। इन में से एक एक गोली प्रतिदिन पीस कर शहद् के साथ मिला के सेवन करने से क्षय और सर्व प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देती है ॥ ३९ ॥

तीया जयागुटिका—

वचाश्वगन्धा मरिचोपकुल्यातालीशमुस्तापिचुमर्दपाठाः ।
विषं च तेषां वटिका जयन्त्यः फले प्रयोगे च जयासमानाः ॥ ४० ॥

वचा, असगन्ध, मरिच, पीपल, तालीशपत्र, नागरमोथा, नीम की छाल, पाठा और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग लेकर कूट पीस के महीन चूर्ण बना कर एक २ माशे भर की गोलियां बना लें। ये गोलियां फल में और प्रयोग में उपर्युक्त जया गुटिकाओं के समान हैं ॥ ४० ॥

अथ विषस्य मात्रानिर्देशः—

आरोटं भक्षयेद् देवि ! विषं सर्षपमात्रकम् ।
प्रथमे दिवसे पश्चाद्द्वितीयादौ द्विसर्षपम् ॥ ४१ ॥
पञ्चमे दिवसे देवि ! भक्षयेत्सर्षपत्रयम् ।
षट्सप्ताष्टदिनेऽप्येवं नवमे वेदसंख्यया ॥
भक्षयेद्राजिकावृद्ध्या यावद्गुञ्जामितं भवेत् ॥ ४२ ॥

हे देवि ? प्रथम दिन १ सरसों के बराबर आरोट अर्थात् शुद्ध विष (सुशोधितोरसः सम्यगारोट इति कथ्यते) का सेवन करें तथा दूसरे दिन से चौथे दिन तक दो २ सरसों के बराबर तथा हे देवि ? पाञ्चवें दिन तीन सर्षप के बराबर तथा छटे, सातवें और आठवें दिन तक भी तीन २ सर्षप के समान ही सेवन करें। नवमें दिन ४ सरसों के बराबर विष सेवन करना चाहिए। नौ दिन के पश्चात् एक २ राई के बराबर प्रतिदिन विष की मात्रा बढावें तथा बढाते २ जब १ रत्ती तक मात्रा हो जाय तब न बढावें और जब तक सेवन करने की इच्छा हो तब तक प्रति दिन एक २ रत्ती भर ही सेवन करें ॥ ४१-४२ ॥

अथ प्रयोगकालभेदेन विषस्य क्रियाविशेषः—

मासत्रयप्रयोगेण कुष्ठान्यष्ट हरेद्विषम् ।
पुण्डरीकं सविस्फोटं श्वेतमौदुम्बरं तथा ॥ ४३ ॥
छिन्नभिन्नं कपालाख्यं क्लिन्नाढ्यं शवगन्धि च ।

कुष्ठानि गदितान्यष्ट हन्याद् देवि! महाविषम् ॥४४॥
षण्मासस्य प्रयोगेण कामरूपो भवेन्नरः।
सम्वत्सरप्रयोगेण सर्वरोगान्व्यपोहति॥
द्विवत्सरप्रयोगेण दिव्यदेहो भवेन्नरः॥ ४५॥

उपर्युक्त विधि से मात्रा को धीरे २ बढा कर एक महीने तक विष को सेवन करने से आठों प्रकार के कुष्ठों को नष्ट कर देता है। १ पुण्डरीक नामक कुष्ठ, २ फोडे फुन्सी युक्त कुष्ठ, ३ श्वेत कुष्ठ, ४ औदुम्बर कुष्ठ, ५ छिन्न भिन्न हुआ कुष्ठ, ६ कपाल कुष्ठ, ७ क्लिन्न कुष्ठ (गलित्कुष्ठ) और ८ शवगन्धिकुष्ठ इस तरह ये आठ प्रकार के कुष्ठ कहे गये हैं। महाविष इन आठों कुष्ठों को नष्ट कर देता है। ६ मास तक यथाविधि विष के प्रयोग करने से मनुष्य कामदेव के समान रुप वाला हो जाता है। एक वर्ष तक प्रयोग करने से विष मनुष्यों के सर्व प्रकार के रोगों को नष्ट कर देता है। विष के दो वर्ष तक प्रयोग करने से मनुष्य देवताओं के समान दिव्य अर्थात् सुन्दर देह वाला हो जाता है॥ ४३-४५॥

अथ विषशोधनप्रयोगः—

अथ गोमूत्रसंयुक्तमातपे शोषयेत्त्र्यहम्।
विषं बृंहणमेतद्धि विषस्यादौ प्रशस्यते॥ ४६॥

एक मिट्टी के पात्र में गोमूत्र भर कर उसमें वत्सनाभविष अथवा अन्य कोई विष डाल कर तीन दिन तक धूप में सूखने दें। गोमूत्र सूख जाय तो और गोमूत्र डालना चाहिए तथा प्रति दिन प्रातः काल पूर्वमूत्र को निकाल कर नया गोमूत्र डालना चाहिए। गोमूत्र के द्वारा शोधन करने से विष का बल अर्थात् गुण बढ़ जाता है। किसी प्रकार का विष हो उसे प्रथम गोमूत्र में शुद्ध करना चाहिए, फिर उसकी अन्य विशेष शुद्धि करें॥ ४६॥

अथ नवज्वरे विषकल्पः—

तत्पिबेन्मस्तुना वातज्वरे क्षीरेण पित्तजे।
अजामूत्रेण कफजे सर्वजे त्रिफलाम्भसा॥ ४७॥

शुद्धविष को मस्तु के साथ वातिक ज्वर में, दुग्ध के साथ पैत्तिक ज्वर में, बकरी के मूत्र के साथ कफजज्वर में और त्रिफला के क्वाथ के साथ सान्निपातिक ज्वर में प्रयुक्त करना चाहिए॥ ४७॥

अथ जीर्णज्वरे विषकल्पः—

रोध्रचन्दनषड्ग्रन्थाशर्कराघृतमाक्षिकैः ।
क्षीरेण च विषं युक्तं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ ४८ ॥

लोध, चन्दन, पिपरामूल इन का समभाग चूर्ण अथवा क्वाथ बनाकर उसमें शर्करा, घृत और शहद् तथा दुग्ध मिला कर फिर $\frac{1}{8}$ रत्ती विष मिलाकर पी लें। इस तरह सेवन करने से विष जीर्ण ज्वर को नष्ट करता हैं ॥ ४८ ॥

अथ जीर्णज्वरादौ विषकल्पः—

निकुम्भकुम्भत्रिफलासर्पिर्मधुविषैः कृतः ।
निहन्ति मोदको जीर्णज्वरमेहत्वगामयान् ॥ ४९ ॥

दन्ती की जड़, निशोथ (त्रिवृत्) की जड़, त्रिफला और शुद्ध वत्सनाभ विष इनको समभाग लेकर महीन कूट पीस के घृत और शहद् मिला कर मोदक बनाके यथोचित मात्रा से सेवन करना चाहिए। यह मोदक जीर्णज्वर, प्रमेह और चर्म के रोगों को नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

अथ विषमज्वरे विषकल्पः—

शिखिकर्णिरसोपेतं विषमज्वरजिद्विषम् ॥ ५० ॥

शिखिकर्णी अर्थात् अरणी (अथवा शिखि-चित्रक, कर्णी—आरग्वध—अमलतास) की जड़ का क्वाथ बना कर इस के अनुपान से शुद्ध विष सेवन करने से विषमज्वर को नष्ट करता है ॥ ५० ॥

अथ रक्तपित्ते विषकल्पः—

विषं यष्ट्याह्वयं रास्ना सेव्यमुत्पलकन्दकम् ।
तण्डुलोदकपीतानि रक्तपित्तस्य भेषजम् ॥ ५१ ॥

विष को उचित मात्रा से लेकर मुलेठी, रास्ना और कमलगट्टा इन के समभाग गृहीत चूर्ण के साथ मिला कर चांवलों के धोवन के साथ पीने से रक्तपित्त नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ श्वासकासे विषकल्पः—

रास्नाविडङ्गत्रिफलादेवदारुकटुत्रयम् ।
पद्मकं क्षौद्रममृता विषं च श्वासकासजित् ॥ ५२ ॥

रास्ना, वायविडङ्ग, त्रिफला, देवदार, त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पीपल)

कमल गट्टा और गिलोय और शुद्ध विष इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के एकत्र मिला कर शीशी में भर दें। इस चूर्ण को एक माशे भर लेकर शहद् के साथ मिला के सेवन करने से श्वास और कास रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

अथ श्वासहिक्कयो र्विषकल्पः—

सितारसविषक्षीरप्रवालमधुकान्विता।
श्वासहिक्कापहा लीढा; ॥ ५३ ॥

सिता (चिनी), रस अर्थात पारद की भस्म, शुद्ध वत्सनाभ विष और प्रवाल भस्म इन्हें उचित प्रमाण से लेकर शहद् में मिला कर सेवन करें तथा ऊपर से दुग्ध का अनुपान करने से श्वास रोग और हिचकी दूर हो जाती है ॥ ५३ ॥

अथ छर्द्यां विषकल्पः—

छर्दिघ्नास्तु विषान्विताः।
क्षौद्रोशीरमधुक्षाररजनीकुटजत्वचः ॥ ५४ ॥

खस काचू०, मुलेठी चू०, यवक्षार, हरिद्रा चू० और कूडे की छाल का चूर्ण तथा शुद्ध वत्सनाभ षिष इन्हें सम भाग लेकर शहद् के साथ मिला कर सेवन करने से वमन बन्द हो जाता है ॥ ५४ ॥

अथ क्षये विषकल्पः—

च्यवनप्राशनोपेतं विषं त्तपयति क्षयम् ॥ ५५ ॥

१ तो० च्यवन प्राश के साथ ½ रत्ती भर शुद्ध वत्सनाभ विष मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से दुग्ध पान करें। इस विधि से विष क्षयरोग को नष्ट करता है ॥ ५५ ॥

अथ ग्रहण्यां विषकल्पः—

मुस्तावत्सकपाठाग्निव्योषप्रतिविषाविषम्।
धातकीमोचनिर्यासः चूतास्थिग्रहणीहरम् ॥ ५६ ॥

नागर मोथा, इन्द्रयव अथवा कूडे की छाल, पाठा, चित्रक की जड़, त्रिकटु, अतीस, शुद्ध वत्सनाभ विष, धातकी अर्थात् आंवले या धाय के पुष्प, मोचरस और आम की गुठली के भीतर की गिरी इन्हें सम भाग लेकर खरल में महीन कूट पीस के चूर्ण बना कर शहद् से चाट कर ऊपर से शीतल जल पीने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५६ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रे विषकल्पः—

कृच्छ्रघ्नं विषपथ्याग्निदन्तिद्राक्षानिशावृषाः ॥ ५७ ॥

शुद्ध वत्सनाभ विष, हरड़, चित्रक की जड़, दन्ती की जड़ द्राक्षा, हरिद्रा और अड़ूसा इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण बना के उष्ण जल के साथ सेवन करने से मूत्र कृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ५७ ॥

अथ उदावर्ताश्मर्योः विषकल्पः—

शिलाजतु विषं त्र्यूषमुदावर्ताश्मरीहरम् ॥ ५८ ॥

शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध वत्सनाभ विष, सोंठ, मरिच, पीपल इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन पीस के शहद के साथ सेवन करने से उदावर्त्त और अश्मरी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५८ ॥

अथाश्मर्यां विषकल्पः—

गोमूत्रक्षारसिन्धूत्थविषपाषाणभेदकम् ।
वज्रवद्दारयत्येतदेकतः पीतमश्मरीम् ॥ ५९ ॥

१ पल भर गोमूत्र में यवक्षार, सैन्धव लवण, शुद्ध वत्सनाभ विष और पाषाण भेद (पत्थर चट्टे) का सम भाग मिश्रित चूर्ण मिला कर सेवन करने से वज्र के समान अश्मरी को निश्चय ही फाड़ के गला कर निकाल देता है ॥५९॥

अथ गुल्मे विषकल्पः—

त्रिफलास्वर्जिकाक्षारैर्विषं गुल्मप्रभेदनम् ॥ ६० ॥

त्रिफला का चूर्ण, सज्जि खार और वत्सनाभ विष इन का समभाग मिश्रित चूर्ण को उष्णजलानुपान पूर्वक सेवन करने से गुल्म का नष्ट कर देता है ॥ ६० ॥

अथ शूले विषकल्पः—

पिप्पलीपिप्पलीमूलं विषं शूलहरं तथा ॥ ६१ ॥

पिप्पली, पिपरामूल और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग कूट पीस कर चूर्ण बना के शहद तथा उष्णोदकानुपान के साथ सेवन करने से शूल नष्ट होता है ॥६१॥

अथ गुल्मप्लीह्नोः विषकल्पः—

विषं द्रवन्ती मधुकं द्राक्षारास्नाशठीकणा ।
विषं वेल्लमिषित्तीरं गुल्मप्लीहनिबर्हणम् ॥ ६२ ॥

शुद्ध वत्स नाभ विष, द्रवन्ती अर्थात् दन्ती की जड़, मुलेठी, दाख, रास्ना,

कचूर, पिप्पली, अतीस, वायविडङ्ग और सौंफ इन का सम भाग चूर्ण बना कर दुग्धानुपान के साथ सेवन करने से गुल्म और प्लीहा वृद्धि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६२ ॥

अथ प्लीह्नि विषकल्पः—

प्लीहोदरघ्नं पयसा शतारुक्रमिजिद्विषम् ॥ ६३ ॥

शतावर, वायविडङ्ग और शुद्ध वत्सनाभ इन का सम भाग कृत चूर्ण को दुग्ध के साथ प्रतिदिन सेवन करने से प्लीहवृद्धि और जलोदरादि उदर विकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३ ॥

अथ कुष्ठे विषकल्पः—

वायसीमूलनिष्क्राथपीतं कुष्ठहरं विषम् ॥ ६४ ॥

मकोय की जड़ के क्वाथ के अनुपान से विष का सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६४ ॥

अन्योविषकल्पः—

पयस्या राजवृक्षत्वक् त्रायन्तीवाकुचीबलात् ।
प्लीहघ्नीभकणाभ्यां च विषं क्वाथेन कुष्ठजित् ॥ ६५ ॥

क्षीरकाकोली, अमलतास की छाल, त्रायमाणा, बाकुची, वरियारा, रोहीतक की छाल और गजपीपल इनका क्वाथ बना कर इस क्वाथ के अनुपान से विष का सेवन करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६५ ॥

कुष्ठघ्नोलेपः—

अवल्गुजैडगजयोर्बीजं क्षारद्वयं विषम् ।
लेपः ससैन्धवः पिष्टो वारिणा कुष्ठनाशनः ॥ ६६ ॥

बाकुची, चक्रमर्द के बीज, यवक्षार, सज्जीखार, शुद्ध वत्सनाभ विष और सैन्धव लवण इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण करके जल के साथ पीस कर प्रलेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६६ ॥

अथ विचर्चिकादौ विषकल्पः—

चित्रकार्कजटाहस्तिपिप्पलीवाकुचीविषैः ।
सचन्द्रकैरण्डगजकरञ्जफलसैन्धवैः ॥ ६७ ॥
सव्योषस्वर्जिकाक्षारयवक्षारनिशाद्वयैः ।
अगारधूमसहितैर्बस्तमूत्रेण कल्पितैः ॥ ६८ ॥

भल्लातकाग्निशम्पाकविषैर्वा मूत्रपेषितैः ।
लेपो विचर्चिकादद्रूरसिकाकिटिमापहः ॥ ६९ ॥

चित्रक की जड़, आक की जड़, गज पीपल, वाकुची, शुद्ध वत्सनाभ विष, कपूर या चौंच के बीज, चकवड़, करञ्ज के फल की गिरी, सैन्धव लवण, सोंठ, मरिच, पीपल, सज्जीखार, यवक्षार, हलदी, दारूहलदी और रसोई घर का धुआं, इन्हें समभाग ले कर बकरे के मूत्र के साथ खरल करके लेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है । अथवा शुद्ध भिलावें, चित्रक की जड़, अमलतास और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें समभाग ले कर चूर्ण करके बकरे के मूत्र से खरल कर प्रलेप करने से विचर्चिका, दाद, खुजली और किटिम आदि कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ६७—६९ ॥

अथ विचर्चिकादौ विषकल्पः—

शम्पाकपत्रत्वङ्मूलं विषं तक्रं च तद्गुणम् ॥ ७० ॥

अमलतास के पत्ते, छाल, जड़ और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण कर के मट्ठे के साथ पीस कर प्रलेप करने से पामा, दद्रु आदि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७० ॥

अथ कुष्ठे विषकल्पः—

कुष्ठतुम्बरुबीजानि वाजिगन्धाम्लवेतसम् ।
हरिद्रा वायसी रास्ना हरितालं मनःशिला ॥ ७१ ॥
पटोलनिम्बपत्राणि कणागन्धकसैन्धवम् ।
विषं दारु शिरीषास्थि तक्रं लेपेन कुष्ठजित् ॥ ७२ ॥

कूठ, तुम्बरु के बीज, असगन्ध, अमलवेंत, हलदी, कौआ ठोडी, रास्ना, शुद्ध हरताल, शुद्ध मैनसील, परवर के पत्ते, नीमके पत्ते, पिप्पली, शुद्धगन्धक, सैन्धव लवण, शुद्ध वत्सनाभ विष, देवदार, शिरीष के बीजों की छाल या शिरीष की जड़ इन्हें सम भाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बनाकर मट्ठे के साथ खरल करके प्रलेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ७१–७२ ॥

विषतैलम्—

करञ्जकरवीरार्कमालतीरक्तचन्दनैः ।
आस्फोताकुष्ठमञ्जिष्ठासप्तच्छदनिशानतैः ॥ ७३ ॥

सिन्दुवारवचाद्रेडैर्गवां मूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं कुष्ठहरं तैलं दुष्टव्रणविशोधनम् ॥ ७४ ॥

करञ्ज की जड़, करवीर (कनेर) की जड़, आक की जड, चमेली की जड़, लाल चन्दन, नेवारी की जड़, कूठ, मञ्जोठ, सप्तपर्ण, हलदी, तगर, निर्गुण्डी की जड़, वचा और विष इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चौगुना तिल या सरसों के तैल तथा चौगुना ही गोमूत्र लेकर कड़ाही में सबको मिला के भट्टी पर चढ़ाकर यथाविधि तैल पका लें। यह कुष्ठनाशक तैल प्रलेप करने से दुष्टव्रण का शोधन करता है तथा मर्दन करने से श्वित्रादि कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ ७३-७४ ॥

कुष्ठहरतैलम्—

कुष्ठाश्वमारभृङ्गार्कमूलस्नुक्क्षीरसैन्धवैः ।
तैलं सिद्धं विषावापमभ्यङ्गात्कुष्ठजित्परम् ॥ ७५ ॥

मीठा कूठ, कनेर की जड़, भृङ्गराज, आक की जड़, थूहर का दुग्ध और वत्सनाभ विष इन्हें कूट पीसकर गोमूत्र या जल से पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चतुर्गुण तैल और चतुर्गुण जल इन सबको कड़ाही में डालकर तैल पाक करें। यह तैल अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ को नष्ट करता है ॥ ७५ ॥

अथ कुष्ठादौ चन्दनादितैलम्—

भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्घनैः ।
गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ॥ ७६ ॥
ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ।
प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ॥
पानाद्यैः शीलितं कुष्ठदुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ ७७ ॥

सफेद चन्दन, देवदार, हलदी, दारुहलदी, निशोथ और नागरमोथा ये प्रत्येक एक २ पल तथा वत्सनाभविष आधा पल लेकर चूर्ण बनाकर गोमूत्र में पीसकर कल्क बना लें। फिर कल्क से चौगुना ब्राह्मीस्वरस, उतना ही आक का दुग्ध और उतना ही गाय के गोबर का रस तथा सरसों का तैल १ प्रस्थ भर लेकर सबको कड़ाही में डालकर तैल पाक करें। इस तैल को दुग्ध के साथ पीने से तथा

प्रलेप और अभ्यङ्गादि करने से कुष्ट, दुष्ट नाडी व्रण और अपची को शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ७६–७७ ॥

अथ श्वित्रादौ विषकल्पः—

विषं भल्लातकीद्वीपिगुञ्जानिम्बफलैर्जयेत् ॥
लेपोऽम्लपिष्टैः श्वित्राणि पुण्डरीकं च दारुणम् ॥ ७८ ॥

वत्सनाभविष, शुद्ध भिलावां, चित्रक की जड़, गुञ्जा (रत्ती) और नीम के फलों की गिरी इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके निम्बू के रस या खट्टी छाछ से पीसकर प्रतिदिन प्रलेप करने से सर्व प्रकार के सफेद कोढ तथा असाध्य पुण्डरीक कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अन्यो योगः

ककुभारुष्करद्वीपिस्पृक्कापत्रैलवालुकम् ।
पिष्टं खादिरतोयेन त्रिरात्रमुषितं पिबेत् ॥ ७९ ॥
श्वित्री विषेण सङ्घृष्टं, तत्तत्स्फोटान्किलासजान् ।
कण्टकेन विभिद्याशु लेपैर्लिम्पेच्च कौष्ठिकैः ॥ ८० ॥

अर्जुन की छाल, शुद्ध भिलावां, चित्रक की जड़, असवरग, तेजपात और एलुआ इनको समभाग लेकर चूर्ण बना के खैर की छाल के क्वाथ या कत्थे के पानी के साथ घोटकर तीन दिन तक उसी में भीगो कर रख दें। तीन दिन के बाद उसमें शुद्ध वत्सनाभ विष का चूर्ण मिलाकर जल के साथ पीस लें तथा इसी औषध कल्क को श्वेतकुष्ठ पर प्रलेप करने से छाले पड़ जाते हैं। उन छालों को कांटे से फोड़कर इसी कल्क का अथवा अन्य कुष्टनाशकौषधियों का प्रलेप कर दें। इस तरह उक्तौषध के द्वारा उपचार करने से श्वेतकुष्ठ शीघ्रही नष्ट हो जाता है ॥७९–८०॥

अन्यो योगः—

अथवा करवीरार्कमूलबाकुचिकाविषैः ।
बस्ताम्बुपिष्टैः सद्वीपिद्विपपिप्पल्यरुष्करैः ॥ ८१ ॥

अथवा उक्तकुष्ठ के फोड़ों पर कनेर की जड़, आक की जड़, वाकुची, शुद्ध वत्सनाभ विष, चित्रक की जड़, गजपीपल और शुद्ध भिलावें इन्हें समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बना के बकरे के मूत्र से पीसकर प्रलेप करना चाहिए ॥ ८१ ॥

अथ वाते विषकल्पः—

एरण्डतैलं त्रिफला गोमूत्रं चित्रकं विषम् ।
सर्पिषा सहितं पीतं वातार्त्तत्वमपोहति ॥ ८२ ॥

एरण्ड (रेंडी) का तैल, त्रिफला चूर्ण, गोमूत्र, चित्रक की जड़ का चूर्ण और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें उचित मात्रा से लेकर घृत के साथ आलोडित कर के पीने से वातजन्य पीडा दूर हो जाती है । अथवा त्रिफला चूर्ण, चित्रक चूर्ण और विष इन्हें सम भाग लेकर गोमूत्र से पीस कर कल्क बना लें, फिर इस कल्क से एरण्ड तैल पका कर घृत के साथ मिला कर पान करना चाहिए ॥८२॥

अथ अग्निदाहे विषकल्पः—

कोरकं चीरनिष्क्वाथे लाङ्गलीविषसर्षपैः ।
गन्धकाङ्कोल्लमरिचैः सस्नुक्क्षीरैर्विपाचितम् ॥
जयेज्ज्योतिष्मतीतैलमनलत्वग्गदानपि ॥ ८३ ॥

कोरक अर्थात् शीतल चीनी अथवा क्षीरकाकोली, कलिहारी की जड़, शुद्ध विष, सरसों, शुद्ध गन्धक, अङ्कोल के बीज, मरिच, इन द्रव्यों को समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण बना कर थूहर के दुग्ध के साथ घोट कर कल्क बनालें । फिर इस कल्क से कपास के बीजों के काढे के साथ मालकङ्गुनी का तैल यथा विधि बना कर शीशी में भर दें । यह तैल लेप अभ्यङ्गादि करने से अग्नि से जलने के कारण उत्पन्न हुए त्वचा के रोगों को नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

अथ वन्ध्यायां विषकल्पः—

स्वरसं बीजपूरस्य वचाब्राह्मीरसं घृतम् ।
वन्ध्या पिबन्ती सविषं सुपुत्रैः परिवार्यते ॥ ८४ ॥

बिजौरे निम्बू का रस, वचा का स्वरस, ब्राह्मी का स्वरस और घृत इन्हें घृत पाक विधि से पका कर जब घृतमात्र शेष रह जाय तब उस में शुद्ध वत्स-नाभ विष का चूर्ण मिला दें । इस घृत के पीने से वन्ध्या स्त्री भी अच्छी सन्तान से युक्त हो जाती है । अथवा वचा और विष को सम भाग लेकर चूर्ण कर के मातुलुङ्ग के स्वरस और ब्राह्मी स्वरस तथा घृत के अन्दर मिला कर प्रति दिन पीते रहने से उक्त फल होता है ॥ ८४ ॥

अथ मूढगर्भे विषकल्पः—

वीरालाङ्गलीकादन्तीविषपाषाणभेदकैः ।
प्रयोज्यो मूढगर्भाणां प्रलेपो गर्भमोचनः ॥ ८५ ॥

वीरा अर्थात् पृश्निपर्णी अथवा बड़ी शतावर, कलिहारी की जड़, दन्ती की जड़, शुद्धवत्सनाभविष और पाषाणभेद इन्हें समभाग लेकर जल से पीस कर हाथ पैर के तलुए तथा पेड़ू के ऊपर प्रलेप करने से मूढ गर्भ उपद्रव युक्त स्त्रियों का गर्भ (बच्चा) आसानी से बाहर निकल आता है ॥ ८५ ॥

अथ बुद्धिवर्धने विषकल्पः—

देवदारुविषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका ।
वचा वाक्स्खलनं हन्ति बुद्धेश्च परिवर्धनम् ॥ ८६ ॥

देवदार, शुद्ध वत्सनाभ विष, कटेरी और बचा इन को समभाग लेकर कूट पीस के चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को घृत में मिला कर प्रतिदिन सेवन करें तथा ऊपर से १ पल गोमूत्र पीने से जिह्वास्तम्भ रोग (रुक २ कर बोलना) नष्ट हो जाता है तथा बुद्धि बढ़ती है। अथवा देवदार, विष, कटेरी और विष इन्हें गोमूत्र में पीस कर कल्क बना लें। फिर कल्क को चोगुने गोघृत तथा गोमूत्र में मिला कर घृत सिद्ध करके छान लें। १ तोले भर घृत को मन्दोष्ण दुग्ध में मिला कर सेवन करने से उपर्युक्त गुण होते हैं ॥ ८६ ॥

अथ तिमिरे विषकल्पः—

विषं सर्पिः सिता क्षौद्रं तिमिरापहमञ्जनम् ॥ ८७ ॥

शुद्ध विष के चूर्ण को घृत, चीनी और शहद् में मिला कर आखों में आञ्जने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

तिमिरे द्वितीयो विषकल्पः—

विषं चैकमजाक्षीरकल्कितं घृतधूपितम् ॥ ८८ ॥

बकरी के दुग्ध से विष को पीस कर कल्क बना के निर्धूम अङ्गार पर घृत डाल कर उस धूएं से कल्क को धूपित करके आखों में अञ्जन लगाने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

तिमिरे तृतीयो विषकल्पः—

विषं धात्रीफलरसैरसकृत्परिभावितम् ।

अञ्जनं शङ्खसहितं प्रगाढं तिमिरं जयेत् ॥ ८९ ॥

शङ्खनाभि और विष इन दोनों को खूब महीन पीस कर आंवलों के स्वरस से सात वार भावित करके खरल कर लें। इसका अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८९ ॥

अथ काचे विषकल्पः—

विषमिन्द्रायुधं स्तन्यैर्घृष्टं काचजिदञ्जनम् ॥ ९० ॥

विष और हीरे की भस्म दोनों को समभाग लेकर पीस के स्त्री या गौ के दुग्ध से खरल करके अञ्जन करने से काच रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

द्वितीयो विषकल्पः—

बीजपूररसैर्घृष्टं विषं तद्वत्सितान्वितम् ॥ ९१ ॥

विष और चीनी को समभाग लेकर बिजौरे निम्बू के स्वरस के साथ खरल करके अञ्जन करने से काचरोग नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

तृतीयो विषकल्पः—

विषं मागधिका द्वे च निशि काचघ्नमञ्जनम् ॥ ९२ ॥

विष और पिप्पली के सम भाग चूर्ण को बिजौरे निम्बू के रस से खरल करके अञ्जन करने से काच रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९२ ॥

शुक्लार्मजिद्विषकल्पः—

शुक्लार्मजिद्विषं कृष्णायुक्तं गोमूत्रभावितम् ॥ ९३ ॥

विष और पिप्पली के समभाग चूर्ण को गोमूत्र से सात वार भावित करके अञ्जन करने से नेत्र की सफेदी और अर्म रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९३ ॥

अथ शुक्लादौ विषकल्पः—

समुद्रफेनं स्फुटिका कुरुविन्दरसोञ्जनम् ।
कूर्मपृष्ठं च तुल्यानि तेभ्योऽर्धांशमनःशिला ॥ ९४ ॥
अर्धमानानि मरिचसैन्धवायोरजांसि च ।
अथो यथोत्तरं दद्यादयसा च समं विषम् ॥ ९५ ॥
रसक्रियेयं मधुना शुक्लपिल्लार्मकाचनुत् ॥
अभीक्ष्णं शीततोयेन सिञ्चेन्नेत्रं विषार्दिते ॥ ९६ ॥

समुद्र फेन, फिटकरी, पद्मराग मणि की भस्म, रसाञ्जन और कछुए के पीठ

का चर्म या हड्डी का चूर्ण ये सम भाग तथा इन के मिलित चूर्ण की अपेक्षा अर्द्ध भाग शुद्ध मैन सील तथा मैन सील से आधा मरिच चूर्ण, मरिच से आधा सैन्धव लवण, लवण से आधी लौह भस्म और लौह भस्म के बरा बर शुद्ध वत्स नाभ विष लेकर इन का महीन चूर्ण बना के सहद् के साथ खरल कर नेत्रों में आञ्जने से नेत्र की शुक्लता (फूला, माडा आदि), पिल्ल, अर्म और काच रोग नष्ट हो जाते हैं। विष युक्त अञ्जनादिकों के लगाने के पश्चात् नेत्रों को ठण्ढे जल से बार २ धोते रहना चाहिए ॥ ९४-९६ ॥

अथ पिल्ले विषकल्पः—

रसोनकन्दमरिचविषसर्षपसैन्धवैः।
पिल्लेक्षणहितं कार्यं सुरसारसपेषितैः॥
पूरयेत्सर्पिषा चानु सर्पिरेव च पाययेत्॥ ९७॥

लहसून की गिरी, मरिच, वत्सनाभ विष, सरसों और सैन्धव लवण इन्हें बरा बर २ लेकर महीन चूर्ण कर के तुलसी के स्वरस के साथ सात वार भावित कर के पिल्ल रोग युक्त (रूग्ण) नेत्रों में अञ्जन करना चाहिए तथा अञ्जन करने के पश्चात् आंख को गोघृत से भर दें तथा थोड़ा सा घृत पिला दें ॥ ९७ ॥

अथ नक्तान्ध्ये विषकल्पः—

मधूकसारमधुकविषक्षीरजलैर्घृतम्।
पक्वं सन्तर्पणं श्रेष्ठं नक्तान्ध्ये त्वचिरोत्थिते॥ ९८॥

मुलेठी का सत्त, महुए के पुष्प और शुद्ध वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस के कल्क बना लें। फिर कल्क से चतुर्गुण घृत और घृत के बरा बर दुग्ध तथा चतुर्गुण जल लेकर सब को बड़ी कड़ाही में डाल कर पकावें। घृत के सिद्ध हो जाने पर छान के शीशी में भर दें। यह घृत स्वल्प काल के नक्तान्ध्य (तिमिर) रोग में नेत्रों में लगाने से रोग नष्ट हो जाता है तथा नेत्र तृप्त हो जाते हैं॥ ९८ ॥

अथ नक्तान्ध्ये अन्यविषकल्पः—

अञ्जनं नरपित्तेन रोचनामधुशृङ्गिभिः॥ ९९॥

गोरोचन, मुलेठी का सत्त और शृङ्गी विष इन्हें सम भाग लेकर चूर्ण कर के मनुष्य के पित्त से पीस कर अञ्जन लगाने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट होजाता है॥९९॥

अथ कर्णशूले विषकल्पः—

स्वर्जिकाक्षारसिन्धूत्थं शुक्लशुक्लं वरं विषम् ।
कर्णयोः पूरणं तीव्रकर्णशूलनिवर्हणम् ॥ १०० ॥

सज्जिखार, सैन्धव लवण, श्वेत लोध या श्वेत रेंडी की जड़, केसर और विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस के स्वरस निचोड़ कर कानों के भीतर टपकाने (पूरण करने) से तीव्र कर्ण शूल नष्ट हो जाता है ॥ १०० ॥

अथ शिरःशूले विषकल्पः—

नस्यं शिरोरुक्शमनं प्रत्यक्पुष्पीसिताविषम् ॥ १०१ ॥

अपामार्ग के बीज, चीनि और विष इन्हें समभाग ले के पीसकर नस्य करने से शिर की पीड़ा नष्ट हो जाती है ॥ १०१ ॥

शिरःशूले द्वितीयो विषकल्पः—

अथवा घृतयष्ट्याह्वशर्कराविषसंयुता ॥ १०२ ॥

अथवा तगर, मुलेठी, चीनी और विष इनका चूर्ण बनाकर नस्य लेने से शिर की पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ १०२ ॥

अथ पूतिनस्ये विषकल्पः—

शुण्ठी पथ्या विषं पाठा त्रायन्ती पूतिनासजित् ॥ १०३ ॥

सोंठ, हरड़, विष, पाढल और त्रायमाणा इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके नस्य लेने से पूतिनासा अर्थात् नाक की दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ १०३ ॥

अथ मुखरोगे विषकल्पः—

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठाविषतिन्दुसमुद्भवैः ।
निहन्ति साधितं तैलं गण्डूषेण मुखामयान् ॥ १०४ ॥

श्वेतकमल, मञ्जीठ, विष और तिन्दुक इन्हें जल से पीस कर कल्क बनाकर चतुर्गुण तिलतैल और चतुर्गुण जल के साथ मिला कर तैल सिद्ध कर लें । इस तैल के द्वारा गण्डूष (कुरले) करने से मुखरोग दूर हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

मुखरोगेऽन्योविषकल्पः—

एलाखादिरकङ्कोलजातिकर्पूरचन्दनैः ।
बोलाब्दवालैर्द्विगुणविषैः साराम्बुपेषितैः ॥
समूत्रा वटिकाः क्लृप्ता धृता घ्नन्ति मुखामयान् ॥ १०५ ॥

छोटी इलायची, खदिरसार (कत्था), कंकोल (शीतल चीनी), चमेली

या जायफल, कपूर, लाल चन्दन, बोल (गन्धबोल), नागर मोथा और सुगन्ध वाला ये सब वस्तुएं सम भाग तथा सब से द्विगुण शुद्धविष और एक भाग की अपेक्षा द्विगुणविष लेकर सब का महीन चूर्ण कर के खैरसार के पानी से सात वार भावित करके घोटें तथा १ वार गोमूत्र से खरल कर के गोलियां बनाकर सुखा लें। इन वटियों को मुख में रख कर प्रति दिन चूसने से मुख के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १०५ ॥

अथ पलितादौ विषकल्पः—

कटुतैलविषं नस्यं पलितारुंषिकापहम् ॥ १०६ ॥

कटुतैल में विष मिला कर नस्य लेने से पलित और शिर की रूसी नष्ट हो जाती है ॥ १०६ ॥

अथ खलतौ विषकल्पः—

स्नुह्यर्कक्षीरभृङ्गाम्बुगोमूत्रहलिनीविषैः।
गुञ्जाविशालामरिचैः कटुतैलं विपाचितम् ॥
खलतिं शमयति ; ॥ १०७ ॥

थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, कलिहारी की जड़ का चूर्ण, वत्सनाभविष, गुञ्जाचूर्ण, इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण और मरिचचूर्ण इन्हें समभाग लेकर एकत्र मिला के कल्क बनाकर चतुर्गुण भृङ्गराज स्वरस तथा चतुर्गुण गोमूत्र में मिलादें, तथा चतुर्गुण कटुतैल मिला कर बड़ी कड़ाही में तैल सिद्ध कर लें। यह तैल शिर में प्रतिदिन लगाते रहने से खलति रोग नष्ट हो जाता है ॥ १०७ ॥

अथ दिग्धाहते विषकल्पः—

अम्लपिष्टमष्टगुणं विषात् ।
सिन्धूत्थकार्पासफलं पिण्डितं सह सर्पिषा ।
क्षीरेणाजेन वा लेपाद्विषदिग्धायुधव्रणुत् ॥ १०८ ॥

विष एक भाग तथा अम्ल के साथ पीसे हुए सैन्धवलवण और कार्पास बीजों के कल्क के आठ भाग लेकर तीनों का एकत्र पिण्ड बना के घृत या बकरी के दुग्ध के साथ घोट कर प्रलेप करने से विष से लिप्त किये हुए शस्त्र के घाव को भर कर ठीक कर देता है ॥ १०८ ॥

अथ दुष्टव्रणे विषकल्पः—

विषं रसाञ्जनं भार्गी वृश्चिकाली महासहा ।

सवेदने सपाके च व्रणे दुष्टे प्रलेपनम् ॥ १०८ ॥

शुद्धविष, रसौंत, भारङ्गी, बिछैछीघास, माषपर्णी इन द्रव्यों को समभाग ले कर जल से पीस कर वेदना और पाक से युक्त दुष्ट व्रण पर प्रलेप करने से वह व्रण भर जाता है ॥ १०९ ॥

अथ अपच्यां कृतमालादिघृताख्यो विषकल्पः—

कृतमालार्कपूतीकवत्सकातिविषाविषम् ।
सिद्धं यदिङ्गुदक्काथैः सर्पिस्तदपचीहरम् ॥ ११० ॥

अमलतास की छाल, आक की जड़, करञ्ज के फल की गिरी इन्द्र यव, अतीस और वत्सनाभ विष इन्हें सम भाग लेकर जल से पीस कर कल्क बनालें। फिर कल्क से चतुर्गुण घृत और चतुर्गुण इङ्गुदी (तापसतरु) क्काथ लेकर सब को बड़ी कड़ाही में डाल कर पाक करें । इस प्रकार से सिद्ध किया हुआ घृत अपची रोग को नष्ट करता है ॥ ११० ॥

अथ अपचोघ्नतैलाख्यविषकल्पः—

काकादनीमागधिकानलिकातुण्डिकाफलैः ।
जीमूतबीजकर्कोटविशालाकृतवेधनैः ॥ १११ ॥
पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ॥
तज्जयेदपचीं घोरां नावनाभ्यङ्गपानतः ॥ ११२ ॥

कौआठोडी अथवा गुञ्जा, पिप्पली, नली, तुण्डी (प्रज्ञादरी या बिम्बी) के फल र था कपास के बीज, मोथा, ककोडा, इन्द्रवारुणी, अमलतास और पाठा ये प्रत्येक आधे२ पल भर तथा शुद्ध विष १ कर्ष भर लेकर सब का चूर्ण बना के जल से पीसकर कल्क बनालें । फिर इस कल्क को करञ्ज के १ प्रस्थ तैल तथा १ आढक भर निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस में मिलाकर कड़ाही में भर के तैल पाक करलें । यह तैल नस्य, अभ्यङ्ग और मात्रा पूर्वक पीने से भयङ्कर अपची रोग को नष्ट कर देता है ॥ १११–११२ ॥

अथ अपच्यादौ विषकल्पः—

गुञ्जाटङ्कणशिग्रुमूलरजनीशम्पाकभल्लातकाः
स्नुह्यर्काग्निकरञ्जसैन्धववचाकुष्ठाभयालाङ्गलीः ।

वर्षाभूशठिभूशिरीषवरणव्योषाश्वमाराविषं
गोमूत्रं शमयेद्विलिप्तमपचीग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदाम् ॥ ११३ ॥

गुञ्जा, शुद्धसुहागा, सहजने की जड़, हरिद्रा, अमलतास की छाल, शुद्ध भिलावा, थूहर का दुग्ध, आक का दुग्ध, चित्रक की जड़, करञ्ज की जड़, सैन्धव लवण, वचा, कूठ, हरड़, कलिहारी की जड़, पुनर्नवा की जड़, कचूर, गम्भारी की छाल, शिरीष की छाल, वरुण की छाल, सोंठ, मरिच, पोपल, कनेर की जड़ और शुद्धवत्सनाभ विष इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण करके गोमूत्र से सात वार भावित करके खरल करलें। यह कल्क प्रलेप करने से अपची, ग्रन्थि, अर्बुद और श्लीपद को नष्ट करता है ॥ ११३ ॥

अथ दुःसाध्यरोगे विषकल्पः—

अन्येष्वपि च रोगेषु शेषोपायपरिक्षये।
प्रत्यहं विषकन्दस्य त्रियवं यवमेव वा ॥
शुद्धस्य राजिकावृद्ध्या वर्षं भुक्त्वा जयेद्गदान् ॥ ११४ ॥

उपर्युक्त कहे हुए रोगों के अतिरिक्त अन्य सर्वरोगों में विविध औषधियों के प्रयोग करने पर सफलता प्राप्त न हुई हो तव रोगी के वमन विरेचनादि द्वारा शरीर की शुद्धि करके एक राई से प्रारम्भ करके प्रतिदिन एक२ राई भर बढाकर १ यव या ३ यव तक मात्रा हो जाने के पश्चात् इसी मात्रा (१ यव या ३ यव) के प्रमाण से वर्ष पर्यन्त विष के सेवन करते रहने से मनुष्य सर्व प्रकार के रोगों को जीत लेता है ॥ ११४ ॥

अथ रसायने विषकल्पः—

वचागन्धकसिन्धूत्थत्रायमाणाम्लवेतसम्।
व्योषाग्निवेल्लपाठाम्लकर्णीकरिकणाविषम् ॥ ११५ ॥
चाङ्गेरीनागदमनीवायसीत्रिफलारसैः।
भावितं मधुसर्पिर्भ्यां भक्षितं स्याद्रसायनम् ॥ ११६ ॥

वचा, शुद्धगन्धक, सैन्धवलवण, त्रायमाणा, अम्लवेंत, सोंठ, मरिच, पोपल, चित्रक की जड़, वायविडङ्ग, पाढल, नोनिया, अमलतास की छाल, गजपीपल और विष, इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करके चाङ्गेरी, नागदौनी, काकनासा और त्रिफला इन के पृथक २ या मिलित क्वाथ से सात वार भावित करके खरल कर

सुखा के शीशी में भर दें । यह चूर्ण प्रतिदिन शहद और घृत के साथ सेवन करने से अत्यन्त रसायन गुण करता है ॥ ११५-११६ ॥

अथ जयागुडिकाख्यो विषकल्पः—

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च ।
मुस्ता विडङ्गं मूत्रेण पिष्टमाजेन पिण्डितम् ॥ ११७ ॥
नावनाञ्जनपानेषु गोमूत्रासृग्रसाञ्जनैः ।
जयेत्प्रयुक्तं विषमज्वरान्सघृतसाधितम् ॥ ११८ ॥

हलदी, नीम के पत्ते, पिप्पली, मरिच, नागर मोथा और वायविडङ्ग इन के समभाग गृहीत चूर्ण को बकरी के मूत्र के साथ घोट कर गोलियां बनालें । इन गोलियों को गोमूत्र के साथ घिस कर नस्य लेने से, बकरी के रक्त या लालचन्दन के क्वाथ के साथ घोट कर अञ्जन करने से तथा रसाञ्जन के साथ घोट कर पान करने से तथा घृत के साथ सेवन करने से विषमज्वर तथा अन्य प्रकार के ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ ११७-११८ ॥

अथ तत्तद्रोगेषु विषकल्पः—

सर्वजं समधुव्योषं गवां मूत्रेण शीतकम् ।
चन्दनस्य कषायेण रक्तपित्तं वृषस्य वा ॥ ११९ ॥
क्षयं क्षीराश्वगन्धाभ्यां कासं श्वासं समाक्षिकम् ।
तक्रेण ग्रहणीरोगं कृच्छ्रं तण्डुलवारिणा ॥ १२० ॥
प्रमेहं मधुना गुल्मं शूलं च गुडवारिणा ।
पाण्डुशोफं गवां क्षीरेणाम्भसा त्रैफलेन वा ॥ १२१ ॥
गवां मूत्रेण कुष्ठानि क्षौद्रेणोदुम्बराह्वयम् ।
तक्रेण युक्तं चालेपाद्दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ १२२ ॥
पीतमुष्णाम्भसा वायुं तुलस्यालेपनाद्ग्रहान् ।
समूत्रं विस्मृतिं नस्येनाञ्जनेन दृगामयान् ॥ १२३ ॥
स्यन्दाधिमन्थौ सस्तन्यमर्मकोपं सशोणितम् ।
सकासमदकाचादीन्सभृङ्गीदं निशान्धताम् ॥ १२४ ॥
रम्भाकन्दाम्भसा पुष्पं पिल्लं ताम्रमधूत्करम् ।
सतूलमार्तिं दन्तानां गण्डूषेण विलेपनात् ॥ १२५ ॥

सगोमूत्रं शिरःशूलं सक्षौद्राम्लं क्षतव्रणान् ।
भगन्दरापचीग्रन्थीन्सक्षौद्रं सगुडं व्रणान् ॥ १२६ ॥
नारिकेराम्भसा लिङ्गविकारान्सेवनात्पुनः ।
प्रदरं भृङ्गसारेण नागपुष्पस्य सर्पिषा ॥ १२७ ॥
रम्भाकन्दाम्बुसर्पिर्भ्यां पीतं लिप्तमहेर्विषम् ।
गोतक्रनरमूत्राभ्यामथाऽऽखोर्वृश्चिकस्य तु ॥ १२८ ॥
सार्कक्षीरं विलेपेन लूतानां तु जलोदनम् ।
शतपत्ररसाज्याभ्यां विषं सर्वं च सर्वथा ॥ १२९ ॥
भस्मसूतं गुडक्षौद्रघृतैः सह निषेवितम् ।
जरां जयेदतो नाम्ना गुडिकेयं जयोदिता ॥ १३० ॥

सोंठ, मरिच, पीपल इनके चूर्ण और शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से शुद्ध विष सर्वप्रकार के ज्वरों को नष्ट करता है तथा गोमूत्र के साथ सेवन करने से शीतज्वर, चन्दन अथवा अडूसे के क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्तपित्त, दुग्ध और असगन्ध के चूर्ण के साथ सेवन करने से क्षय, मधु के साथ सेवन करने से कास और श्वास, मट्ठे के साथ सेवन करने से ग्रहणी रोग, चांवल के धोवन के साथ सेवन करने से मूत्र कृच्छ्र, शहद् के साथ सेवन करने से प्रमेह, गुड के मन्दोष्णजल के साथ सेवन करने से गुल्म और शूल, गोदुग्ध अथवा त्रिफला के क्वाथ के साथ सेवन करने से पाण्डुरोग और सूजन, गोमूत्र के साथ सेवन करने से कुष्ठ, शहद् के साथ सेवन करने से उदुम्बर नामक कुष्ठ, मट्ठे के साथ पीस कर प्रलेप करने से दाद, पामा और विचर्चिका, गरम जल के साथ सेवन करने से वात रोग तथा तुलसी स्वरस में घोट कर प्रलेप करने से ग्रहों को नष्ट करता है। विष को गोमूत्र के साथ घिस कर नस्य लेने से विस्मृति रोग नष्ट हो जाता है तथा नेत्रों में अञ्जन की तरह लगाने से दृष्टिविकार नष्ट होते हैं। स्त्री के दुग्ध के साथ घोट कर विष के अञ्जन करने से स्यन्द (नेत्रस्राव) और अधिमन्थ नाम के नेत्ररोग तथा रक्तविकार और अर्म रोग नष्ट होते हैं। कसोञ्जी के स्वरस के साथ घोट कर अञ्जन लगाने से काच (मोतिया बिन्द) और भृङ्गराज के स्वरस से घोट कर नेत्रों में लगाने से रात्रि की अन्धता (रतौंधी) नष्ट हो जाती है। केले की जड़ या खम्भे के स्वरस में घोट कर विष के अञ्जन करने

से नेत्र की फूली तथा ताम्र के पात्र में शहद् के साथ घोट कर अञ्जन करने से पिल्लरोग नष्ट होता है। रूई या कपास के बीज के क्वाथ में विष को मिला कर कुल्ले करने या प्रलेप करने से दान्तों के शूल (पीडा) को नष्ट करता है। गोमूत्र के साथ पीस कर नस्य लेने से मस्तिष्कशूल दूर हो जाता है तथा शहद् अथवा किसी खटाई में पीस कर लेप करने से क्षत और व्रण नष्ट हो जाते हैं। शहद् के साथ मिला कर लगाने से भगन्दर अपची और ग्रन्थि रोग नष्ट करता है तथा गुड के साथ मिला कर लगाने से सर्व प्रकार के व्रणों का रोपण करता है। नारियल के पानी के साथ पीस कर प्रलेप करने से जननेन्द्रिय (लिङ्ग) के विकारों को तथा भृङ्गराज के स्वरस और नागकेशर चूर्ण के साथ विष मिला कर घृत को पकाकर सेवन करने से प्रदररोग को नष्ट करता है। केले की जड़ या खम्भ के स्वरस तथा घृत के साथ मिला कर विष को पीने से तथा काटे स्थान पर प्रलेप करने से सर्पविष उतर जाता है। गाय की छाछ और मनुष्य के मूत्र के साथ विष को मिलाकर प्रलेप करने से चूहे और बिच्छू के विष को नष्ट करता है। आक के दुग्ध में पीस कर प्रलेप करने से लूताविष नष्ट होता है। कमल के पत्तों का स्वरस और घृत के साथ विष को सेवन करने से सर्व प्रकार के विष निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। पारद की भस्म और विष को गुड शहद् और घृत के साथ मिला कर गुटिका बना लें। यह गुटिका जरा रोग को नष्ट करती है। इस लिये इसे जयोदिता गुटी कहते हैं॥ ११९-१३०॥

अथ रसायने विषकल्पः—

कान्ताभ्रकशिलाधातुविषसूतकमाक्षिकम्।
शीलितं मधुसर्पिर्भ्यां व्याधिवार्धक्यमृत्युजित्॥ १३१॥

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धशिलाजीत, शुद्धविष, पारद की भस्म और स्वर्णमाक्षिकभस्म इन्हें समभाग लेकर महीन पीस के शीशी में भर दें। १-३ रत्ती भर तक यह कल्प शहद् और घृत के साथ मिलाकर प्रतिदिन सेवन करने से सर्वरोग तथा वृद्धौति को नष्ट कर देता है॥ १३१॥

अथ वाजीकरणे विषकल्पः—

नष्टशुक्रः पयोद्राक्षाकपिकच्छुमहाविषम्।
शीलयेन्मधुसर्पिर्भ्यां सखर्जूरं सयष्टिकम्॥ १३२॥

क्षीणवीर्य वाला मनुष्य प्रतिदिन द्राक्षा, कौञ्चबीज का चूर्ण, महाविष, खजूर और मुलेठी इन का समभाग चूर्ण बनाकर शहद् और घृत के साथ सेवन करे तथा ऊपर से दुग्ध का अनुपान करना चाहिए। इस विधि से क्षीण हुए शुक्र की वृद्धि होती है तथा शरीर पुष्ट होता है ॥ १३२ ॥

विषहरो योगः—

क्षीरक्षौद्रघृतैर्युक्तं पीतं हन्ति विषं विषम्।
सनिन्दुवारतगरं मृतसञ्जीवनं विषम् ॥ १३३ ॥

शुद्धवत्सनाभविष को दुग्ध, शहद् और घृत के साथ मिलाकर पान करने से विष को नष्ट कर देता है, तथा निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण, तगर चूर्ण और वत्सनाभविषचूर्ण इन्हें समभाग मिश्रित करके उचित मात्रा से घृतदुग्धादिक के साथ सेवन करने से मृत पुरुष को भी जीवित कर देता है ॥ १३३ ॥

अथ आखुविषे विषकल्पः—

शिरीषकुसुमं पत्रं विषमाखुविषापहम् ॥ १३४ ॥

शिरीष के पुष्प, पत्र तथा विष इन्हें समभाग से चूर्णित कर मधु के साथ सेवन करने से तथा जल से पीसकर प्रलेप करने से चूहे का विष नष्ट होजाता है ॥१३४॥

अथ सर्वविषे विषकल्पः—

देवदारुनतं मांसी द्रामिली वाकुची विषम्।
कुष्ठं च पानलेपाभ्यां समस्तविषनाशनम् ॥ १३५ ॥

देवदार, तगर, जटामांसी, द्रामिली अर्थात् फिटकिरी या निर्विषी, वाकुची, वत्सनाभविष और कूठ इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करके दुग्ध घृतादि के साथ पीने से तथा जल से पीसकर प्रलेप करने से समस्त विष नष्ट हो जाते हैं ॥ १३५ ॥

अथ संज्ञाजनने विषकल्पः—

मनःशिलाऽञ्जनाऽऽलैलासिन्दुवारामराह्वयम् ॥
सरक्तं कुङ्कुमविषं ध्मातं निःसंज्ञबोधनम् ॥ १३६ ॥

शुद्धमैनसील, सुरमा, शुद्धहरताल, इलायची, निर्गुण्डी की जड़, देवदारू, लालचन्दन, केशर और विष, इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बनाकर नस्य करने से संज्ञाहीन (मूर्च्छित) मनुष्य भी जग जाता है ॥ १३६ ॥

अथ विषदाहे विकल्पः—

दाहे विषोद्भवे लेपः सक्तुक्षीरघृतैर्युतः॥ १३७ ॥

विष के अतियोग से शरीर में जिस जगह जलन प्रतीत हो वहां पर सत्तू, दुग्ध और घृत के साथ विष ही का प्रलेप करने से दाह शान्त होजाता है ॥१३७॥

अथ मात्राऽमात्राभेदेन विषामृतयोर्गुणागुणौ—

अमृतं सहसा युक्तं शीलितं विषमेव वा।
सात्म्याऽसात्म्यं विकाराय मृत्यवे च वरानने! ॥ १३८ ॥

हे सुन्दर मुखवाली पार्वति ! सात्म्य और असात्म्य का विचार न करके सहसा अमृत अथवा विष के सेवन करने से नाना प्रकार के विकार अथवा मृत्यु हो जाती है ॥ १३८ ॥

अथ सहसा विषसेवने अष्टौ वेगाः—

वेगाश्चाष्ट प्रजायन्ते सहसा विषशीलिनः।
प्रथमे त्वग्विकारः स्याद्द्वितीये वेपथुर्भवेत् ॥ १३९ ॥
दाहो वेगे तृतीये स्याच्चतुर्थे विकृतो भवेत्।
फेनोद्गतिः पञ्चमे स्यात्स्कन्धयोर्भङ्गता ततः ॥ १४० ॥
जाड्यता सप्तमे वेगे चाष्टमे मरणं ध्रुवम्।
एवं ज्ञात्वा वरारोहे! प्रतीकारं समाचरेत् ॥ १४१ ॥

सहसा विष के सेवन करने वाले मनुष्य के शरीर में निम्नलिखित आठ वेग उत्पन्न होते हैं। विष के प्रथम वेग में त्वचा के विकार उत्पन्न होते हैं। द्वितीय वेग में शरीर के अन्दर कम्पन होने लगता है। तृतीय वेग में शरीर में जलन प्रतीत होती है। चतुर्थ वेग में, आंख, नाक, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों में विकृतियां उत्पन्न होती हैं। पाञ्चवें वेग में मुख और नासिका से फेन निकलने लगते हैं तथा दोनों स्कन्धों में भेदन होने लगता है। सातवें वेग में सारे शरीर की मांसपेशियों में जड़ता (गत्यभाव) हो जाती है तथा अन्त में आठवें वेग में मनुष्य की निश्चय ही मृत्यु हो जाती है। इसलिये बुद्धिमान् वैद्य को चाहिए कि वेगों का विचार करके उपयुक्त चिकित्सा करें ॥ १३९-१४१ ॥

अथ विषसेवने संशोधनविधिः—

पित्तान्तं वमनं कुर्यादामान्तं रेचनं चरेत् ॥ १४२ ॥

जब तक पित्त निकलता रहे तब तक वमनकारी औषधियों का प्रयोग करना चाहिए, तथा आम के निकलने तक विरेचक औषधियों द्वारा विरेचन करना चाहिए। अथवा पित्त निकलने के पूर्व वमनक्रिया तथा आम निकलने के पूर्व विरेचन क्रिया का प्रयोग करना विषहरण के लिये श्रेष्ठ है ॥ १४२ ॥

अथ विषघ्नो गणः—

जातिनीलीश्वरोसिन्धुकाकमाच्यद्रिकर्णिका।
त्रिफला करवीरं च कुष्ठं मधुकजीरकम्।
क्षीरिवृक्षत्वगेलेति विषघ्नोऽयं गणः स्मृतः ॥ १४३ ॥

चमेली की जड़, नील वृक्ष की जड़, शिवलिङ्गी, निर्गुण्डी की जड़ या सैन्धव लवण, मकोय, गिरिकर्णिका (विष्णुक्रान्ता), त्रिफला, कनेर की जड़, कूठ, मुलेठी, जीरा, क्षीरीवृक्षों की छाल और इलायची ये औषधियां मिलकर विषनाशक गण कहलाती हैं। अर्थात् इनके चूर्ण, क्वाथ आदि का पीना लेप करना, अञ्जन करना, नस्य करना या इन से घृत पका कर सेवन करने से विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है ॥ १४३ ॥

अथ गव्यघृतस्य विषघ्नत्वोक्तिः—

विषघ्नं गोघृतं देवि! माङ्गल्यं जीवनं स्मृतम् ॥ १४४ ॥

हे पार्वति? गाय का घृत सर्वप्रकार के विषों का नष्ट करने वाला, मंगलकारी एवं जीवनदान करने वाला कहा गया है ॥ १४४ ॥

अथ विषस्य प्रयोगविधिः—

अश्वगन्धां सगोजिह्वां त्रिशूलीं त्रिफलामपि।
प्रथमं भक्षयित्वा च सेवयेद्गरलं ततः ॥ १४५ ॥
ब्रह्मचर्यं वरारोहे! विषकाले समाचरेत्।
पथ्यं स्वस्थमना भुक्त्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ॥ १४६ ॥

गाजुआ, असगन्ध, शिवलिङ्गी और त्रिफला इन्हें समभाग लेकर चूर्ण बना कर प्रथम उसे सेवन करें तदनन्तर विष का सेवन करना चाहिए। हे सुन्दर मुख वाली पार्वति? विष के सेवन करते समय ब्रह्मचर्य का धारण करना तथा पथ्य-कारक भोजग करना और नित्य प्रति स्वस्थ मन रखना अर्थात् चिन्ता न करना इसविधि से आहारादिक नियमों के पालन करने से अवश्य ही सिद्धिप्राप्त होती १४५–१४६

अथ विषसेविनः पथ्यापथ्यविधिः—

गव्ये क्षीरघृते पेये शाल्यन्नमिदमेव च ।
शीतलं च पिबेत्तोयं पित्तलानि च वर्जयेत् ॥ १४७ ॥
जाङ्गलानि च मांसानि छागलोहं च मद्गुरान् ।
शर्करां माक्षिकं क्षीरं सेवनीयं प्रयत्नतः ॥
सेव्यं देवि ! सदा पथ्यमपथ्यं दूरतस्त्यजेत् ॥ १४८ ॥

विष सेवन करते समय गौ का दुग्ध और घृत का पान करना और साठी के चांवलों का भात बनाकर घृत दुग्ध से भोजन करना चाहिए । इन्हीं चांवलों का भोजन करें अन्य भोज्य पदार्थ वर्जित हैं । शीतल जल का पान करना चाहिए, पित्तकारक कोई भी पदार्थ सेवन न करें तथा जङ्गली पशुओं का मांस, बकरी का ताजा रुधिर, मद्गुर नामक मच्छली, चीनी, शहद्, दुग्ध इन पदार्थों को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करके सेवन करना श्रेष्ठ है । हे देवि सदा पथ्य ही का सेवन करें तथा अपथ्य पदार्थों को दूर ही से त्याग देना हितकर है ॥ १४७–१४८ ॥

अथ प्रयोज्यविषाणि—

उद्धृतं फलपाकेन नवं स्निग्धं घनं गुरु ।
अव्यापन्नं विषहरैरवातातपशोषितम् ॥ १४९ ॥
रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते त्वाससि धारितम् ।
सक्तुकं मुस्तकं शृङ्गी वालुकं सर्षपाह्वयम् ॥ १५० ॥
वत्सनाभं च कर्मण्यं कालकूटादिकं ततः ।
न जात्वन्यत्प्रयोक्तव्यं विषे तीक्ष्णे च चारिते ॥ १५१ ॥

वत्सनाभ, सक्तुक आदि विषों में से किसी को भी लेना हो तो उसके ठीक पकने पर स्निग्ध, घन और गुरू हो जाने पर जमीन से खोद लें तथा वह विष विषगुणनाशक जन्तु आदि से हीनवीर्य न हुआ हो और वायु तथा धूप से अत्यन्त सूख न गया हो तभी उसे औषधकर्म में प्रयुक्त करें । उसको जमीन से उखाड़ने के पश्चात् लाल सरसों के तेल से भींगे हुए शुद्ध वस्त्र में लपेट कर तीन दिन तक रखा रहने दें । पश्चात् उसको गोमूत्रादि में यथेष्ट शुद्धि करके सेवन करें । सक्तुक, मुस्तक, शृङ्गी, वालुक, सर्षपक, वत्सनाभ और कालकूट आदि इन विषों के सेवन करते समय अन्य तीक्ष्ण पदार्थ सेवन नहीं करना चाहिए ॥ १४९–१५१ ॥

अथ तीक्ष्णविषातियुक्तविषयोश्चिकित्सा—

अतिमात्रे च कर्मण्ये पेयं घृतमनन्तरम् ॥ १५२ ॥
सभार्ङ्गीदधिधूमोत्थ-सारिवा तण्डुलीयकम् ।
आगारधूममञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैर्वा समन्वितम् ॥ १५३ ॥
लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां चूर्णितामर्जुनत्वचम् ।
टङ्कणं मेघनादेन मधुना वाऽऽपि पल्लवान् ॥ १५४ ॥

प्रयोग करने योग्य विष के अधिक मात्रा में उपयोग कर लेने पर अथवा तीक्ष्ण विष के प्रयोग करने पर उसके हानिकर प्रभाव को नष्ट करने के लिये घृत का अधिक प्रयोग करना चाहिए तथा भारङ्गी, दही, रसोई घर का धुआं, सारिवा और चोलाई इनके समान भाग चूर्ण को घृत और मधु के साथ सेवन करें, अथवा घरका धुआं, मंजीठ मुलेठी इन के समभाग चूर्णको शहद् और घृत के साथ सेवन करें, अथवा केवल अर्जुन की छाल का चूर्ण करके मधु और घृत के साथ सेवन करें या शुद्ध सुहागे को चोलाई के स्वरस और शहद् के साथ या तेजपात के चूर्ण को मधु के साथ सेवन करें ॥ १५२–१५४ ॥

अथ विषे मन्त्रादिक्रियावैफल्ये प्रतीकारः—

विषे प्रतिविषं युञ्ज्यान्मन्त्रतन्त्रैरसिद्ध्यति ।
अतीते पञ्चमे वेगे सप्तमस्यानतिक्रमे ॥ १५५ ॥

मन्त्र और तन्त्रों के प्रयोग से सिद्धि (लाभ) न होने पर विष के उपद्रव को शान्त करने के लिये पञ्चम वेग के पश्चात् तथा सप्तमवेग के व्यतीत होने के पूर्व ही प्रतिविष का प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् स्थावर विष खाया हो तो जङ्गम और जङ्गम खाया हो तो स्थावर का प्रयोग करने से अवश्य ही लाभ होता है ॥ १५५ ॥

अथ सर्पदष्टे विषकल्पः—

युञ्ज्यान्मूलविषं सर्पदष्टानां पानलेपयोः ॥ १५६ ॥

सर्प से काटे हुए पुरुषों के दंश स्थान पर मूलविष जल से घिस कर लगाना चाहिए तथा उसी के चूर्ण को घृत के साथ पिलाना चाहिए ॥ १५६ ॥

अथ सर्पविषे मूलविषस्य मात्रा—

चतुर्भिः षड्भिरष्टाभिर्हीनमध्योत्तमा यवैः।
मात्रां विषस्य मूलस्य प्रयुञ्जीत च सर्वदा ॥ १५७ ॥

४ यव के बराबर हीन, ६ यव के बराबर मध्य और ८ यव के बराबर मूल बिष की मात्रा उत्तम होती है। इस लिए विषवेग तथा रोगी की अवस्था का विचार करके हीन मध्य या उत्तम मात्रा का प्रयोग करना चाहिए ॥ १५७ ॥

अथ कीटविषे वृश्चिकविषे च मूलविषस्य मात्रा—

दष्टस्य द्वौ यवौ कीटैस्तिलमात्रं तु वृश्चिकैः ॥ १५८ ॥

कीटों के द्वारा काटे पुरुषों के लिये २ यव तथा बिच्छू के द्वारा काटे हुए पुरुषों के लिये तिल के बराबर मूलविष की मात्रा प्रयुक्त करनी चाहिए ॥१५८॥

अथ लूताविषे विषकल्पः—

नैव त्वसृक्स्थे पाने तु लूतादष्टस्य नेष्यते ॥
प्रश्नथा लेपयेद्दंशं तस्य ज्ञात्वा सुनिश्चितम् ॥ १५९ ॥

लूता के काटने पर यदि उसका विष रक्त में न मिल गया हो अर्थात् तुरन्त पता लग जाने पर प्रतिबिष का खाने के लिये प्रयोग नहीं करना चाहिए। किन्तु उसके दंश स्थान को निश्चित रूप से पहिचान कर तुरन्त विष का प्रलेप कर देना चाहिए ॥ १५९ ॥

अथ जयावटिकाख्यो विषकल्पः—

वासामृताखदिरनिम्बविडङ्गपथ्या-
क्काथे विषत्रिकटुचित्रकलोहतिक्ताः।
आवाप्य माषतुलिता वटिका प्रणीता,
क्षौद्रान्विता क्षपयति क्षयकुष्ठजातम् ॥ १६० ॥

अडूसा, गिलोय, खैर सार, निम्ब की छाल या पञ्चाङ्ग और हरड इन का क्वाथ बना कर उससे विष, त्रिकटु, चित्रक की जड़, लौहभस्म और कुटकी इन के समभाग चूर्ण को खरल करके एक २ माशे भर की गोलियां बना कर शीशी में भर दें। ये गोलियां शहद् के साथ प्रतिदिन सेवन करते रहने से क्षय और समस्त कुष्ठों को नष्ट कर देती हैं ॥ १६० ॥

अथ विषसेवनस्य फलम्—

शत्रुप्रयुक्ताद्विषतो गराद्वा लूताभुजङ्गाखुविषाज्जरायाः ।
अकालमृत्युग्रहपाप्मनोऽपि विषाशिनो नास्ति भयं नरस्य ॥१६१॥

इतिश्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सुनोर्वाग्भट्टाचार्यस्यकृतौ रसरत्नसमुच्चये
विषकल्पो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

नित्यप्रति मात्रा पूर्वक बिष सेवन करने वाले मनुष्य को शत्रुओं के द्वारा भोजनादियों में दिये हुए विष से, गरविष से, मकड़ी, सर्प और चूहों के विष से, बुढापे से, अकाल मरण और दुष्ट ग्रह आदियों से कुछ भी भय नहीं होता है ॥ १६१ ॥

इति श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण श्री अम्बिकादत्तशास्त्रिणा कृतायां
रसरत्नसमुच्चयस्य–सुरत्नोज्ज्वलाख्य–भाषा–टीकायां
विषकल्पो नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथ रसकल्पः—

अथ वडवानलो विडः—

गुञ्जासैन्धवयोश्चूर्णं देवदालीदलद्रवैः ।
टङ्कणं किंशुकरसैजम्बीराम्लेन चूलिकाम् ॥ १ ॥
मूलकक्षारगोमूत्रप्रसादेन च गन्धकम् ।
स्वर्जिकां भूखगव्योम शिग्रुमूलरसेन च ॥ २ ॥
शतशो भावयेत्सर्वं विडोऽयं वडवानलः ॥ ३ ॥
एवमग्निसहो लोहसंयुक्तः केवलोऽथ वा ।
नियामकौषधसिताऽङ्कोलमूलरसादिभिः ॥ ४ ॥
वैक्रान्तप्रमुखैर्वापि रसेन्द्रः सह मर्दितः ।
यन्त्रस्थः क्रमवृद्धेन वह्निनोर्ध्वेन पाचितः ॥
मृतोऽधराग्निना तस्तोऽप्यक्षीणो नोर्ध्वमाश्रयेत् ॥ ५ ॥

गुञ्जा (रत्ती) और सैन्धवलवण के समभाग चूर्ण को वन्दाल के स्वरस या क्वाथ से १०० वार भावित करें तथा सुहागे को पलाश की छाल के क्वाथ से, चुलिका लवण अर्थात् नौसादर को जम्वीरी निम्बू के रस से, गन्धक को मूली के क्षारोदक और गोमूत्र से अथवा गोमूत्र के अन्दर मूलीक्षार को घोल कर नितरने के पश्चात् छान कर लिये हुए स्वच्छ द्रव्य से तथा सज्जीखार, सौराष्ट्र मृत्तिका, स्वर्णमाक्षिक और व्योम अर्थात् अभ्रक इन चारों को एकत्र मिलाकर सहजन की जड़ के स्वरस या क्वाथ से सौ सौ वार भावित करके घोट कर सुखा लें। इस तरह इतने द्रव्यों के संयोग से यह वडवानल नामक विड तैय्यार होता है। इस विड के साथ पारद को पीस कर गोला बना के मूषा में वन्द कर तपाने से वह अग्नि सहन करने वाला हो जाता है। अर्थात् अग्नि के संयोग से वह उडता नहीं है। इस तरह के पारद को लौह से संयुक्त करके अथवा एकेले को या नियामक गण की औषधियों के रस या चीनी और अङ्कोल के जड़ के स्वरस के साथ अथवा वैक्रान्त आदि मुख्य २ रत्नों के साथ घोट कर यन्त्र (मूषा आदि) में रख कर या भूधरयन्त्र में वन्द करके धीरे २ क्रम से वढाई हुई (पारद सम्पुट के ऊपर) या लगाई हुई अग्नि से पाक करना चाहिए। फिर अधराग्नि अर्थात् पारद सम्पुट को बालुकायन्त्र में गाडकर यन्त्र को भट्टी पर चढा कर नीचे से अग्नि जलाने पर भी प्रतप्त हुआ पारद क्षीण नहीं होता है तथा ऊर्ध्वगति अर्थात् सम्पुट को भेद कर ऊपर आकाश में नहीं उडता है ॥ १-५ ॥

अथ रसमारणम्—

अथाऽपामार्गतैलेन तथा पुष्करतण्डुलैः।
अथवा मलपूक्षीरभावितः श्वेतहिङ्गुना।
मर्दितः पुटपाकेन भस्मतां प्रतिपद्यते ॥ ६ ॥

अपामार्ग के तैल और कमल के बीजों के क्वाथ से उक्त पारद को भावित करके अथवा काठ उदुम्बर के दुग्ध से सात दिन तक भावित करके सफेद हीङ्ग के कल्क के साथ पीस कर पुट पाक करने से पारद की भस्म हो जाती है ॥६॥

अथ रसमारणे प्रकारान्तरम्—

गोमूत्रद्रोणपुष्पाभ्यां पाकाद्वा कान्तभाजने ॥ ७ ॥

अथवा गोमूत्र के अन्दर द्रोणपुष्पी को घोट कर कल्क बना के उस कल्क

के साथ पारद को घोट कर या गोमूत्र और द्रोणपुष्पी इन दोनों में सात २ वार खरल कर के गोला बना कर कान्त लोह के पात्र में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ७ ॥

प्रकारान्तरम्—

कङ्कुणीकृष्णधुस्तूरतैलाभ्यां वा विमर्दितः ॥ ८ ॥

अथवा कङ्कुनी के तैल और काले धत्तूरे के तैल के साथ खरल करके साधारण शराव सम्पुट में या कान्तलौहसम्पुट में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ८ ॥

प्रकारान्तरम्—

मृणालतन्तुवर्तिस्थः पीतगन्धर्वतैलयुक् ।
ज्वलितो याममात्रं वा मृतवैक्रान्तसंयुतः ॥ ९ ॥

कमल की नाल के तन्तुओं को पीले एरण्ड के तैल के साथ पीसकर कल्क बना लें । फिर इस कल्क में पारद और वैक्रान्तभस्म मिलाकर खरल करके तीन घण्टे तक अग्नि देने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरम्—

वन्ध्याऽमृताकन्दगतः पचनाद्भूधरेऽथवा ॥ १० ॥

अथवा पारद को मारक वर्ग की औषधियों के साथ खरल करके बांझककोड़े
अथवा गिलोय के कन्द के भीतर भर कर चारों ओर मिट्टी के कीचड़ का लेप करके
सुखाकर भूधर यन्त्र में बन्द करके पकाने से पारद की भस्म होजाती है ॥१०॥

प्रकारान्तरम्—

चपलोपलनिर्गुण्डीरसाभ्यां रसकेन वा ॥ ११ ॥
वाराहीरसयुक्तेन चक्रमर्दरसेन वा ॥ १२ ॥

चपल धातु और निर्गुण्डी के स्वरस के साथ घोटकर अथवा खर्पर भस्म और
वाराही कन्द के रस या चक्रमर्द के रस के साथ घोटकर गोला बना के भूधर
यन्त्र में पकाने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ ११-१२ ॥

प्रकारान्तरम्—

गन्धपाषाणयुक्तेन बद्धं वा वाससा रसम् ॥
पचेद्गन्धकतैलेन यावदाखोटबन्धनम् ॥ १३ ॥

गन्धक के चूर्ण को घृत में पीसकर कल्क बना के उसके मध्य में पारद को रखकर वस्त्र से पोट्टली बना लें। गन्धक के तैल से भरे हुए पात्र में दोलायन्त्र की विधि से पोट्टली को लटका कर अग्नि जलावें। खोट बन्धन होने तक तीव्र अग्नि देकर भस्म सिद्ध करलें ॥ १३ ॥

प्रकारान्तरम्—

गन्धाश्मपिष्टं द्विगुणगन्धं वा कान्तसम्पुटे।
गन्धकाद्वा तृतीयांशं कान्तपर्पटमिश्रितम्
मूलिकामर्दितं लोहपर्पटान्तर्गतं धमेत् ॥ १४ ॥

पारद को समभाग गन्धक के साथ पीसकर कज्जली बनालें। फिर पारद से द्विगुण गन्धक लेकर पीसकर आधी कान्तलोह के सम्पुट में बिछाकर उसपर उपर्युक्त कज्जली रख कर फिर ऊपर से शेष पिष्ट गन्धक रखकर सम्पुट को बन्द करके कपडमिट्टी करलें। सूखने पर गजपुट में पाक करने से पारद की भस्म हो जाती है ॥ अथवा १ भाग पारद और ३ भाग गन्धक लेकर दोनों की कज्जली बनाकर मूलिका आदि मारकवर्ग की औषधियों के साथ खरल करके लोहे के सम्पुट में बन्द करके अग्नि में रखकर फूंक देने से पारदभस्म हो जाती है ॥ १४ ॥

प्रकारान्तरम्—

यद्वा गन्धकपादेन मर्दितं मूलिकारसैः।
लोहसम्पुटमध्यस्थमङ्गारैर्ध्मातमुत्खनेत् ॥
रोगोक्तयोगयुक्तोऽयं तत्तद्रोगहरो भवेत् ॥ १५ ॥

अथवा चतुर्थांश शुद्ध गन्धक के साथ पारद को घोटकर कज्जली बना के मूली के रस के साथ खरल करके लोहे के सम्पुट में बन्द करके अङ्गारों से धमन करके निकाल लें। इस प्रकार मारित यह पारद भिन्न२ रोगों में कहे हुए प्रयोगों के साथ मिलाकर सेवन करने से सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १५ ॥

अथ पारदजारणम्—

पीतासवाम्लखात्सत्त्वं कान्तं वा तीक्ष्णमेव वा।
चतुःषष्टितमांशेन प्रमितं क्षिप्तमल्पशः ॥ १६ ॥
चतुःषष्टितमांशेन श्लक्ष्णवत्तां विमर्दनात्।
तप्तखल्लेऽम्लयोगेन श्लक्ष्णवत्तां विमर्दनात्।
भूर्जे ताराम्ललवणस्नुह्यर्कक्षीरलेपिते ॥ १७ ॥

बद्धं वस्त्रावृते स्विन्नमम्ले समरसे रसम् ।
धौतमुष्णारनालेन शुष्कमङ्गुलिमर्दितम् ॥ १८ ॥
पचेत्कच्छपयन्त्रस्थमष्टमांशबिडान्वितम् ।
स्वप्रमाणो रसस्तिष्ठेज्जीर्णे ग्रासे त्वजीर्यति ॥ १९ ॥
पातयेदासवाम्लेन मर्दयेत्स्वेदयेच्च तम् ।
जारणे जारणे वह्निं ग्रासं च परिवर्धयेत् ॥
द्विगुणं योजयेदेवं सत्त्वमभ्रकसम्भवम् ॥ २० ॥

खट्टे आसव या काञ्जी के द्वारा घोटे हुए अभ्रक से सत्त्व तथा कान्त या तीक्ष्ण लोहभस्म इन दोनों को मिला कर ६४ भाग (३२ भाग अभ्रक सत्त्व और ३२ भाग कान्त लौहभस्म) लेकर तप्त खरल के अन्दर रखे हुए पारद में थोड़ी २ मात्रा से डाल कर घोटते रहें, तथा बीच २ में थोड़ी २ मात्रा से डाल कर घोटते रहें । तथा बीव २ में थोड़ी २ काञ्जी डाल कर मर्दन करें । इस तरह अभ्रक सत्त्व और कान्त लौहभस्म डाल कर काञ्जी के द्वारा घोटते २ जब पारद (समस्त चूर्ण) अत्यन्त स्निग्ध और महीन हो जाय तब उस को क्षार, अम्ल (काञ्जी), नीमक, थूहर तथा आक के दुग्ध इन पदार्थों के कल्क से लिप्त किये हुए भोजपत्र के ऊपर रख कर भोजपत्र की पोट्टली बनाकर ऊपर से एक शुद्ध वस्त्र से भी लपेट कर पोट्टली बांध लें । फिर एक घडे में काञ्जी और जल अथवा स्वेदल औषधियों का स्वरस तथा काञ्जी भर कर उक्त पोट्टली को दोलायन्त्र की विधि से औंधी लटका कर एक प्रहर तक पाचन करें । पश्चात् पोट्टली को निकाल कर गरम २ काञ्जी से पारद चूर्ण को धो कर सुखा लें । फिर इङ्गुदी के तेल के साथ मर्दन कर के अथवा केवल जल से खरल कर के गोला बना कर एक सम्पुट में नीचे ऊपर अष्टमांश पूर्वोक्त वडवानल नामक विड बिच्छाकर उसके मध्य में पारद के गोले को रख कर बन्द करके कपड़मिट्टी कर सुखा लें । इस सम्पुट को कच्छपयन्त्र में रख कर पाक करें । इस प्रकार पाक करने से पारद की मात्रा (तौल) की वृद्धि न हुई हो तब उसे अच्छी प्रकार जीर्ण तथा अभ्रकादिक का ठीक प्राप्त किये हुए समझना चाहिए । यदि उसका तौल बढ जाय तब ग्रास का ठीक जारण नहीं हुआ है ऐसा जानकर ऊर्द्ध्वपातन कर्म कर के आसवाम्ल से घोट कर फिर पूर्ववत् स्वेदनादि क्रिया करनी चाहिए ।

प्रत्येक वार जारण करते समय अभ्रक सत्त्व पूर्व की अपेक्षा द्विगुण तथा वह्नि भी दुगुनी देनी चाहिए। इस तरह ग्रास पदार्थ (अ भ्रकादिक) तथा वह्नि को क्रमशः बढाते रहना चाहिए। प्रायः ७ वार जारण करने से पारद की सिद्धि हो जाती है ॥ १६-२० ॥

अथ रसजारणे निषिद्धद्रव्याणि—

पूतिलोहं विषं मूत्रं रसकं गन्धकत्रयम्।
न युञ्ज्याज्जारणे सूतस्तज्जीर्णः स्फोटकुष्ठकृत् ॥ २१ ॥

पारद के जारण कर्म में पूति लोह अर्थात् नाग और वङ्ग, विष, गोमूत्र, खर्पर और श्वेत, रक्त, पीत तीन प्रकार का गन्धक अथवा गन्धक, हरताल और मैन सील इन द्रव्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इन द्रव्यों के द्वारा जारण किया हुआ पारा सेवन करने से शरीर में फोड़े फुन्सियां और कुष्ठ को उत्पन्न करता है ॥ २१ ॥

अथ क्षयादौ रसकल्पः—

कुर्याल्लोहमयीं मूषामायामे द्वादशाङ्गुलाम्।
मर्दितं हेमवाराहीगृहकन्यारसैः रसम् ॥ २२ ॥
रसोनपिण्डे दधतां लोहमय्या सुरन्ध्रया।
निर्गुण्डीपत्रनिर्यासपीतपादसुगन्धया ॥ २३ ॥
गर्भमूषिकया युक्तां सचक्रां सपिधानकाम्।
लम्भितां जलपात्रस्थखर्परद्वारि पाचयेत् ॥ २४ ॥
ऊर्ध्वं वनोत्पलैश्छिन्नैरङ्गारैः खादिरैरधः।
एवमष्टगुणे जीर्णे गन्धके क्षयकुष्ठजित ॥ २५ ॥

बारह अङ्गुल लम्बी लोहे की मूषा बनालें। फिर पारद को पीले धत्तूरे, वाराहीकन्द और घृत कुमारी के गूदे के साथ क्रमशः खरल कर के गोला बना कर उस गोले के चारों ओर एक २ अङ्गुल मोटा लहसून की गिरी के कल्क का प्रलेप कर के उपर्युक्त मूषा में भर दें। फिर निर्गुण्डी के पत्रों के स्वरस से भावित किये हुए पारदापेक्षया चतुर्थांश गन्धक कल्क से भरी हुई छिद्र वाली छोटी मूषा लेकर बड़ी मूषा को भीतर छिद्र वाले मुख की तरफ से घुसा कर इस के मुख को चक्रयुक्त (पेचदार) ढक्कन से बन्द करदें। फिर जल से भरे हुए लोहे के

कण्डाल या कड़ाह में एक छिद्रदार मिट्टी का पात्र रख कर उस में मूषा को रख के ऊपर से एक दूसरे पात्र से ढक दें। इस तरह यन्त्र रचना करने के पश्चात् पात्र के ऊपर सूखे जङ्गली कण्डों की आंच लगावें तथा भट्टी के ऊपर स्थित कड़ाह के नीचे खैर की लकड़ी जलावें। जब गन्धक ठीक तरह से जारित हो जाय तब यन्त्र की मूषा में चौथाई गन्धक डाल कर उपर्युक्त विधि से पाक करें। इस तरह पारद से अठ गुने गन्धक का जारण करने के पश्चात् सिद्ध भस्म को ग्रहण कर उचित मात्रा से प्रयुक्त करने से क्षय और कुष्ठ रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २२–२५ ॥

अथ वज्रपञ्जररसः—

क्षेत्रीकरणमित्युक्तं वज्रभस्मसमं रसम् ।
हंसपादीरसैर्घृष्टं विपचेत्तत्पुटानले ॥ २६ ॥
तुल्यमन्यं रसं तेन पूर्ववन्मर्दितं पचेत् ।
यावच्छक्यं चतुर्थांशमानेन रसभस्मना ॥ २७ ॥
अम्लपिष्टेन सौवर्णं पत्रमम्लेन मारयेत् ।
राजिकार्धार्धमारभ्य यावन्माषं विवर्धितः ॥ २८ ॥
चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थतीक्ष्णासौवर्चलैः सह ।
सेवितः पलपर्यन्तं रसोऽयं वज्रपञ्जरः ॥
शरण्यः परिभूतानां व्याधिवार्धकमृत्युभिः ॥ २९ ॥

वज्र भस्म अर्थात् हीरे की भस्म और पारद भस्म को समभाग मिश्रित कर सेवन करने से देह में क्षेत्री करण अर्थात् रस वीर्यादिक के सहन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है। अथवा रस सेवन करने के पूर्व वमन, विरेचन, स्वेदनादि कर्म द्वारा शरीर शुद्धि कर के रोग नाशक औषधियों से शरीर को निरोग करने को क्षेत्रीकरण कहते हैं अर्थात् इस प्रकार से शुद्ध और रोग रहित शरीर रसायन सेवन करने के लिये उत्तम क्षेत्र बन जाता है। हीरे की भस्म और शुद्ध पारद समभाग लेकर कज्जली कर के हंसपादी के स्वरस के साथ सात दिन तक खरल कर के गोला बना कर मूषादि में बन्द कर के पुट पाक करें। फिर पक्व रस को निकाल कर पूर्वोक्त हंसपादी के स्वरस के साथ खरल कर के पुट में पाक करें। इस तरह पारद की भस्म बनाकर ४ भाग

ले' तथा यथाशक्ति कण्टकवेधी शुद्ध स्वर्ण पत्र लेकर दोनों को ३ दिन तक किसी खटाई (काञ्जी आदि) के साथ घोट कर सम्पुट में बन्द करके भूधर यन्त्र में पकावें। इस तरह कुछ पुट देने से वज्रपञ्जर रस तैयार हो जाता है। इस रस को प्रथम दिन राई के आधे से आधे अर्थात् चोथाई प्रमाण से सेवन कराना चाहिए। तथा दूसरे दिन आधी राई, तीसरे दिन तीन राई, चोथे दिन चार राई के बराबर सेवन करें। फिर पांचवें दिन से प्रति दिन एक २ राई १ माशे भर पूर्ण होने तक बढानी चाहिए। इस प्रकार इस रस को चित्रक, आदी, सैन्धव लवण, मरिच और काले नमक इनके मिश्रित चूर्ण तथा मधु के साथ सेवन करना चाहिए। इस अनुपान के साथ १ पल भर रस पूर्ण होने तक सेवन करने से मनुष्यों को समस्त व्याधियां, वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु से रक्षा करता है॥ २६—२९॥

अथ पञ्चामृतरसः—

हेममाक्षिककान्ताभ्रवज्रभस्म प्रवेशयेत्।
रसे सहेम्नि सप्ताहं मूलिकारसमर्दिताम्॥ ३०॥
तां पिष्टीं यन्त्रयोगेन पचेत्पञ्चामृताह्वयः।
रसोऽयं मधुसर्पिर्भ्यां युक्तः पूर्वाऽधिको गुणैः॥ ३१॥

स्वर्णभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म और हीरे की भस्म और शुद्ध पारद सम भाग ले कर प्रथम पारद और स्वर्णभस्म को अत्यन्त खरल करके उन में शेष पदार्थ मिलाकर सात दिन तक मूली के स्वरस के साथ घोट कर गोला बना कर सुखा के भूधर यन्त्र में बन्द कर के पाक करें। यह पञ्चामृत रस है इसको उचित मात्रा से शहद और घृत के साथ मिला कर प्रति दिन सेवन करने से पूर्वोक्त वज्रपञ्जर रस से भी अधिक लाभ करता है॥ ३०-३१॥

अथ मृतसंजीवनीवटी—

कान्ताभ्रताप्यसत्त्वानां वज्रहेम्नो रसस्य च।
सप्ताहमम्लपिष्टानां गोलके लेपितेऽन्वहम्॥ ३२॥
गोजिह्वा वायसी पथ्या निर्गुण्डी मधु सैन्धवम्।
स्विन्ने भूमध्ययन्त्रस्थे पश्चात्कठिनतां गते॥ ३३॥
यवचिञ्चापलाशाक्षराजिकार्पासतण्डुलैः।

आवर्तितान्तर्लिप्तायां मूषायां खदिराग्निना ॥ ३४ ॥
टङ्कणं श्वेतकाचञ्च दत्त्वा दत्त्वा विशोषिते ।
मूषायां विडयोगेन समांशं हेम जारयेत् ॥ ३५ ॥
सम्वत्सरं मुखधृता मृतसञ्जीवनी मता ।
गुटिका शुक्रस्तम्भं च कुरुते वार्धमृत्युजित् ॥ ३६ ॥

कान्तलौहभस्म, अभ्रकभस्म, सुवर्णमाक्षिकभस्म, हीरे की भस्म, सुवर्ण भस्म और शुद्ध पारद इन सब को सम भाग लेकर एक सप्ताह तक काञ्जी के साथ खरल कर के गोला बना लें। फिर गाजुआ, काकनासा, हरड़, निर्गुण्डी की जड़, शहद् और सैन्धव लवण इन सब को पीस कर कल्क बना के उक्त गोले पर दो २ अङ्गुल मोटा इस कल्क का प्रलेप करके सुखा कर भूधर यन्त्र में पकावें। इस तरह प्रति दिन गोले के ऊपर उक्त कल्क का प्रलेप कर के भूधर यन्त्र में पकाते रहें। इस तरह पन्द्रह दिन तक पाक करने के पश्चात् क्षीरनी की जड़, पलाश का क्षार, बहेडे का चूर्ण, राई और कपास के बीज इनको जल से पीसकर कल्क करलें। फिर इस कल्क को एक मूषा के भीतर लीप कर उसमें उपर्युक्त गोले को रख कर बालुका यन्त्र में गाड दें, तथा भट्टी के नीचे खैर की लकड़ी जला कर धोंकनी से अग्नि को प्रदीप्त करें। पाक करते समय मूषा के भीतर थोड़ा २ सुहागा और श्वेत कचिया नीम या सोरा डाल २ कर पकावें। फिर उसी मूषा में वडवानल विड डाल कर पारद के समान भाग शुद्ध स्वर्ण देकर जारण करना चाहिए। स्वाङ्ग शीतल मूषा के भीतर से जारित औषध को निकाल कर खरल में महीन घोट कर छोटी २ गोलियां बना कर शीशी में भर दें। यह मृतसञ्जीवनी गुटिका कहलाती है। इन गोलियों को उचित मात्रा से वर्ष भर सेवन करने से या मुख में रख कर चूसने से शुक्र का स्तम्भन करती है तथा जरा और अकाल मृत्यु का हरण करती है ॥ ३२–३६ ॥

अथ महानीलतैलम्—

वटप्ररोहं पिण्डीतमूलत्वक्कृष्णसैर्यकैः ।
केतकीस्तनभृङ्गायः शकलीत्रिफलार्जुनैः ॥ ३७ ॥
पृथग्दशपलैः सार्धं चतुर्द्रोणेष्वपां पचेत् ।
अष्टभागावशिष्टेऽस्मिन्भृङ्गस्वरसपेशिते ॥ ३८ ॥

त्रिफलानीलययश्चूर्णं पृथग्द्विपलिकैर्युतम् ।
तैलाढकं समक्षीरं पक्त्वा मृतरसान्वितम् ॥ ३९ ॥
महानीलं सुभाण्डस्थं मण्डलं धान्यमध्यगम् ।
अभ्यङ्गविधियोगेन केशानां रञ्जनं परम् ॥ ४० ॥

वट के अङ्कुर, मैनफल वृक्ष के जड़ की छाल, काले पुष्पों वाली कटसरैया, केवड़े के पुष्प का दुग्ध या स्वरस, भृङ्गराज, लौहचूर्ण, त्रिफला और अर्जुन वृक्ष की छाल इनमें से प्रत्येक को दश २ पल लेकर चार द्रोण जल में पकाकर अष्टमांश शेष रख के उतार कर छान लें। पश्चात् त्रिफला चूर्ण, नील वृक्ष की जड़ का चूर्ण और लौहचूर्ण इन्हें दो दो पल भर लेकर भृङ्गराज के स्वरस से खरल कर के उपर्युक्त क्वाथ में मिला दें। फिर उसी क्वाथ में १ आढक तिल तैल तथा १ आढक दुग्ध मिला कर पाक करें। तैल पाक हो जाने पर नीचे उतार के छान कर १ पल भर पारद भस्म मिलाकर चिकने मिट्टी के पात्र में भरकर मुख बन्द करके ४० दिन तक धान के ढेर (समूह) में गाड दें। यह तैल शिर में लगाने से केशों को अत्यन्त काले कर देता है ॥ ३७-४० ॥

अथ ज्वरे रसकल्पः—

समुस्तपर्पटक्काथो भस्मसूतो हरेज्ज्वरम् ॥ ४१ ॥

नागर मोथे और पित्त पापड़े के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से ज्वर को दूर करती है ॥ ४१ ॥

अथ त्रिदोषज्वरे—

दशमूलकषायेण पिप्पल्या च समस्तजम् ॥ ४२ ॥

पारद भस्म को पिप्पली के चूर्ण के साथ मिला कर दशमूलक्वाथ के अनुपान के साथ सेवन करने से त्रिदोष ज्वर नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

अथ रक्तपित्ते—

माक्षिकाऽभयया वासापिप्पल्या वास्रपित्तनुत् ॥ ४३ ॥

पारदभस्म तथा हरड़ के चूर्ण को मधु के साथ मिला कर अथवा वासा (अड़ूसे) का स्वरस और पिप्पली के चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से रक्तपित्त को नष्ट करती है ॥ ४३ ॥

अथ कासे—

कण्टकारीकषायेण पिप्पल्या च स कासजित् ॥ ४४ ॥

पारद भस्म और पिप्पली चूर्ण को कटेरी के क्वाथ के साथ पीने से खांसी नष्ट हो जाती है ॥ ४४ ॥

अथ क्षये—

अजायाः क्षीरसिद्धेन कणायुक्तेन सर्पिषा ॥
त्रिफलागन्धकव्योषगुडैर्वा क्षपयेत्क्षयम् ॥ ४५ ॥

पिप्पली को बकरी के दुग्ध के साथ पीस कर चौगुने घृत तथा चौगुने ही बकरी के दुग्ध में मिला कर चौगुना पानी डाल के घृत सिद्ध करलें। इस घृत के साथ अथवा त्रिफला, शुद्ध गन्धक, त्रिकटु और गुड़ के सम भाग मिश्रित महीन चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से क्षयरोग को नष्ट करती है ॥४५॥

अथ हिक्कायाम्—

हिक्कां निहन्ति रुचकबीजपूराम्लमाक्षिकैः ॥ ४६ ॥

काला नमक, बिजोरे निम्बू का रस और शहद् के साथ पारदभस्म सेवन करने से हिक्का रोग को नष्ट करती है ॥ ४६ ॥

अथ छर्दिदाहयोः—

छर्दिदाहौ मधुसितालाजामुद्गसिताम्बुभिः ॥ ४७ ॥

शहद्, चीनी और लावे के चूर्ण को मूंग की दाल के क्वाथ या यूष में मिला कर अथवा केवल चीनी के पानी के साथ पारदभस्म सेवन करने से वमन और शरीर की जलन को दूर करती है ॥ ४७ ॥

अथार्शसि—

अर्शांसि तैलसिन्धूत्थपुटपाचितसूरणैः ॥ ४८ ॥

पारद भस्म को पुट से पकाए हुए सूरण कन्द के चूर्ण और कड़ुए तैल तथा सैन्धव लवण चूर्ण के साथ मिला कर सेवन करने से अर्श रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथातिसारे विसूच्याञ्च—

त्वक्पल्लवैः कषायाणां शृतेनोदश्विदम्भसा ।
क्षीरिण्या वाप्यतीसारं; विसूचीं कणहिङ्गुना ॥ ४९ ॥

दुग्ध वाले वृक्षों (वट आदि) की छाल और पत्तों के द्वारा शृत शीत क्वाथ के साथ, अथवा उदश्विज्जल (दही और जल समभाग मिलाने से बनता है) के साथ अथवा खिरनी के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से

अतीसार को नष्ट करती है तथा पिप्पली चूर्ण और घृत भर्जित हींग के साथ सेवन करने से विसूचिका को नष्ट करती है ॥ ४९ ॥

अथ अजीर्णे—

अजीर्णं काञ्जिकैरण्डक्काथपथ्यावलेहतः ॥ ५० ॥

पारद भस्म को काञ्जी या एरण्ड की जड़ के क्वाथ अथवा हरड के अवलेह के साथ सेवन करने से अजीर्ण नष्ट होता है ॥ ५० ॥

अथ प्रवाहिकायाम्—

कषायपल्लवैः पक्वं बालबिल्वं सनागरम् ।
सगुडं सरसं हन्ति बिम्बिसीं दारुणामपि ॥
बिल्वकर्कटिकागर्भं मसूरक्वथिताम्बु वा ॥ ५१ ॥

कसैले वृक्ष अर्थात् जामुन, दाडिम, आदि के पत्तों की लुगदी बनाकर उस में पका हुआ बिल्वफल और आदी रखकर गोला बना के उन्हीं पत्तों से लपेट कर कपडमिट्टी करके पुटपाक करें । स्वाङ्गशीतल होने पर मिट्टी हटा के भीतरी गोले का महीन चूर्ण बनाकर उसमें गुड़ और पारद की भस्म मिलाकर सेवन करने से भयङ्कर प्रवाहिका रोग नष्ट हो जाता है । अथवा बिल्व फल का गूदा और ककड़ी का मध्य भाग इन दोनों को मसूर की दाल के यूष में मिला कर इस यूष के साथ पारदभस्म सेवन करने से उक्त रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रे—

कृच्छ्रं मृतरसक्षीरक्षीरिणीक्षुरमाक्षिकैः ॥ ५२ ॥

पारद की भस्म को दुग्ध, खिरनी की जड़ के चूर्ण, तालमखाने के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५२ ॥

अथ मेहेषु—

पारदभस्मशिलाजतुकृष्णालोहमलत्रिफलाकुलिबीजम् ।
ताप्यनिशारजतोपलकान्तव्योषरजः खपुरश्च कपित्थात् ॥ ५३ ॥
सर्वमिदं परिचूर्ण्य समांशं भावितभृङ्गरसं दिवसादौ ।
विंशतिवारमिदं मधुलीढं विंशतिमेहहरं हरिदृष्टम् ॥ ५४ ॥

पारद की भस्म, शुद्ध शिलाजीत, पीपलचूर्ण, लोहभस्म या मण्डूरभस्म, त्रिफलाचूर्ण, गन्धनाकुली के बीजों का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म, हरिद्राचूर्ण, चांदी

की भस्म, सूर्यकान्त मणि की भस्म, त्रिकटु चूर्ण, अभ्रकभस्म, शुद्धगूगल और कैथ का गूदा इन सब को सम भाग लेकर एकत्र महीन पीस के २० वार भांगरे के स्वरस से भावित करके घोट कर शुष्क चूर्ण वना के शीशी में भर दें। इस चूर्ण को प्रतिदिन शहद् के साथ सेवन करने से बीस प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट हो जाते हैं। यह हरि नामक आचार्य का अनुभव किया हुआ योग है॥५३-५४॥

अथ प्लीहादौ—

न्यग्रोधाद्यसनाद्यैर्वा क्वाथयुक्तो मृतो रसः।
पश्चाल्लशुनगोमूत्रैः प्लीहगुल्मनिबर्हणः ॥ ५५ ॥

न्यग्रोधादिगण और असनादि गण की औषधियों के क्वाथ के साथ पारद की भस्म को सेवन करके ऊपर से लहसन कल्क मिश्रित गोमूत्र के पीने से प्लीह वृद्धि और गुल्म रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५५ ॥

अथ पक्तिशूले—

कलाययूषशम्बूकक्षाराभ्यां पङ्क्तिशूलनुत् ॥ ५६ ॥

पारद भस्म को मटर के यूष और शङ्ख भस्म के साथ मिलाकर सेवन करने से परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ ५६ ॥

अथ आमशूले—

सत्र्यूषणतिलक्वाथेनामशूलस्य नाशनः ॥ ५७ ॥

सोंठ, मरिच, पीपल और तिल के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से आमशूल नष्ट हो जाता है ॥ ५७ ॥

अथ उदरे—

नवनीतसुधाक्षारभावितोऽभययोदरे ॥ ५८ ॥

मक्खन और थूहर के क्षार से हरड के चूर्ण को भावित करके उसके साथ पारदभस्म सेवन करने से उदर रोगों को नष्ट करती है ॥ ५८ ॥

अथ कामलायाम्—

स हितः सहितो यष्टीवारिणा कामलामये ॥ ५९ ॥

मुलेठी के क्वाथ में पारद भस्म मिलाकर प्रतिदिन पीते रहने से कमलारोग में लाभ होता है ॥ ५९ ॥

अथ पाण्ड्वादौ—

फलत्रिकादिक्काथेन पाण्डुशोफे सकामले॥ ६०॥

त्रिफला के क्वाथ के साथ पारद भस्म सेवन करने से पाण्डुरोग, शोथ रोग और कामला में लाभ होता है॥ ६०॥

अथ शोथे—

शोफे सविश्वभूनिम्बक्काथगोमूत्रसंयुतः।
निम्बामलककङ्कुष्ठैः प्रशस्तः स मृतो रसः॥ ६१॥

सोंठ और चिरायते के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पारद भस्म सेवन करके ऊपर से क्वाथ पीने से अथवा नीम की छाल, आंवलें और कंकुष्ठ के चूर्ण के साथ पारदभस्म सेवन करने से शोथरोग में लाभ होता है॥ ६१॥

अथ कुष्टे

रसोनराजिकावह्निनीलिमार्कवपल्लवैः।
तुल्यं भल्लातकं क्षिप्त्वा क्षीरे तैलं विपाचितम्॥ ६२॥
भूशिरीषसुपर्णाद्योः पञ्चाङ्गं माक्षिकं घृतम्।
रसं च लीढ्वा कुष्ठार्तो लिम्पेत्त्रिकटुना तनुम्॥
रसगन्धकपिष्ट्या वा कटुतैलाभियुक्तया॥ ६३॥
कर्पूरवल्लीसहनिम्बतैलपातालमूलीरसभावितेन।
रसेन लिह्यात्सकलं हठं वा विचूर्णितं पुष्परसं स कुष्ठी॥६४॥

लहसून की गिरी, राई, चित्रक, नीली वृक्ष को छाल, भृङ्गराज के पत्ते ये सब समभाग तथा इन के बराबर शुद्ध भिलावां लेकर सब को कूट पीस कर जल से कल्क बनाकर चोगुने दुग्ध में मिलाकर तैल पका लें। इस तैल में पारद भस्म मिलाकर अभ्यङ्ग करने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। अथवा शिरीष और पाताल गरूडी अथवा नाग केशर इनका पञ्चाङ्ग लेकर कूट पीस के शीशी में भर दें। इस चूर्ण और पारद भस्म को शहद और घृत में मिला कर कुष्ठार्त मनुष्य सेवन करके त्रिकटु के कल्क से अपने शरीर पर लेप करें, अथवा कडुए तैल में गन्धक चूर्ण और पारद भस्म मिलाके शरीर पर लेप करें। अथवा कर्पूर, आकाशवल्ली, अर्थात् अमरवेल अथवा कर्पूर लता, सहचर, निम्ब का तैल और पाताल गरूडी के स्वरस से भावित किये हुए मृत पारद के साथ रोहिषतृण का चूर्ण और

जल कुम्भी का चूर्ण मिला कर सबको पुष्परस अर्थात् शहद् में घोट के कुष्ठी सेवन करे ॥ ६२-६४ ॥

अथ कुष्ठे रसकल्पः—

फेनिलफलाहिदर्वीकन्दरसं खादतोऽनुदिनम् ।
फेनिलमूलोद्वर्तनमाचरतोऽपि च कुतः कुष्ठम् ॥ ६५ ॥

रीठों की गिरी और नागदोन कन्द दोनों के चूर्ण के साथ समभाग पारद भस्म मिलाकर प्रतिदिन शहद् के साथ मिलाकर सेवन करने से तथा रीठे की जड़ के कल्क का शरीर पर उबटन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ६५ ॥

अथ किलासे रसकल्पः—

चित्रकवानरिवायसीतुण्डी वाकुचिका द्विगुणाः परिपीताः ।
मूत्रयुता मृतसूतसमेतास्तक्रभुजः शमयन्ति किलासम् ॥६६॥

चित्रक की जड़, कौञ्च के बीज, काकनासा, बिम्बीफल और वाकुची इन्हें समभाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण बना लें । फिर पारदभस्म २ रत्ती तथा उपर्युक्त चूर्ण ४ रत्ती भर लेकर गोमूत्र में घोलकर प्रतिदिन पीवें तथा मट्ठे के साथ भोजन करें । इस तरह इस योग के सेवन करने से किलासकुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥६६॥

अथ श्वित्रे रसकल्पः—

द्रुतगगनमरीचीबाकुचीतालपर्ण्यौ
सलिलरिपुनकुल्यौ कृष्णशुण्ठ्यौ सभृङ्गम् ।
मरिचमसितसोमश्चित्रकाङ्कोलबीजं
वरतिलशशिलेखे त्वक् च शाखोटकस्य ॥ ६७ ॥
फलत्रयं च तत्सर्वं मृतसूतसमन्वितम् ।
क्षीरान्नवर्त्तनो जग्ध्वा श्वित्रमाशु निवर्तयेत् ॥ ६८ ॥

अभ्रकसत्त्व, श्वेत मरुआ या सूर्यकान्त मणि की भस्म, बाकुची चू०, तालमूली चू०, भिलावें का चू०, नकुलकन्द, पिप्पली चू०, सोंठ का चू०, भृङ्गराज चू०, मरिचों का चू०, धवका चू० कपूर, चित्रककी जड़ का चू०, अङ्कोलबीज, काले तिलों का चू०, गिलोय का सत्त्व, शाखोट वृक्ष की छाल का चू०, त्रिफला चू० और पारदभस्म इन्हें समभाग लेकर खरल में महीन कर के शीशी में भर दें । प्रतिदिन एक२ माशे भर इस चूर्ण को मधु के साथ सेवन करके दुग्ध के

साथ पथ्य भोजन कर सेवन करने से श्वित्र जल्दी ही नष्ट हो जाता है ॥ ६७-६८॥

अथ क्रिमौ रसकल्पः—

सनिम्बपल्लवक्षौद्रः क्रमीन्हन्ति मृतो रसः ॥ ६९ ॥

पारदभस्म नीम के पत्तों के चूर्ण और शहद् के साथ सेवन करने से क्रमियों को नष्ट करती है ॥ ६९ ॥

अथ वातरोगे रसकल्पः—

पीतो लशुनसिद्धेन तैलेनानिलजान्गदान् ॥ ७० ॥

लहसून के कल्क से सिद्ध किये हुए तैल के साथ पारदभस्म सेवन करने से वातजन्य रोगों को नष्ट कर देती है ॥ ७० ॥

अथ गृध्रस्यां रसकल्पः—

विश्वैरण्डश्रृतक्षीरसहितो गृध्रसीं जयेत् ॥ ७१ ॥

सोंठ और एरण्ड की जड के कल्क से सिद्ध किये हुए दुग्ध के साथ पारदभस्म सेवन करने से गृध्रसी रोग को नष्ट करती है ॥ ७१ ॥

अथ वातरक्ते विषकल्पः—

गुडाभयागुडूच्यम्बुयुक्तः पवनशोणितम् ॥ ७२ ॥

गुड, हरड का चूर्ण और गिलोय के स्वरस के साथ पारदभस्म सेवन करने से वातरक्त को नष्ट करती है ॥ ७२ ॥

अथ स्थौल्ये रसकल्पः—

त्रिकटुत्रिफलावेल्लैः समांशो गुग्गुलुर्जयेत् ।
वातारितैलसंयुक्तः स्थौल्यं भस्मरसान्वितः ॥ ७३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला और वायविडङ्ग के चूर्ण के बराबर शुद्ध गूगल लेकर उस में पारदभस्म मिला के महीन पीसकर एरण्ड के तैल के साथ मिला के प्रतिदिन सेवन करने से स्थौल्य रोग को नष्ट करती है ॥ ७३ ॥

अथ कार्श्ये रसकल्पः—

मधूदकाभ्यां युक्तो वा, कार्श्यं तु शर्करान्वितः ॥ ७४ ॥

अथवा शहद् और जल के घोल के साथ पारदभस्म सेवन करने से स्थौल्य रोग नष्ट होजाता है तथा चीनी के साथ सेवन करने से कृशरोग को नष्ट करती है॥ ७४॥

अथापस्मारादौ रसकल्पः—

हिङ्गुसौवर्चलव्योषमूत्रसिद्धेन सर्पिषा ॥
रसो हन्यादपस्मारमुन्मादं च तथाञ्जनात् ॥ ७५ ॥

हींग, सोंचल नोमक, त्रिकटु चूर्ण इनके कल्क और गोमूत्र से सिद्ध किये हुए घृत के साथ पारदभस्म सेवन करने से अपस्मार तथा इसी योग के अञ्जन करने से उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ७५ ॥

अपस्मारादौ अन्ययोगः—

मधूककुनटीतार्क्ष्यपारावतमलैर्युतः ॥ ७६ ॥

महुए के पुष्प या मुलेठी, मैनसील, रसाञ्जन और कबूतर की पीठ (विष्ठा) के साथ पारद भस्म के अञ्जन करने से अपस्मार रोग नष्ट हो जाता है ॥७६॥

अथ पक्ष्मशाते रसकल्पः—

धान्याम्लपिष्टाष्टमपिप्पलीकाक्कार्पासबीजाङ्करमर्दनेन ।
आदाय तैलं मृतसूतयुक्तमक्षिण प्रयुञ्जीत विशीर्णरोम्णि ॥७७॥

काञ्जी के साथ पीसी हुई अष्टमांश पिप्पली और कार्पास के बीज दोनों को अच्छी तरह पीस कर तैल निकाल लें । फिर इस तैल में पारदभस्म मिला कर पलकों के नष्ट बाल (केश) वाली आंख में अञ्जन करने से लाभ होता है ॥७७॥

अथ नेत्ररोगे रसकल्पः—

बर्बूरनिम्बकिसलाजपुरीषधूमैः
कासेक्षुराश्मवनितास्तनजेन घृष्टम् ।
भल्लातधूपितरसाञ्जनमञ्जयित्वा
साभ्यञ्जनस्नपनमक्षिण रुजं निहन्ति ॥ ७८ ॥

बकुल (मोलसिरी) और नीम के कोमल पत्ते, बकरी की मींगनी, रसोई घर का धुआं, कासतृण या कांसे की भस्म, तालमखाने का चूर्ण, स्वर्णमाक्षिकभस्म और भिलावों के धुएं से धूपित की हुई रसोंत तथा पारदभस्म इन्हें समभाग लेकर महीन पीस के स्त्री के या गौ के दुग्ध के साथ घोट कर अञ्जन करें तथा तैल का अभ्यङ्ग करके स्नान करने से नेत्रों के लिये विशेष लाभ होता है तथा नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

अथ तिमिरे—

महाभेरीमूलं तुरगपृथुकाम्भोधिकुवलं-
रसो जम्बीराम्ले जयति तिमिरं काचमपि च ॥ ७९ ॥

वचा की जड़, असगन्ध, हिङ्गुपत्री, समुद्रफेन, नीलमकल और पारदभस्म इन्हें समभाग घोट कर जम्बीरी नीम्बू के रस के साथ खरल करके नेत्रों में अञ्जन करने से तिमिर और काचरोग नष्ट हो जाता है ॥ ७९ ॥

अथ जाड्ये—

उपात्तं जीमूताद्रविजधरपर्णाम्बुमृदिता-
द्रसस्तैलं लेपादिह विविधजाड्यं च गुदजान् ॥ ८० ॥

आक के अङ्कुर और गिरिनिम्ब इन दोनों के स्वरस से घोषक के बीजों को घोट कर तैल निकाल लें। इस तैल में पारदभस्म मिला कर लेप करने से अर्शरोग (मस्से) नष्ट हो जाता है तथा विविध प्रकार की जड़ता अर्थात् दुर्बलता दूर हो जाती है ॥ ८० ॥

अथ व्रणे—

त्रिफलापटोलमूलव्योषगुडूचीविडङ्गबीजानि।
समगुग्गुलानि मारितरसमिलितानि व्रणघ्नानि ॥ ८१ ॥

त्रिफला, परवर की जड़, त्रिकटु, गिलोय का सत्व, वायविडङ्ग ये प्रत्येक सम भाग तथा इनके बराबर शुद्ध गूगल लेकर महीन चूर्ण करके उस में एक भाग पारदभस्म मिलाकर व्रण पर छिड़कने से या जल से पीस कर लेप करने से व्रण भर कर ठीक हो जाता है ॥ ८१ ॥

अथ ग्रन्थौ मसूरिकायाञ्च—

ग्रन्थीन्विलेपयेत्तेषां लेपान्मूलरसान्वितम्।
नारिकेरोदकं तद्वत्पीतं हन्ति मसूरिकाः ॥ ८२ ॥

उपर्युक्त त्रिफलादि पारदान्त चूर्ण के कल्क का ग्रन्थियों पर लेप करने से वे बैठ जाती हैं तथा पारद भस्म को नारियल के जल और ऊख की जड़ के रस के साथ सेवन करने से मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८२ ॥

अथ सिध्मादौ—

मञ्जिष्ठाशररोद्भवं तुवरिका लाक्षा हरिद्राद्वयं

नेपाली हरितालकुङ्कुमगदागोरोचना गैरिकम्
पत्रं पाण्डुवटस्य चन्दनयुगं कालेयकं पारदं
पत्तङ्गं कनकत्वकं कमलजं बीजं तथा केशरम् ॥ ८३ ॥
सिक्थं तुत्थं लोहकिट्टं वसाज्यमाजं क्षीरं क्षीरवृक्षाम्बु चाग्नौ ।
सिद्धं सिध्मव्यङ्गनील्यादिनाशे वक्त्रच्छायामैन्दवीमाशु धत्ते ॥८४॥

मंजीठ, सफेद लोध, फिटकिरी, शुद्ध लाख, हलदी, दारु हलदी, मैनसिल, हरताल, केसर, कूठ, गोरोचन, गेरु, बड़ के पके हुए (पीले) पत्ते श्वेतचन्दन, लालचन्दन, काली अगर, पारदभस्म, पतङ्ग, धत्तूरे की जड़ की छाल या चम्पे की छाल, कमल की डण्डी, कमल के बीज, कमल की केसर, मोम, नील तुत्थ, लौहकीट्ट, वासा, बकरी का घी और दुग्ध और क्षीरी वृक्ष अर्थात् बट, गूलर और पीपल आदि के स्वरस इन सब को समभाग लेकर महीन चूर्ण करके गोला बना लें। इस गोले (कल्क) से तैल सिद्ध करके मुखादि पर अभ्यङ्ग करने से सिध्म नामक कुष्ठ, व्यङ्ग और मुख के काले दाग आदि नष्ट हो जाते हैं। इस तैल के प्रतिदिन लगाने से चन्द्रमा के समान मुख की शोभा बढ जाती है ॥ ८३-८४ ॥

अथास्थिस्रावे—

कार्पासपल्लवानन्तारसतैलयुतो हितः ।
अस्थिस्रावे मृतरसो; ॥ ८५ ॥

कपास के पत्ते और अनन्तमूल के रस तथा तिलतैल में पारद भस्म मिला कर सेवन करने से अस्थिस्राव रोग में लाभ होता है ॥ ८५ ॥

अथ विषे—

'—विषे स्थावरजङ्गमे ।
तण्डुलीयकमूलेन वीरामूलेन वा युतः ॥
तण्डुलोदकसम्मिश्रः पाननावनलेपने ॥ ८६ ॥

स्थावर या जङ्गम विष के द्वारा पीडित रोगी को चोलाई जड़ के चूर्ण अथवा क्षीरकाकोली के चूर्ण और चावलों के धोवन के साथ पारदभस्म सेवन कराने (पीने) से तथा नस्य और लेप करने से शीघ्र लाभ होता है ॥ ८६ ॥

अथ विषे प्रयोगान्तरम्—

सुरभिशकृद्रसभावितकर्पूरसमन्वितो मृतः सूतः।
स्थावरजङ्गमकृत्रिमविषजिद्गुञ्जामितो दध्ना ॥ ८७ ॥

गाय के गोबर के स्वरस से सात बार भावित किये हुए कर्पूर चूर्ण के साथ १ रत्ती भर मृत रस (पारद) को दही में मिलाकर सेवन करने से स्थावर, जङ्गम और कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है ॥ ८७ ॥

अथ सर्पविषे—

यक्षाक्षफेनिलरसोनकटुत्रयोग्रा-
राजीवराङ्घ्रिबकुलं लकुचाम्बुपिष्टम्।
छायाविशोषितमिदं नरवारिघृष्टं।
सर्पापहं सरसमञ्जनतस्त्रिवारान् ॥ ८८ ॥

बिरौजा या वट वृक्ष की छाल, बहेड़ा, रीठे का चूर्ण, लहसून, त्रिकटु, वचा, लाल सरसों, श्वेत अपराजिता, मौलसिरी की जड़ और पारद की भस्म इन्हें सम भाग लेकर महीन कूट पीस के बड़हर के रस के साथ भावित कर के घोट कर छाया शुष्क गोलियां बनालें। इन गोलियों को मनुष्य के मूत्र के साथ पीस कर तीन वार अञ्जन लगाने से सर्प का विष नष्ट हो जाता है ॥ ८८ ॥

अथ सर्पविषे पिशाचाद्यञ्जनम्—

पिशाचः पञ्चवर्णस्य बीजं मूलं पुनर्नवात्।
देवदाल्याः फलं मूलं मूलं च विषपर्णतः ॥
पेषितं नरमूत्रेण सर्वथाऽहिविषापहम् ॥ ८९ ॥

बहेड़ा, धत्तूरे के बीज, पुनर्नवा की जड़, देवदाली का फल और जड़ और घोषक या बिच्छेछी घास की जड़ इन्हें सम भाग लेकर मनुष्य के मूत्र के साथ पीस कर नेत्रों में अञ्जन करने से निश्चय ही सर्प विष नष्ट हो जाता है। इस योग में पारद भस्म न कहने पर भी १ भाग के प्रमाण से मिलानी चाहिए ॥८९॥

अथ उन्दुरुविषे—

कपित्थपञ्चकं नीरं रसं चाखुविषापहम् ॥ ९० ॥

कैथ के फल, पुष्प, पत्र, जड़ और छाल, नेत्र बाला और पारदभस्म इन्हें सम भाग लेकर महीन चूर्ण कर के सेवन करने से तथा प्रलेप करने से चूहे का विष नष्ट हो जाता है ॥ ९० ॥

अथ वृश्चिकविषे—

कांस्ये ताम्बुल्या नागरं पिष्टमद्भिः
पत्रं शैरीषं पिप्पलीछागदुग्धैः ।
पत्रं कार्पासात्सर्पिषा वाऽपि लेपात्
सूतेनोपेतं वृश्चिकानां विषघ्नम् ॥ ९१ ॥

कांसे के बर्तन में नागर वेल के पत्ते के रस से सोंठ के चूर्ण और पारद भस्म को पीस कर लेप करने से अथवा शिरीष के पत्ते और पारद भस्म को पानी से पीस कर अथवा पीपल के चूर्ण और पारद भस्म को बकरी के दुग्ध से पीस कर अथवा कपास के पत्ते और पारद भस्म को कांसे के पात्र में घृत के साथ पीस कर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ९१ ॥

अथ विषदिग्धव्रणे—

भावितश्चणकाम्लेन वस्त्रमम्लेन मर्दयेत् ।
तेन बाकुचिचक्राह्वकार्पासागस्तिपल्लवान् ॥ ९२ ॥
एकस्य लकुचस्याम्ले स्वरसेन रसेन यः ।
प्रक्षालितः प्रयात्येव विषदिग्धव्रणः शमम् ॥ ९३ ॥

चणों के खार से वस्त्र को भीगो कर ७ दिन तक रख दें । प्रतिदिन वस्त्र पर नया २ चने के खार का पानी डालते रहना चाहिए । फिर इस वस्त्र से बाकुची, चकवड़, कपास और अगस्त्य के पत्तों को लपेट कर किसी अम्ल (काञ्जी) से घोट कर रस निकाल कर उस में पारद भस्म मिला कर विषदिग्ध शस्त्र से उत्पन्न व्रण का प्रक्षालन करें । अथवा केवल बड़हर के फल को अम्ल से पीस कर स्वरस निकाल के उस में पारद भस्म मिला कर उक्त व्रण का प्रक्षालन करने से वह निश्चय ही ठीक हो जाता है ॥ ९२-९३ ॥

अथ रसायने रसकल्पः—

रसायनोक्तविधिना शुद्धो लब्धबलः पुनः ।
प्रातः प्रातः कणापथ्याविश्वसैन्धवचित्रकम् ॥ ९४ ॥
पीत्वा संरक्षणायाग्नेरीषदुष्णेन वारिणा ।
भृङ्गामलकनिर्यासे भावितं व्योमकान्तयोः ॥ ९५ ॥
भस्माऽयः सम्पुटे धान्ये स्थापितं मधुसर्पिषा ।

खादेन्निशि कणा पथ्या मासमेकं तथा पुनः ॥ ९६ ॥

रसायनों के द्वारा विष के विकार के दूर हो जाने के पश्चात् देह की शुद्धि कर के बल प्राप्त हो जाने पर प्रतिदिन प्रातःकाल पिप्पली, हरड़, सोंठ, सैन्धवनमक और चित्रक की जड़ इन के समभाग चूर्ण को मन्दोष्ण पानी के साथ सेवन करने से जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। पश्चात् अभ्रकभस्म और कान्तलोह की भस्म को समभाग लेकर भृङ्गराज और आंवलों के स्वरस से क्रमशः पृथक् २ सात २ वार भावित करके लोह के सम्पुट में बन्द करके धान के ढेर में गाड़ दें। फिर निकालकर खरल करके पिप्पली और हरड़ के चूर्ण तथा शहद् और घृत के साथ सन्ध्या के समय एक मास तक सेवन करें ॥ ९४-९६ ॥

अथान्योरसकल्पः—

पातनाभस्मनायुक्तमथ सूतस्य भस्मना।
जीर्णाऽल्पहेम्नः षण्मासाच्छतावर्या रसेन च ॥ ९७ ॥

उद्ध्र्वपातनादि संस्कार करने के पश्चात् की हुई पारदभस्म अथवा स्वर्ण के साथ जारित की हुई पारदभस्म को उचित मात्रा से ६ मास तक शतावर के स्वरस के साथ सेवन करने से सर्व रोग नष्ट होकर देह पुष्टि हो जाती है ॥ ९७ ॥

अथ कल्पान्तरम्—

त्रिफलां मधुसर्पिभ्यां खादिरासनभाविताम्।
मृतहेमरसोपेतां भक्षयेद्धक्षयेज्जराम् ॥ ९८ ॥

खैर और असन (बिजैसार) के क्वाथ से भावित की हुई त्रिफला का चूर्ण और स्वर्णभस्म तथा पारदभस्म को समभाग लेकर खरल मे पीसकर शीशी में भर दें। प्रतिदिन १ माशे भर इस योग के शहद् और घृत के साथ सेवन करने से जरा नष्ट हो जाती है ॥ ९८ ॥

अथ कल्पान्तरम्—

गन्धकेन हतं सूतं कान्तं धात्रीरसेन च।
त्रिफलासहितं खादेज्जीवेदाचन्द्रतारकम् ॥ ९९ ॥

गन्धक के द्वारा की हुई पारदभस्म और कान्त लोहभस्म को एक २ रत्ती भर लेकर त्रिफला के १ माशे भर चूर्ण के साथ मिला के आंवलों के रस के साथ

सेवन करने से चन्द्र और तारों के रहने तक निरोग होकर जीवित रहता है, अर्थात् दीर्घजीवी हो जाता है ॥ ९९ ॥

कल्पान्तरम्—

चित्रकं त्रिफला भृङ्गो हरिद्राञ्जनपत्रिका ।
रसस्त्रिमधुरश्चापि जरावैरूप्यनाशनः ॥ १०० ॥

चित्रक की जड़, त्रिफला, भृङ्गराज, हरिद्रा, रसाञ्जन, जावित्री और पारद भस्म इन सबको समभाग लेकर महीन चूर्ण करके शीशी में भर दें। इस चूर्ण में से प्रतिदिन एक २ माशे भर चूर्ण लेकर त्रिमधु अर्थात् घृत शहद् और गुड़ के साथ सेवन करने से जरा और कुरुप को नष्ट करता है ॥ १०० ॥

कल्पान्तरम्—

रसौषधीनां रसभावितानां सितायुतैः क्षीरमधूदकाज्यैः ॥ १०१ ॥

रसायन गुण करने वाली औषधियों (अष्टवर्ग जीवनीयगणादि) के चूर्ण को उन्हीं के स्वरस से सात २ वार भावित करके उसमें पारदभस्म मिलाकर चीनी मिले हुए दुग्ध, शहद्, जल और घृत इनके साथ सेवन करने से जरा रोग नष्ट हो जाता है ॥ १०१ ॥

कल्पान्तरम्—

जरां रसो हन्ति च कान्तपात्रे क्षीरं शृतं काञ्चनपादपिष्ट्या ॥ १०२ ॥

अथवा कान्तलौह की कडाही में दुग्ध को गरम करके उसमें चौथाई भाग स्वर्ण के द्वारा जारण किये हुए पारद की भस्म (१ रत्तीभर) मिलाकर प्रतिदिन पीते रहने से जरा आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१०२॥

अथ वाजीकरणे मदनवर्धनाख्यो रसकल्पः—

समचीर्णजीर्णहेममाक्षिकयोगेन मारिता वृष्यः ।
घृतमधुशतावरीरसदुग्धयुतो मदनवर्धनः सूतः ॥ १०३ ॥

पुरानी स्वर्णमाक्षिक की समानभस्म के योग से बनाई हुई पारद भस्म १ रत्ती भर लेकर प्रतिदिन घृत, शहद्, शतावर का स्वरस और दुग्ध के साथ सेवन करने से अत्यन्त कामशक्ति को बढ़ाती है ॥ १०३ ॥

अथ वाजीकरणे—

लोहितागस्तिसारेण कृष्णरम्भाफलद्रुतम् ।

रसं च घनसारं च पीत्वा स्त्रीषु वृषायते ॥ १०४ ॥

लाल अगस्त्य के पत्तों के या पुष्पों के स्वरस के साथ पिप्पली चूर्ण, केले का फल, पारद भस्म और शुद्ध कर्पूर को घोट कर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को दुग्ध के साथ प्रति दिन सेवन करने से मनुष्य को सम्भोग शक्ति बढ़ जाती है ॥ १०४ ॥

अथ रसप्रयोगे उपचारविधिः—

घनसारचतुर्जातकङ्कोलं कटुकीपलम्।
फलं ताम्बूलवल्लीनां रसस्याक्रमणं परम् ॥ १०५ ॥
भुञ्जीत शालिगोधूमयवषष्ठिकजाङ्गलम्।
मुद्गयूषं गवां क्षीरं मस्तु स्नायात्सुखाम्भसा ॥
रूपयौवनसम्पन्नामनुरूपां प्रियां भजेत् ॥ १०६ ॥

शुद्ध कर्पूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, शीतलचीनी, त्रिकटु और त्रिफला इनका चूर्ण १ पल भर लेकर पान के स्वरस के साथ घोट कर प्रति दिन सेवन करने से शरीर में पारदभस्म का अच्छी तरह पाचनादि होकर सात्मीकरण होता है। रस सेवन करते समय साठी के चांवल के भात, गेहूं की रोटी, जौ का पानी या रोटी, जङ्गलीमांस का रस, मूंग की दाल का पानी, गाय का दुग्ध, दही का पानी सेवन करना चाहिए तथा मन्दोष्ण जल से स्नान करना चाहिए। यदि सम्भोग की प्रबल इच्छा हो तब अपने मन के अनुकूल तथा रुप और सौन्दर्यादि गुणों वाली स्वस्त्री के साथ रमण करे ॥ १०५-१०६ ॥

अथ रससेवनेऽपथ्यानि—

अभ्यङ्गं कटुतैलेन काञ्जीतैलं सुरां दधि।
कालिङ्गकारवेल्लाम्ललशुनासुरिमूलकम् ॥ १०७ ॥
द्विदलं बिल्ववार्ताकं छत्राकं काकमाचिकाम्।
अङ्गसम्मर्दनं रात्रौ जागरं स्वपनं दिवा ॥ १०८ ॥
अत्यम्लतिक्तलवणं स्वादूष्णं शिशिरौषधम्।
शोकवातातपक्रोधचिन्तां च परिवर्जयेत् ॥
साहसं रसलोहानां मारकं च विशेषतः ॥ १०९ ॥

रस सेवन करते समय कड़ुए तैल से देह की मालिश, काञ्जी, तैल सेवन, मद्य, दही, तरबूज, करेला की शाक, खटाई, लहसुन, राई, मूली, दो दल वाली

दाल, अन्न, बेल का फल, बैंगन, सांप की छतरी, मकोय, अङ्गों का दववाना, रात्रि में जागना, दिन में शयन, अत्यन्त खट्टे, तीते और नमकीन पदार्थ, अधिक स्वादु, अधिक उष्ण, अधिक शीतल औषधियां, शोक, वात, घाम, क्रोध, चिन्ता, अधिक साहस के काम तथा रस और अष्टलौह के प्रभाव को कम करने वाली वस्तुएं आदि वर्जित हैं ॥ १०७–१०९ ॥

अथ निषिद्धद्रव्यव्यवहारे दोषः—

सेवया परिहार्याणां रसस्याऽजरणा भवेत् ।
शूलो नाभिपले जाड्यं निद्रालस्यं ज्वरस्तमः ॥
अङ्गभङ्गोऽरुचिर्दाहः; ॥ ११० ॥

उपर्युक्त त्याज्य पदार्थों के सेवन करने से खाया हुआ रस ठीक तरह से नहीं पचता है, नाभि के नीचे उदर में शूल, शरीर में जकड़ाहट, निद्रा, आलस्य ज्वर, तमोगुण की वृद्धि, अङ्गों का टूटना, अरुचि और समस्त देह मे जलन होती है ॥ ११० ॥

अथ निषिद्धद्रव्यव्यवहारजदोषे प्रतीकारः—

'—पिबेत्तत्र दिनत्रयम् ।
सौवर्चलं सगोमूत्रं कर्कोटीमूलवारिणा ॥
मातुलुङ्गस्य वाऽम्लेन माणिमन्थं सनागरम् ॥ १११ ॥

अपथ्य के सेवन से उत्पन्न हुए उक्त उपद्रवों की शान्ति करने के लिये गोमूत्र में सोंचल निमक मिला कर तीन दिन तक पान करें अथवा कर्कोटी की जड़ के क्वाथ या बिजोरे निम्बू के स्वरस में सोंठ का चूर्ण और सैन्धव लवण मिला कर तीन दिन तक पान करें ॥ १११ ॥

अथ नागवङ्गयुक्तरससेवने प्रतीकारः—

नागवङ्गयुतः सूतः प्रमादाद्भक्षितो यदि ।
सैन्धवं कारवेल्लस्य कन्दं मूत्रैः पिबेद्द्रवाम् ॥ ११२ ॥
कर्कोटीगरुडीपथ्याशतपुङ्खैर्विपाचितैः ।
अष्टभागावशिष्टं वा गोमूत्रं सैन्धवान्वितम् ॥ ११३ ॥
यत्नेत्रीकरणं पूर्वं वेधकं च रसं ततः ।
सेवेत तस्य सिद्धिः स्यादन्यथा मरणं ध्रुवम् ॥ ११४ ॥

यदि प्रमाद से नाग और वङ्ग दोष से युक्त पारद का सेवन किया गया हो तब करेली की जड़ को गोमूत्र के साथ पीसकर सैन्धव लवण मिला के पान करे, अथवा बांझ ककोड़ा, पातालगरुड़ी, हरड़ और शरपुङ्खा के कल्क को गोमूत्र में पकाकर अष्टमांश शेष रहने पर सैन्धव लवण डाल कर पान करना चाहिए। इस तरह उपद्रवों की शान्ति हो जाने के पश्चात् क्षेत्रीकरण क्रिया करके वेधनकर्म युक्त पारदभस्म के सेवन करने से पूर्णसिद्धि प्राप्त होती है। अन्यथा शरीर में नाना प्रकार के उपद्रव उत्पन्न होकर निश्चय ही मृत्यु हो जाती है ॥११२-११४॥

अथ ग्रन्थस्योपसंहारः—

युगस्वभावाद्यदि चौषधीनां क्रियासु शक्तिः परिकल्प्यतेऽल्पा।
आयुर्बलादिष्वपि सा तथेति तस्मान्निषेव्यानि रसायनानि ॥११५॥
न चौषधीनामपि सर्वथैव प्रभावहानिः परिकल्पनीया।
फलं प्रयात्युर्ध्वमधस्त्रिवृच्च प्रत्यक्षतः कस्य न सिद्धमेतत् ॥११६॥

युग (कलि आदि) के प्रभाव से यदि औषधियों की रोगनाशक तथा रसायनादि गुणोत्पादक क्रियाओं की शक्ति कम होगई है अत इन का सेवन निष्फल है ऐसी शङ्का कोई करे तो भी उनका सेवन करना ही चाहिए क्यों की आयु और पाचक शक्ति आदि भी कम हो गई है अतः कुछ न कुछ गुण अवश्य ही होगा। मनुष्यों की शक्ति तो नष्ट होगई है फिर भी औषधियों की शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हुई है क्यों कि मैनफल को वामक तथा त्रिवृत् को रेचक गुणयुक्त जो शास्त्र में बताया हुआ है वह आज भी प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। यह इन का गुण किस को नहीं मालूम है अर्थात् सभी जानते हैं ॥ ११५-११६ ॥

औषधीनां गुणदोषकरणे कारणम्—

अदेशकालोपहितान्यसात्म्यान्यत्युष्णतीक्ष्णानि यथौषधानि।
नाशं नयन्ते सहसैव देहं सम्यक् प्रवृत्तानि तथैव वृद्धिम् ॥११७॥

देश और काल के विचार के विना तथा अपनी प्रकृति के प्रतिकूल तथा अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त तीक्ष्ण औषधियों के सेवन करने से शीघ्र ही देह को नष्ट कर देती हैं तथा देश और काल का विचार कर के प्रकृति के अनुकूल तथा मात्रा आदि का विचार कर के प्रयुक्त की हुई औषधियां अवश्य ही शरीर की वृद्धि करती हैं ॥ ११७ ॥

औषधसेवनविधिः—

जित्वा तस्मादिन्द्रियादिप्रदुष्टान् कालोपेतः श्रद्दधानो यथावत् ।
आयुःप्रज्ञातेजसां यद्विवृद्ध्यै वीर्योपेतं शीलयेदौषधं सत् ॥ ११८ ॥

इसलिये इन्द्रिय और आत्मा को दूषित करने से काम क्रोध आदियों को जीत कर योग्य समय का विचार करके श्रद्धापूर्वक यथाविधि वीर्य अर्थात् रोगहर तथा बलकर गुणों से युक्त और शुद्ध की हुई रस आदि औषधियों को आयु, बुद्धि और तेजोधातु की वृद्धि के लिये सेवन करनी चाहिए ॥ ११८ ॥

अथ आचाररसायनम—

शास्त्रानुसारिणी चर्या चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः ।
बुद्धिरस्खलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम् ॥ ११९ ॥
दानं शीलं दया सत्यं ब्रह्मचर्यं कृतज्ञता ।
रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गणः ॥ १२० ॥

शास्त्र के अनुसार आहार विहारादि का सेवन करना, मन के अभिप्राय को विना कहे ही जानने वाले पार्श्ववर्ति मित्र हों, तथा शब्द स्पर्शरूपरसादि अर्थों के ग्रहण करने में अप्रमत्त बुद्धि का होना, ये सब परिपूर्ण अर्थात् पर्याप्त रसायन है अर्थात् जिस तरह रसायन औषध गुण करती है वैसे ही उपर्युक्त भी हैं । इनके अतिरिक्त दीनों कों दान देना, शील स्वभाव का होना, दुःखियों पर दया, सत्य बोलना ब्रह्मचर्य का धारण करना, दूसरे से किये हुए उपकार को मानना, अच्छे पुरुषों के साथ मित्रता करना तथा रसायन सेवन करना यह पुण्यायुर्वृद्धिकृत् गुण है । अर्थात् ये सब संसार में पुण्य (यश) का विस्तार तथा आयु की वृद्धि करते हैं ॥ ११९-१२० ॥

विमर्शः—चरकोक्ताचाररसायनम्—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तं मद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥ १ ॥
जपशौचपरं धीरं दाननित्यं तपस्विनम् ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चने रतम् ॥ २ ॥
आनृशंस्यपरं नित्यं नित्यं करुणवेदिनम् ।
समजागरणस्वप्नं नित्यं क्षीरघृताशिनम् ॥ ३ ॥

देशकालप्रमाणज्ञं युक्तिज्ञमनहङ्कृतम् ।
शस्ताचारमसङ्कीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ॥ ४ ॥
उपासितारं वृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ।
धर्मशास्त्रपरं विद्यान्नरं नित्यरसायनम् ॥ ५ ॥
गुणैरेतैः समुदितैः प्रयुङ्क्ते यो रसायनम् ।
रसायनगुणान् सर्वान् यथोक्तान् स समश्नुते ॥ ६ ॥

इत्याचाररसायनम् ।

अथायुर्वेदोपदेशस्य अवश्यपालनीयोक्तिः—

एतदागमसिद्धत्वात् प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
मन्त्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन ॥ १२१ ॥

यह आयुर्वेद शास्त्र अथवा रसायनोपदेश आगम अर्थात् वेद से सिद्ध या निकला हुआ होने से तथा प्रत्यक्ष फल करने से मन्त्र के समान व्यवहार में लाना चाहिए या रसायनों का प्रयोग करना चाहिए। इस शास्त्र के विषय में किसी प्रकार की शङ्का या कुतर्क आदि नहीं करना चाहिए ॥ १२१ ॥

अथ कुवैद्यवर्जनोपदेशः—

लोभयन्त्यातुरं मूर्खा विचित्रैः कर्मकौशलैः ।
तेभ्यो रक्षेत्सदात्मानमात्मा यस्मात्सुदुर्लभः ॥ १२२ ॥
ते घुणाक्षरवत्कश्चिदुत्थाप्य नियतायुषम् ।
घ्नन्ति वैद्याभिमानेन शतान्यनियतायुषाम् ॥ १२३ ॥
अज्ञातशास्त्रसद्भावाञ्छास्त्रमात्रपरायणान् ।
तान्वर्जयेद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव ॥ १२४ ॥

वैद्य के वेष में रहने वाले पाखण्डी एवं मूर्ख लोग अपने कर्म कौशल अर्थात् ऐन्द्र जालिक के समान असत् क्रियाओं को भी सत्य की तरह प्रतिपादित कर के रोगी को अपने वश में कर लेते हैं। ऐसे मूर्ख वैद्यों से सर्वदा अपनी आत्मा की रक्षा करते रहना चाहिए। क्योंकि आत्मा का मनुष्य रूप में उत्पन्न होना अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसे पाखण्डी वैद्य घुणाक्षरन्याय (लम्बी चोंच वाला पक्षी जैसे काष्ठ पर चोंच मारते २ कभी वहाँ पर ककारादि वर्ण को बना देता है) से नियत आयु वाले रोगी को रोग से मुक्त कर के अपने को निपुण वैद्य ख्यात कर

के सैकड़ों अनियत आयु वाले पुरुषों को असदौषध के प्रयोग से मार डालते हैं। इस लिये बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि शास्त्र के वास्तविक स्वरूप को न जान कर या उस के प्रयोग को न समझ कर केवल शास्त्र के वचन मात्र की डींग मारने वाले ऐसे भिषक् पाशों (सद्वैद्यों के कण्टकभूत या प्राणियों के प्राण हरण के लिये पाश अर्थात् बन्धनतुल्य) को यमराज के पाश (फन्दे) की तरह दूर ही से त्याग देने चाहिए ॥ १२२-१२४ ॥

अथ शास्त्रज्ञवैद्यस्यसाफल्योक्तिः—

प्रदीपभूतं शास्त्रं हि दर्शितं विपुला मतिः।
ताभ्यां भिषक् सुयुक्ताभ्यां चिकित्सन्नापराध्यति ॥ १२५ ॥

अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर देने के कारण शास्त्र एक प्रकार का प्रदीप है तथा ऊहापोह गुण युक्त विपुल (महती) बुद्धि ही एक प्रकार से नेत्र है, इस लिये प्रदीपभूत शास्त्र और विपुल बुद्धि से जो वैद्य ठीक तरह से युक्त है, वह किसी भी रोगी की चिकित्सा करता हुआ कभी भी अपराध अर्थात् दण्डनीय कर्म नहीं कर सकता है ॥ १२५ ॥

अथ चिकित्सायाः सर्वत्र साफल्यतोक्तिः—

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्मः क्वचिद्यशः।
क्वचिदभ्यासयोगश्च चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ १२६ ॥

ज्ञान पूर्वक चिकित्सा करने से कहीं धन की प्राप्ति होती है, कही श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ मित्रता होती है, किसी दीन को निःशुल्क रोग से मुक्त करने से पुण्य की प्राप्ति होती है, कहीं यश मिलता है तथा कहीं अपने अभ्यास (अनुभव) की ही वृद्धि होती है इसलिये चिकित्सा कभी भी निष्फल नहीं कही गई है ॥ १२६ ॥

अथ चिकित्साकर्मणि प्रमादे दोषाः—

ये क्रियां विक्रियां कुर्वन्त्युपेक्षन्ते स्खलन्ति वा।
खादन्ति ते परप्राणान्निजानि सुकृतानि च ॥ १२७ ॥

जो मूर्ख वैद्य अपने अज्ञान से चिकित्सा पद्धति को विकृत रूप से कर देते हैं या साध्य रोग को अयोग्यौषध देकर असाध्य कर देते हैं या चिकित्सा करने में उपेक्षा करते हैं तथा चिकित्सा प्रकार में भूल करते हैं ऐसे कुवैद्य रोगी के प्राणों का हरण कर लेते हैं तथा अपने सुकृत अर्थात् पुण्यों का नाश भी करते हैं ॥ १२७ ॥

अथ चिकित्सा-कर्तव्यावधिः—

यावदुच्छ्वसिति प्राणी यावद्भेषजमत्ति च।
तावच्चिकित्सा कर्तव्या दैवस्य कुटिला गतिः॥ १२८॥

जब तक रोगी की श्वास प्रश्वास क्रिया चलती रहे, और जब तक वह औषध को सेवन कर सकता हो अर्थात् गला (अन्नमार्गादि) कफ से रुद्ध न हो गया हो तब तक उस को चिकित्सा करते रहना चाहिए, क्योंकि दैवगति बड़ी ही विचित्र होती है, जीवन की आशा न रहने पर भी दैववशात् अन्त में औषध से लाभ हो कर रोगी स्वस्थ हो जाता है॥ १२८॥

वैद्यातुरयोरन्योन्यकर्तव्यः—

अनाथान् रोगिणो वैद्यः पुत्रवत्समुपाचरेत्।
प्राणाचार्यश्च पितृवत्सम्पूज्यः शक्तिभक्तितः॥ १२९॥

अनाथ अर्थात् योग्य रक्षक (माता पिता आदि) से रहित तथा दीन रोगियों को अपने पुत्र के समान समझ कर वैद्य उनकी चिकित्सा करे तथा रोगियों को भी चाहिए कि वे अपने प्राण के रक्षक वैद्य को पिता के तुल्य समझ कर यथाशक्ति भक्तिपूर्वक मन से, धन से तथा या शरीरकर्म से पूजन करें॥ १२९॥

वैद्यस्य सर्वत्रावश्यकता—

न प्राणिरहितो देशो न च प्राणी निरामयः।
तस्मात्सर्वत्र भिषजां कल्पिता एव वृत्तयः॥ १३०॥

कोई भी ऐसा देश नहीं है जहां कि मनुष्य न रहते हों तथा कोई ऐसा प्राणी नहीं है जो कि सर्वथा रोग रहित हो, इस लिये वैद्यों की सर्वत्र आवश्यकता रहती ही है तथा उनकी जीविकाएं सहज में चल सकती हैं, अतः जीविकानिर्वाह की चिन्ता त्याग देनी चाहिए॥ १३०॥

अथ पुरावृत्तवर्णनद्वारावैद्यस्य सर्वत्रसर्वपूज्यत्वप्रतिपादनम्—

यज्ञस्य च शिरश्छिन्नमश्विभ्यां सन्धितं पुरा।
पातिता दशनाः पूष्णो भगस्य च विलोचने॥ १३१॥
राजयक्ष्मार्दितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव चिकित्सितः।
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः॥ १३२॥
वीर्यवर्णबलोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा॥

एभिश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषगुत्तमौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां महात्मनाम् ॥ १३३ ॥
सौत्रामण्यां च भगवानश्विभ्यां सह मोदते ।
अश्विभ्यां सहितः सोमं प्रायः पिबति वासवः ॥ १३४ ॥
अश्विभ्यां कल्पितो भागो यज्ञेषु च महर्षिभिः ।
अश्विनावग्निरिन्द्रश्च वेदेषु सुतरांस्तुताः ॥ १३५ ॥
वैद्यावित्यश्विनौ देवौ पूज्येते विबुधैरपि ।
अजरैरमरैर्नित्यंसुखितैरेवमादृतैः ॥ १३६ ॥
व्याधिमृत्युजराग्रस्तैर्दुःखप्रायैः सुखार्थिभिः ।
किं पुनर्भिषजो मर्त्यैः पूज्याः स्युर्नामशक्तितः ॥ १३७ ॥

पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति के यज्ञ में नन्दीश्वरने यज्ञ पुरुष का शिर काट दिया था उस कटे हुए शिर को फिर अश्विनी कुमारों ने धड़ के साथ जोड़ दिया, पूषा नामक दैत्य के वीरभद्र के द्वारा गिराए हुए दांत तथा भगदेवता के नष्ट किये हुए नेत्रों को अश्विनी कुमारों ने ठीक कर दिया, राजयक्ष्मा से पीडित चन्द्रमा को अपनी चिकित्सा से उन्हों ने नीरोग किया। वृद्ध भार्गव च्यवन महर्षि कामान्ध हो कर अत्यन्त सम्भोग करने से विकृत हो गये थे उनको अश्विनी कुमारों ने अपनी चिकित्सा से वीर्यशक्ति तथा सौन्दर्य से युक्त करके युवा बना दिया इत्यादि तथा अन्यान्य अनेक उत्तम कार्यों के करने से वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनी कुमार इन्द्रादि देवता तथा बड़े २ ऋषि महर्षि महात्माओं के द्वारा पूजित हुए थे। सौत्रामण्य नामक यज्ञ में स्वयं भगवान् इन्द्र अश्विनी कुमारों के साथ आनन्द का उपभोग करते हैं तथा उन्हीं के साथ सोमरस का पान करते हैं। महर्षियों ने यज्ञों में अश्विनीकुमारों के लिये भी भाग कल्पित किया है तथा वेदों में अश्विनी कुमार, अग्निदेव तथा इन्द्र इन की अत्यन्त स्तुति (प्रशंसा) लिखी गई है। इस कारण दोनों अश्विनी कुमार देवताओं के वैद्य होने के कारण अजर अमर और नाना प्रकार से सुखी रहने पर भी देवता उनकी पूजन (आदर सत्कार) नित्य प्रति करते रहते हैं, तब फिर नाना प्रकार के रोग, अकालमृत्यु और जरा से आक्रान्त तथा अनेक दुःखों से पीडित ऐसे सुख चाहने वाले मर्त्युलोक के मनुष्यों के द्वारा यथाशक्ति वैद्य पूजित नहीं होते हैं अपि तु अवश्य ही पूजित होते हैं ॥ १३१-१३७ ॥

अथ ग्रन्थकर्तुर्विज्ञप्तिः—

रसरत्नसमुच्चयो मयेत्थं रचितः
साधु नितान्तमाद्रियन्ताम्।
सुधियो यदि विद्यतेऽत्र दोषः
क्वचिदर्हन्ति प्रमाण्यलं विसोढुम्॥ १३८॥

इति श्रीवैद्यपतिसिंहगुप्तस्य सूनोर्वागभट्टाचार्यस्य कृतौ रसरत्नसमुच्चये
रसकल्पो नाम त्रिंशोऽध्यायः।

इस प्रकार मैंने सामर्थ्य पूर्वक अनेक रस शास्त्रों का अवलोकन करके यह रसरत्नसमुच्चय नामक ग्रन्थ बनाया है इसलिये इसका आदर (अवलोकन) करना चाहिए, यदि इसमें कहीं पर त्रुटि हो गई हो तो विद्वज्जन उसे कृपा करके सहन करें॥ १३८॥

इति श्रीमेदपाटदेशान्तर्गत मण्डफियाग्रामवासिना काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयायुर्वेद-
विद्यालयान्तेवासिना प्राच्यपाश्चात्यचिकित्साशास्त्रधुरन्धरेण सर्वतन्त्र स्वतन्त्रेण
गुर्जरगौडविप्रकुलावतंसेन श्रीकृष्णात्मजेन पण्डितप्रवरेण आयुर्वेदाचार्येण
श्रीअम्बिकादत्त शास्त्रिणा कृतायां रसरत्नसमुच्चयस्य सुरत्नोज्ज्वला
ख्य भाषाटीकायां रसकल्पो नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

रसरत्नसमुच्चयस्य-मूलविषयस्याकाराद्यनुक्रमः—

विमर्शस्याकाराद्यनुक्रमः।

चक्रदत्तः

भावार्थसन्दीपिनीविस्तृतभाषाटीकाटिप्पणी सहित।

यह ग्रन्थ भारतवर्ष के वैद्य समाज में सर्वत्र प्रचलित है। अतः इसका विशेष परिचय न देकर केवल इतना ही कहना है कि इसकी उपयोगिता से मुग्ध होकर आयुर्वेद की सभी स्थानों की परीक्षाओं में पाठ्यरूप से इसे स्थान मिला है। यद्यपि इसके १-२ संस्करण अन्यत्र प्रकाशित हुए हैं। मगर उपरोक्त ग्रन्थ की **तत्त्वचन्द्रिका** संस्कृत टीका के अन्दर लिखित आयुर्वेद विषयक गहन विषयों का पूर्ण रुप से हिन्दी में सारांश देकर कोई भी संस्करण नहीं निकला जिससे संस्कृतानभिज्ञों का भी उपकार हो अत एव इस त्रुटि को दूर करने के लिये पण्डित श्री **जगदीश्वरप्रसाद त्रिपाठी** आयुर्वेदाचार्य हिन्दूविश्वविद्यालय ने इसकी **भवार्थ-सन्दीपिनी** विस्तृत सरल **भाषा टीका** तथा **विशद टिप्पणी** के सहित तैयार किया है आज कलकी प्रकाशित सभी पुस्तकों से टीका तथा टिप्पणी अत्यन्त उपयोगी सरल तथा विस्तृत रूप से है। वैद्यों के सुविधा के लिये परिशिष्ट में क्रम से प्रत्येक रोगों का पथ्यापथ्य तथा निदान भी दिया गया है जिस से चिकित्सकों [illegible] इसी एक पुस्तक के द्वारा चिकित्सा करते समय अन्य पुस्तक की आवश्यकता न पड़े।

इस संस्करण में सबसे बढ़कर विशेषता यह है कि इसमें आयुर्वेद परीक्षार्थी विद्यार्थियों को डाक्टरी मतानुसार निदानादि तथा नाडी परीक्षा, मूत्रादि परीक्षा [illegible] का भी ज्ञान हो इसलिये उनका भी समावेश कर दिया है तथा अन्यान्य उपयोगी विषयों का परिशिष्ट रूप में संकलन किया गया है।

अधिक क्या आप इस संस्करण को देख कर अत्यन्त सन्तुष्ट होंगे ऐसा पूर्ण विश्वास है। सुन्दर आकार [illegible] के संस्करण कपड़े की पक्की जील्द नवीन टाईप सुन्दर ग्लेज का[illegible] सफाई मनमोहक होते हुये भी मूल्य बहुत अल्प ४) मात्र।

[illegible] नि

[illegible] नि [illegible] खम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस सिटी।

[illegible] व्याख्या